ओशो

अथातो भक्ति जिज्ञासा

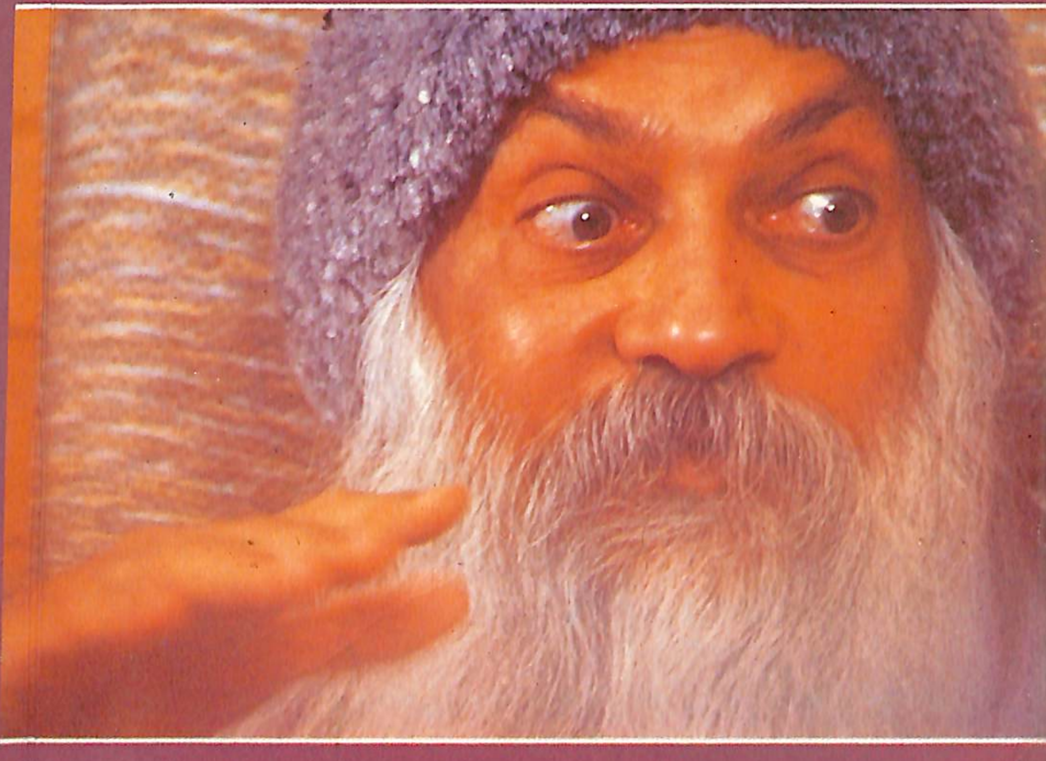

अथातो भक्ति जिज्ञासा ओशो

अथातो भक्ति जिज्ञासा

ऋषिवर शांडिल्य के भक्तिसूत्रों पर ओशो द्वारा दिए गए चालीस प्रवचनों में से एक से दस प्रवचनों का संकलन

भगवान श्री रजनीश अब केवल 'ओशो' नाम से जाने जाते हैं।

ओशो के अनुसार उनका नाम विलियम जेम्स के शब्द
'ओशनिक' से लिया गया है, जिसका अभिप्राय है
सागर में विलीन हो जाना।

'ओशनिक से अनुभूति की व्याख्या तो होती है,
लेकिन, वे कहते हैं कि अनुभोक्ता के संबंध में क्या?
उसके लिए हम 'ओशो' शब्द का प्रयोग करते हैं।
बाद में उन्हें पता चला कि ऐतिहासिक रूप से सुदूर पूर्व में भी
'ओशो' शब्द प्रयुक्त होता रहा है,
जिसका अभिप्राय है : भगवत्ता को उपलब्ध व्यक्ति,
जिस पर आकाश फूलों की वर्षा करता है।

अथातो भक्ति जिज्ञासा

ओशो

संकलन
स्वामी प्रेम राजेंद्र

संपादन
स्वामी योग प्रताप भारती

संयोजन
स्वामी ध्यान अधीष

फोटोटाइपसेटिंग
ताओ पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड
50, कोरेगांव पार्क, पूना - 411001

प्रकाशक
डायमंड पाकेट बुक्स प्रा.लि.
एक्स-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फ़ेज़-2
नई दिल्ली - 110020

वितरक
पंजाबी पुस्तक भंडार
257, दरीबा कलां, दिल्ली - 110006

मुद्रक
आदर्श प्रिण्टर्स
शाहदरा, दिल्ली-110032

संस्करण
1995

मूल्य
Rs 100/-

कापीराइट
ओशो इंटरनेशनल फाउंडेशन, 17 कोरेगांव पार्क, पूना
सर्वाधिकार सुरक्षित
इस पुस्तक अथवा इस पुस्तक के किसी अंश को इलेक्ट्रानिक, मेकेनिकल, फोटोकापी, रिकार्डिंग या अन्य सूचना संग्रह साधनों एवं माध्यमों द्वारा मुद्रित अथवा प्रकाशित करने के पूर्व ओशो इंटरनेशनल फाउंडेशन, पूना की लिखित अनुमति अनिवार्य है।

भूमिका

"मनुष्य का अस्तित्व तीन तलों में विभाजित है—शरीर, बुद्धि, हृदय। या दूसरी तरह से कहें तो कर्म, विचार और भाव। इन तीनों तलों से स्वयं की यात्रा हो सकती है। स्थूलतम यात्रा होगी कर्मवाद की। इसलिए धर्म के जगत में कर्मकांड स्थूलतम प्रक्रिया है। दूसरा द्वार होगा ज्ञान का, विचार का, चिंतन-मनन। दूसरा द्वार पहले से ज्यादा सूक्ष्म है। दूसरे द्वार का नाम है—ज्ञानयोग। तीसरा द्वार सूक्ष्मातिसूक्ष्म है—भाव का, प्रीति का, प्रार्थना का। उस तीसरे द्वार का नाम भक्तियोग है।

ज्ञान का मार्ग संकीर्ण है, भक्ति का मार्ग विराट है। अगर भक्तों से तुम्हारा जोड़ मिल जाए, तो फिर तुम किसी और की चिंता मत करना। न मिले, दुर्भाग्यवश तो फिर तुम कोई और मार्ग खोजना। प्रार्थना बन सकती हो, प्रेम बन सकता हो, तो चूकना मत, क्योंकि वह सुगमतम है, स्वाभाविक है। स्नेह तुम्हारे भीतर है, थोड़ा बहुत प्रेम भी तुम्हारे भीतर है, थोड़ी बहुत श्रद्धा भी तुम्हारे भीतर है, इन्हीं को थोड़ा निखार लेना है, फिर ये प्रीति बन जाएंगे। और प्रीति की अंतिम पराकाष्ठा ही भक्ति है।

भक्ति के मार्ग पर तुम्हारे पास संपत्ति पहले से कुछ है, तुम एकदम भिखारी नहीं हो, कुछ है तुम्हारे पास, थोड़ा निखारना है, थोड़ा साफ-सुथरा करना है जरूर, लेकिन कुछ तुम्हारे पास है। ज्ञान के मार्ग पर तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। वहां तो तुम्हें अ, ब, स से शुरू करना पड़ेगा। ज्ञान का मार्ग आदमी की खोज है और भक्ति का मार्ग प्रभु का प्रसाद है। वह तुम्हें दिया ही हुआ है।

कर्म से लोग पहुंचते हैं। लेकिन बड़ी लंबी यात्रा है। ज्ञान से भी लोग पहुंचते हैं, पर यात्रा संक्षिप्त नहीं है। बहुत सीढ़ियां पार करनी पड़ती हैं। पहले से कम, लेकिन तीसरे की दृष्टि में बहुत ज्यादा। भक्ति छलांग है। सीढ़ियां भी नहीं हैं, दूरी भी नहीं है। भक्ति एक क्षण में घट सकती है! भक्ति तत्क्षण घट सकती है! भक्ति केवल भाव की बात है। इधर भाव उधर रूपांतरण। कर्म में तो कुछ करना होगा, विचार में कुछ सोचना होगा, भक्ति में न करना है, न सोचना है, होना है। इसलिए भक्ति को सर्वश्रेष्ठ कहा है।

जैसे वृक्ष है तो कर्म; फिर फूल लगे तो ज्ञान; और फिर सुवास उड़ी तो भक्ति। सुवास अंत में है।

सब मिल सकता है—एक तुम खो जाओ। इतनी कीमत चुका दो! भक्ति का

सारा सार इतनी छोटी-सी बात में है। भक्त मिट जाए तो भगवान हो जाए।

इन अपूर्व सूत्रों पर खूब ध्यान करना। इनके रस में डूबना। एक-एक सूत्र ऐसा बहूमूल्य है कि तुम पूरे जीवन से भी चुकाना चाहो तो उसकी कीमत नहीं चुकाई जा सकती।"

ओशो के उपरोक्त अमृतवचनों की एक स्पष्ट अनुभावना हृदय में लेकर यदि हम यह पुस्तक पढ़ने की यात्रा पर निकले, तो कोई नहीं जानता कब, कहां, किस पल, किस पृष्ठ पर पढ़ते-पढ़ते ही भक्ति में हमारी छलांग लग जाए! और भक्ति ही जीवन है।

— स्वामी योग प्रताप भारती

अनुक्रम

१. भक्ति जीवन का परम स्वीकार है 9

२. प्रीति को कामना से मुक्त करो 33

३. भक्ति परमात्मा की किरण है 53

४. प्रीति-स्नेह-प्रेम-श्रद्धा-भक्ति 73

५. भक्ति याने जीने का प्रारंभ 97

६. भक्त के मिटने में भगवान का उदय 123

७. स्वानुभव ही श्रद्धा है 147

८. प्रीति की पराकाष्ठा भक्ति है 169

९. अनुराग है तुम्हारा अस्तित्व 195

१०. संन्यास शिष्यत्व की पराकाष्ठा है 217

पहला प्रवचन

भक्ति जीवन का परम स्वीकार है

①

ॐ अथातोभक्तिजिज्ञासा ।।१।।

सापरानुरक्तिरीश्वरे ।।२।।

तत्संस्थास्यामृतत्वोपदेशात् ।।३।।

ज्ञानमितिचेन्नद्विषतोऽपिज्ञानस्यतदसंस्थितेः ।।४।।

तयोपक्षयाच्च ।।५।।

ॐ अथातोभक्तिजिज्ञासा।

यह सुबह, यह वृक्षों में शांति, पक्षियों की चहचहाहट...या कि हवाओं का वृक्षों से गुजरना, पहाड़ों का सन्नाटा...या कि नदियां का पहाड़ों से उतरना...या सागरों में लहरों की हलचल, नाद...या आकाश में बादलों की गड़गड़ाहट—यह सभी ओंकार है।

ओंकार का अर्थ है: सार-ध्वनि; समस्त ध्वनियों का सार। ओंकार कोई मंत्र नहीं, सभी छंदों में छिपी हुई आत्मा का नाम है। जहां भी गीत है, वहां ओंकार है। जहां भी वाणी है, वहां ओंकार है। जहां भी ध्वनि है, वहां ओंकार है।

और यह सारा जगत ध्वनियों से भरा है। इस जगत की उत्पत्ति ध्वनि में है। इस जगत का जीवन ध्वनि में है; और इस जगत का विसर्जन भी ध्वनि में है।

ओम से सब पैदा हुआ, ओम में सब जीता, ओम में सब एक दिन लीन हो जाता है। जो प्रारंभ है, वही अंत है। और जो प्रारंभ है और अंत है, वही मध्य भी है। मध्य अन्यथा कैसे होगा!

इंजील कहती है: प्रारंभ में ईश्वर था और ईश्वर शब्द के साथ था, और ईश्वर शब्द था, और फिर उसी शब्द से सब निष्पन्न हुआ। वह ओंकार की ही चर्चा है।

मैं बोलूं तो ओंकार है। तुम सुनो तो ओंकार है। हम मौन बैठें तो ओंकार है। जहां लयबद्धता है, वहीं ओंकार है। सन्नाटे में भी—स्मरण रखना—जहां कोई नाद नहीं पैदा होता, वहां भी छुपा हुआ नाद है। मौन का संगीत का संगीत शून्य का संगीत। जब तुम चुप हो, तब भी तो एक गीत झर-झर बहता है। जब वाणी निर्मित नहीं होती, तब भी तो सूक्ष्म में छंद बंधता है। अप्रकट है, अव्यक्त है; पर है तो सही। तो शून्य में भी और शब्द में भी ओंकार निमज्जित है।

ओंकार ऐसा है जैसे सागर। हम ऐसे हैं जैसे सागर की मछली।

इस ओंकार को समझना। इस ओंकार को ठीक से समझा नहीं गया है। लोग तो समझे कि एक मंत्र है, दोहरा लिया। यह दोहराने की बात नहीं है। यह तो तुम्हारे भीतर जब छंदोबद्धता पैदा हो, तभी तुम समझोगे ओंकार क्या है। हिंदू होने से नहीं समझोगे। वेदपाठी होने से नहीं समझोगे। पूजा का थाल सजाकर ओंकार की रटन करने से नहीं समझोगे। जब तुम्हारे जीवन में उत्सव होगा, तब समझोगे। जब तुम्हारे जीवन में गान फूटेगा, तब समझोगे। जब तुम्हारे भीतर झरने बहेंगे, तब समझोगे।

ओम से शुरुआत अदभुत है।

ॐ अथातोभक्तिजिज्ञासा।

उस ओम में सब आ गया; अब आगे विस्तार होगा। जो जानते हैं उनके लिए

ओम में सब कह दिया गया। जो नहीं जानते, उनके लिए बात फैलाकर कहनी होगी। अन्यथा शास्त्र पूरा हो गया ओंकार पर।

ओंकार बनता है तीन ध्वनियों से: अ, उ, म। ये तीन मूल ध्वनियां हैं; शेष सभी ध्वनियां इन्हीं ध्वनियों के प्रकारांतर से भेद हैं। यही असली त्रिवेणी है—अ, उ, म। यही त्रिमूर्ति है। यही शब्दब्रह्म के तीन चेहरे हैं।

सब शास्त्र अ, उ, म में समाहित हो गये। हिंदुओं के हों, कि मुसलमानों के, कि ईसाइयों के, कि बौद्धों के, कि जैनों के—भेद नहीं पड़ता। जो भी कहा गया है अब तक और जो नहीं कहा गया, सब इन तीन ध्वनियों में समाहित हो गया है। ओम कहा, तो सब कहा। ओम जाना, तो सब जाना।

इसलिए वेद घोषणा करते हैं कि जिसने ओंकार को जान लिया, उसे जानने को कुछ और शेष नहीं रहा। निश्चित ही यह उस ओंकार की बात नहीं है, जो तुम अपने पूजागृह में बैठकर दोहरा लेते हो। यह ओंकार तो तुम्हारे पूरे जीवन की सुगंध की तरह प्रकट होगा, तो समझोगे।

तुम्हारे जीवन में बड़ी छंदहीनता है। तुम्हारा जीवन टूटा-फूटा हुआ सितार है, जिसके तार या तो बहुत ढीले हैं या बहुत कसे हैं; और जिस तार पर कैसे अंगुलियां रखें, उसका शास्त्र ही तुम भूल गए हो; और जिस सितार को कैसे बजाएं, कैसे निनादित करें, उसकी भाषा ही तुम्हें नहीं आती। तुम सितार लिए बैठे हो, सितार में छिपा संगीत तुम्हारी प्रतीक्षा करता है, और जीवन बड़ी पीड़ा से भरा है। यह सारी पीड़ा रूपांतरित हो सकती है: तुम गाओ, तुम गुनगुनाओ; तुम्हारे भीतर की सरिता बहे; तुम नाचो।

भक्ति जीवन का परम स्वीकार है। इसलिए शुभ ही है कि शांडिल्य अपने इस अपूर्व सूत्र-ग्रंथ का उदघाटन ओम से करते हैं। ठीक ही है, क्योंकि भक्ति जीवन में संगीत पैदा करने की विधि है। जिस दिन तुम संगीतपूर्ण हो जाओगे; जिस दिन तुम्हारे भीतर एक भी स्वर ऐसा न रहेगा जो व्याघात उत्पन्न करता है; जिस दिन तुम बेसुरे न रहोगे, उसी दिन प्रभु मिलन हो गया। प्रभु कहीं और थोड़े ही है—छंदबद्धता में है, लयबद्धता में है। जिस दिन नृत्य पूरा हो उठेगा, गान मुखरित होगा, तुम्हारे भीतर का छंद जिस क्षण स्वच्छंद होगा, उसी क्षण परमात्मा से मिलन हो गया।

इसलिए तो कहते हैं वेद कि ओम को जिन्होंने जान लिया, उन्हें जानने को कुछ शेष न रहा। यह शास्त्र में लिखे हुए ओम की बात नहीं है, यह जीवन में अनुभव किए गए, अनुभूत छंद की बात है।

गायत्री तुम्हारे भीतर छिपी है, भगवदगीता भी। कुरान की आयतें तुम्हारे भीतर मचल रही हैं, तड़फ रही हैं—मुक्त करो! तुम्हारे भीतर बड़ा रुदन है; जैसे किसी वृक्ष में हो, जिसके फूल नहीं खिले; जैसे किसी नदी में हो, चट्टानों के कारण जो बह न सकी और सागर से मिल न सकी। जिस वृक्ष में फूल नहीं आते, उसकी पीड़ा जानते हो? है और नहीं जैसा। जब तक फूल न आएं और जब तक सुगंध छिपी है जो पड़ी प्राणों में, जड़ों से जो मुक्त होना चाहती है, जो पक्षी बनकर उड़ जाना चाहती है।

आकाश में, जो पंख फैलाना चाहती है, जो पक्षी बनकर उड़ जाना चाहती है आकाश में, जो पंख फैलाना चाहती है, जो चांद-तारों से बात करना चाहती है—बहुत दिन हो गये कारागृह में जड़ों की पड़े-पड़े—जो छूट जाना चाहती है सब जंजीरों से, जब तक वह सुगंध फूलों से मुक्त न हो जाए, तब तक वृक्ष तृप्त कैसे हो! तब तक कैसी तृप्ति, कैसा संतोष, कैसी शांति, कैसा आनंद! तब तक वृक्ष उदास है। ऐसे ही वृक्ष तुम हो।

तुम्हारे भीतर ओंकार पड़ा है—बंधन में, जंजीरों में। मुक्त करो उसे! गाओ! नाचो! ऐसे नाचो कि नाचने वाला मिट जाए और नाच ही रह जाए—उस क्षण नाचो! ऐसे नाचो कि नाचने वाला मिट और नाच ही रह जाए—उस क्षण पहचान होगी ओंकार से। ऐसे गाओ कि गायक न बचे; गीत ही रह जाए—उस क्षण तुम भगवदगीता हो गये। जिस क्षण गाने वाला भीतर न हो और गान अपनी सहज स्फुरणा से बहे, उस क्षण तुम कुरान हो गये। उस दिन तुम्हारे भीतर परम काव्य का जन्म हुआ। उस दिन जीवन साधारण न रहा, असाधारण हुआ। उस दिन जीवन में दीप्ति आयी, आभा उपजी। इसलिए ओम से प्रारंभ है।

इस ओम में इशारा है कि तुम अभी ऐसे वृक्ष हो जिसके फूल नहीं खिले हैं। और बिना फूल खिले कोई संतुष्टि नहीं है, कोई परितोष नहीं है।

ॐ अथातोभक्तिजिज्ञासा।

और यह तुम्हें खयाल में आ जाए कि मेरे फूल अभी खिले नहीं, कि मेरे फल अभी लगे नहीं; कि मेरा वसंत आया नहीं है; कि मैं जो गीत लेकर आया था, मैंने अभी गाया नहीं; कि जो नाच मेरे पैरों में पड़ा है, मैंने घूंघर भी नहीं बांधे, वह नाच अभी उन्मुक्त भी नहीं हुआ—यह तुम्हें समझ में आ जाए तो अथातोभक्तिजिज्ञासा, फिर भक्ति की जिज्ञासा। उसके पहले भक्ति उसके पहले भक्ति की कोई जिज्ञासा नहीं हो सकती।

भक्ति की जिज्ञासा का अर्थ ही यह है। कि मैं टूटा-फूटा हूं अभी, मुझे जुड़ना है; मैं अधूरा-अधूरा हूं अभी, मुझे पूरा होना है; कमियां हैं, सीमाएं हैं हजार मुझ पर, सब सीमाओं को तोड़ कर बहना है; बूंद हूं अभी और सागर होना है।...अथातो भक्ति जिज्ञासा!...तभी तो तुम जिज्ञासा में लगोगे।

समझें, भक्ति अर्थात क्या?

एक तत्व हमारे भीतर है, जिसको प्रीति कहें। यह जो तत्व हमारे भीतर है—प्रीति—इसी के आधार पर हम जीते हैं। चाहे हम गलत ही जीएं, तो भी हमारा आधार प्रीति ही होता है। कोई आदमी धन कमाने में लगा है; धन तो ऊपर की बात है, भीतर तो प्रीति से ही जी रहा है—धन से उसकी प्रीति है। कोई आदमी पद के पीछे पागल है; पद तो गौण है, प्रतिष्ठा की प्रीति है। जहां भी खोजोगे, तो तुम प्रीति को ही पाओगे। कोई वेश्यालय चला गया है और किसी ने किसी की हत्या कर दी—पापी में और पुण्यात्मा में, तुम एक ही तत्व को एक साथ पाओगे, वह तत्व प्रीति है। फिर प्रीति किससे लग गयी, उससे भेद पड़ता है। धन से लग गयी तो तुम धनी होकर रह जाते हो। ठीकरे हो जाते हो। कागज के सड़े-गले नोट होकर मरते हो। जिससे प्रीति

लगी, वही हो जाओगे; यह बड़ा बुनियादी सत्य है; इसे हृदय में सम्हालकर रखना।

प्रीति महंगा सौदा है, हर किसी से मत लगा लेना। जिससे लगायी वैसे ही हो जाओगे—वैसा होना हो तो ही लगाना। प्रीति का अर्थ ही यही होता है कि मैं यह होना चाहता हूं। राजनेता गांव में आया और तुम भीड़ करके पहुंच गये, फूलमालाएं सजाकर—किस बात की खबर है? तुम गहरे में चाहते हो कि मेरे पास भी पद हो, प्रतिष्ठा हो; इसलिए पद और प्रतिष्ठा की पूजा है। कोई फकीर गांव में आया और तुम पहुंच गये; उससे भी तुम्हारी प्रीति की खबर मिलती है कि तड़फ रहे हो फकीर होने को—कि कब होगा वह मुक्ति का क्षण, जब सब छोड़-छाड़...जब किसी चीज पर मेरी कोई पकड़ न रह जाएगी। कोई संगीत सुनता है तो धीरे-धीरे उसकी चेतना में संगीत की छाया पड़ने लगती है।

तुम जिससे प्रीति करोगे, वैसे हो जाओगेः जिनसे प्रीति करोगे वैसे हो जाओगे। तो प्रीति का तत्व रूपांतरकारी है। प्रीति का तत्व भीतरी रसायन है। और बिना प्रीति के कोई भी नहीं रह सकता। प्रीति ऐसी अनिवार्य है जैसे श्वास। जैसे शरीर श्वास से जीता, आत्मा प्रीति से जीती। इसलिए अगर तुम्हारे जीवन में कोई प्रीति न हो, तो तुम आत्महत्या करने को उतारू हो जाओगे। या कभी तुम्हारी प्रीति का सेतु टूट जाए, तो आत्महत्या करने को उतारू हो जाओगे। घर में आग लग गयी। और सारा धन जल गया और तुमने आत्महत्या कर ली; क्या तुम कह रहे हो? तुम यह कहते होः यह घर ही मैं था, यह मेरी प्रीति थी। अब यही न रहा तो मेरे रहने का क्या अर्थ! तुम्हारी पत्नी मर गयी और तुमने आत्महत्या कर ली; तुम क्या कह रहे हो? तुम यह कह रहे होः यह मेरी प्रीति का आधार था। जब मेरी प्रीति उजड़ गयी, मेरा संसार उजड़ गया। अब मेरे रहने में कोई सार नहीं।...हम प्रीति के साथ अपना तादात्म्य कर लेते हैं।

बिना प्रीति के कोई भी नहीं जी सकता। जीना संभव ही प्रीति के सहारे है। जैसे बिना श्वास लिए शरीर नहीं रहेगा, वैसे बिना प्रीति के आत्मा नहीं टिकेगी। प्रीति है तो आत्मा टिकी रहती है—फिर प्रीति गलत से भी हो तो भी आत्मा टिकी रहती है। मगर चाहिए, प्रीति तो चाहिए—गलत हो कि सही।

फिर प्रीति के बहुत ढंग हैं, वे समझ लेने चाहिए। हम प्रेम कहते हैं। प्रेम का अर्थ होता हैः उसके साथ, जो समतल है। तुमसे ऊपर एक प्रीति है, जो तुम्हारी पत्नी में होती है, मित्रों में होती है, पति में होती है, भाई-बहन में होती है। उस प्रीति को भी नहीं, तुमसे नीचे भी नहीं; तुम्हारे जैसा है; जिससे आलिंगन हो सकता है; उसको प्रेम कहते हैं। समतुल व्यक्तियों में प्रीति होती है तो प्रेम कहते हैं।

फिर एक प्रीति होती है माता, पिता या गुरु में; उसे श्रद्धा कहते हैं। कोई तुमसे ऊपर है; प्रीति को पहाड़ चढ़ना पड़ता है। इसलिए श्रद्धा कठिन होती है। श्रद्धा में दांव लगाना पड़ता है। श्रद्धा में चढ़ाई है। इसलिए बहुत कम लोगों में वैसी प्रीति मिलेगी जिसको श्रद्धा कहें। माता-पिता से कौन प्रीति करता है! कर्तव्य निभाते हैं लोग। दिखाते हैं। उपचार। दिखाना पड़ता है। प्रीति कहां! अपने से ऊपर प्रीति करने

में पहाड़ चढ़ने की हिम्मत होनी चाहिए।

और ध्यान रखना, तुम अपने से ऊपर, जितने ऊपर प्रीति करोगे, उतने ही तुम ऊपर जाने लगोगे, तुम्हारी चेतना ऊर्ध्वगामी होगी। इसलिए तो हमने श्रद्धा को बड़ा मूल्य दिया है सदियों से, क्योंकि श्रद्धा आदमी को बदलती है, अपने से पार ले जाती है। तुम्हारे हाथ तुमसे ऊपर की तरफ उठने लगते हैं और तुम्हारे पैर किसी ऊर्ध्वगमन पर गतिमान होते हैं। तुम्हारी आंखें ऊंचे शिखरों से टकराती और चुनौती लेती हैं।

जिसके जीवन में श्रद्धा नहीं है, उसके जीवन में विकास नहीं है। विकास हो ही नहीं सकता। किसी को महावीर में श्रद्धा है तो विकास होगा; किसी को बुद्ध में, तो; क्राइस्ट में, तो। श्रद्धा से विकास होता है, कृष्ण-क्राइस्ट तो सब खूंटियां हैं। कहां तुमने अपनी श्रद्धा टांगी, यह बात गौण है। मगर श्रद्धा कहीं न कहीं टांगना जरूर। यह बात बहुत महत्वपूर्ण नहीं है कि तुमने महावीर चुना कि मोहम्मद, कि कृष्ण चुने कि क्राइस्ट, इसमें बहुत मूल्य नहीं है, मूल्य इस बात में है कि तुमने श्रद्धा का कोई पात्र चुना। तुमने कोई चुना जो तुमसे पार है। तुमने कोई चुना जो आकाश में है—धवल शिखरों की भांति। उस चुनाव में ही यात्रा शुरू हो गयी—तुम्हारी आंखें ऊपर उठने लगीं। तुमने जमीन पर गड़े-गड़े चलना बंद कर दिया। तुमने जमीन पर सरकना बंद कर दिया। तुम्हारे पंख फड़फड़ाने लगे, आज नहीं कल तुम उड़ोगे। क्योंकि जिससे श्रद्धा लग गयी है, उस तक जाना होगा। यात्रा कठिन होगी तो भी जाना होगा। लाख कठिनाइयां होंगी। तो भी जाना होगा। प्रीति लग जाए तो कठिनाइयों का पता नहीं चलता।

तो एक प्रीति है : श्रद्धा। अपने से ऊपर। वह ऊर्ध्वगामी है। एक प्रीति है : प्रेम अपने से समतुल। उससे तुम कहीं जाते-आते नहीं; कोल्हू के बैल की तरह चक्कर काटते हो। पत्नी भी तुम जैसी, पति भी तुम जैसा, मित्र भी तुम जैसे—लोग अपने जैसे ही तो चुनते हैं, लोग अपने जैसों में ही तो आकर्षित होते हैं। अपने से बड़े में आकर्षित होने में ही खतरा मालूम होता है। क्यों? क्योंकि पहले तो किसी को अपने से बड़ा मानना अहंकार के प्रतिकूल है। किसी को गुरु मानना अहंकार के प्रतिकूल है—अहंकारी किसी को गुरु नहीं मान सकता। वह हजार बहाने खोजता है सिद्ध करने के कि कोई गुरु है ही नहीं। अब कहां गुरु! सतयुग में होते थे, यह कलियुग है! अब कहां गुरु! यह पंचम काल है, अब कहां गुरु! सब कहानियां हैं, कपोल-कल्पनाएं हैं। बचाता है अपने को, क्योंकि गुरु चुनने में ही तुमने एक बात जाहिर कर दी कि अब तुम्हें चुनौती स्वीकार करनी पड़ेगी। तुम जहां हो, वहीं समाप्त नहीं हो सकते हो, ऊपर जाना है।

इसलिए लोग अपने ही समान व्यक्तियों को चुनते हैं। उनके साथ कहीं जाना नहीं; यहीं झगड़ना है। पति-पत्नी यहीं लड़ते रहेंगे; कोल्हू के बैल की तरह रोज वही दोहराते रहेंगे जो कल भी किया था, परसों भी किया था; कल भी करेंगे, परसों भी करेंगे; पूरा जन्म निकल जाएगा और वही पुनरुक्ति, पुनरुक्ति। नहीं कोई गति होती। हो नहीं सकती।

तीसरा प्रेम है, प्रीति है, जिसे हम स्नेह कहते हैं; वह अपने से छोटों के प्रति। पुत्र, कन्यादिक या शिष्य। जो अपने से छोटे के प्रति होती है। अपने से छोटे के प्रति भी हम आसानी से राजी हो जाते हैं। सच तो यह है, हम बड़े आह्लादित होते हैं। इसलिए तो तुम आह्लादित होते हो जब तुम्हारे घर में बेटा पैदा होता है। तुम्हारा आह्लाद क्या है? तुम्हारा आह्लाद यही है कि इसकी तुलना में तुम बड़े हो गये।

तुमने कहानी सुनी न, अकबर ने एक लकीर खींच दी राजदरबार में आकर और कहा—इसे बिना छुए छोटी कर दो। कोई न कर सका। लेकिन बीरबल ने एक बड़ी लकीर उसके नीचे खींच दी; उसे छुआ नहीं, छोटी हो गयी। छोटी लकीर खींच देता तो बड़ी हो जाती—उसे छुए बिना।

तुम अपने पुत्र में, पुत्रियों में इतना जो रस लेते हो उसका कारण क्या है? चलो, कोई तो है जो तुम्हारी तरफ देखता है और तुम्हें बड़ा मानता है! तुम्हारे अहंकार को तृप्ति मिलती है। इसलिए शिष्य होना कठिन है, गुरु होना आसान मालूम पड़ता है।

एक शिष्य गुरु के पास पहुंचा। उसने पूछा कि मुझे स्वीकार करेंगे? मैं दीक्षित होने आया हूं। गुरु ने कहा: कठिन होगा मामला। यात्रा दुर्गम है, सम्हाल सकोगे? पात्रता है? पूछा उस युवा ने: क्या करना होगा? ऐसी कौन-सी कठिनाई है? गुरु ने कहा: जो मैं कहूंगा, वही करना पड़ेगा। वर्षों तक तो जंगल से लकड़ी काटना, आश्रम के जानवरों को चरा आना, बुहारी लगाना, भोजन पकाना—इसमें ही लगना होगा। फिर जब पाऊंगा कि अब तुम्हारा समर्पण ठीक-ठीक हुआ, तार ठीक-ठीक बंधे, तब तुम्हारे ऊपर सत्य के प्रयोग शुरू होंगे, तब ध्यान और तप।

उस युवक ने पूछा: यह तो बड़ी झंझट की बात है। कितने वर्ष लगेंगे यह जंगल जाना, लकड़ी काटना, भोजन बनाना, सफाई करना, जानवर चराना? गुरु ने कहा: कुछ कहा नहीं जा सकता। निर्भर करता है कि कब तुम तैयार होओगे। जब तैयार हो जाओगे, तभी—वर्ष भी लग सकते हैं, कभी-कभी जन्म भी लग जाते हैं।

उस युवक ने कहा, चलिए, यह तो जाने दीजिए, यह मुझे जंचता नहीं। गुरु होने में क्या करना पड़ता है? तो उस गुरु ने कहा: गुरु होने में कुछ नहीं। जैसे मैं यहां बैठा हूं ऐसे बैठ जाओ और आज्ञा देते रहो। तो उसने कहा: फिर ऐसा करिए, मुझे गुरु ही बना लीजिए। यह जंचता है।

गुरु कौन नहीं बन जाना चाहता! तुम भी कोई मौका नहीं खोते जब गुरु बनने का मौका मिले। किसी को अगर तुम पा लो किसी हालत में कि सलाह की जरूरत है, तो तुम्हें चाहे सलाह देने योग्य पात्रता हो या न हो, तुम जरूर देते हो। तुम चूकते नहीं मौका। कोई मिल भर जाए मुसीबत में, तुम उसकी गर्दन पकड़ लेते हो। तुम उसको सलाह पिलाने लगते हो। और ऐसी सलाहें, जो तुमने जीवन में खुद भी कभी स्वीकार नहीं कीं; जिन पर तुम कभी नहीं चले; जिन पर तुम कभी चलोगे भी नहीं। लेकिन किसी और ने तुम्हारी गर्दन पकड़कर तुम्हें पिला दी थीं, अब तुम किसी और के साथ बदला ले रहे हो।

दुनिया में सलाहें इतनी दी जाती हैं, मगर लेता कौन! कोई किसी की सलाह

लेता है! तुमने कभी किसी की ली? और खयाल रखना, जिसने भी तुम्हारी असहाय अवस्था का मौका उठाकर सलाह दी है, उससे तुम नाराज हो, अभी भी नाराज हो, तुम उसे क्षमा नहीं कर पाए हो। क्योंकि तुम असमय में थे और दूसरे ने फायदा उठा लिया। तुम्हारे घर में आग लग गयी थी और कोई ज्ञानी तुमसे कहने लगा: क्या रखा है; यह संसार तो सब जल ही रहा है; सब जल ही जाएगा, सब पड़ा रह जाएगा—सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब बांध चलेगा बंजारा—अरे, यहां रखा क्या है! यह बातें तो तुम्हें भी मालूम हैं, लेकिन तुम्हारा घर जल रहा है और इन सज्जन को सलाह देने की सूझी है! तुम्हारी पत्नी मर गयी और कोई कह रहा है कि आत्मा तो अमर है। तुम्हारी तबियत होती है कि इसको यहीं दुरुस्त कर दो इस आदमी को! मेरी पत्नी मर गयी है, इसे ज्ञान सूझ रहा है! और तुम भलीभांति जानते हो कि इसकी पत्नी जब मरी थी तब यह भी रो रहा था—और कल जब इसका बेटा मरेगा तो फिर यह जार-जार रोएगा। तब तुम्हारे हाथ में एक मौका होगा कि तुम भी बदला ले लोगे, तुम भी सलाह दे दोगे।

सलाहें एक-दूसरे का अपमान हैं। सलाह का मतलब यह होता है, तुम सिद्ध कर रहे हो; मैं जानता हूं, तुम नहीं जानते; मैं ज्ञानी, तुम अज्ञानी। तुम मौका पाकर गुरु बन रहे हो। जांचना। अपने जीवन को जरा परखना। हर किसी को सलाह देने को तैयार हो! कोई सिगरेट पी रहा है और तुम्हारे भीतर एकदम खुजलाहट होती है कि इसको सलाह दो कि सिगरेट पीना बुरा है—और तुम पान चबा रहे हो! मगर पान चबाना बात और!—लेकिन तुम सलाह देने का मौका नहीं छोड़ोगे। तुम्हारे बाप ने तुम्हें सलाह दी थी और तुमने एक न मानी। और वे ही सलाहें तुम अपने बेटों को पिला रहे हो। वे भी नहीं मानेंगे। तुमने नहीं मानी थी। कौन मानता है सलाह! क्यों सलाहें नहीं मानी जातीं? कारण है। देने वाला अहंकार का मजा लेता है, लेने वाले के अहंकार को चोट लगती है।

तुम्हारे घर बेटे-बेटियां पैदा हो जाते हैं, तुम बड़े खुश होते हो। तुमको यह असहाय प्राणी मिल गये, जिनको अब तुम जैसा चाहो बनाओ; जहां चाहो भेजो; जो आज्ञा दो, इन्हें मानना ही पड़े।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चों के साथ सदियों में जो अत्याचार हुआ है, वैसा अत्याचार किसी के साथ कभी नहीं हुआ। गुलाम से गुलाम भी इतना गुलाम नहीं होता जितने बच्चे तुम्हारे गुलाम हो जाते हैं; क्योंकि असहाय हैं, तुम पर निर्भर हैं। जी नहीं सकते तुम्हारे बिना। एक छोटा-सा बच्चा है, दूध नहीं मिले, सेवा नहीं मिले, सुरक्षा नहीं मिले—मर ही जाएगा, जी ही नहीं सकता। उसका जीवन दांव पर लगा है, तुम इस मौके को नहीं चूकते। तुम इस मौके का पूरा फायदा उठा लेते हो—पूरे से ज्यादा फायदा उठा लेते हो। हालांकि तुम कहते यही हो कि मुझे तुमसे प्रेम है, इसीलिए ऐसा कर रहा हूं। लेकिन अगर बहुत छान-बीन करोगे, थोड़े सजग होओगे तो पाओगे, अहंकार का रस ले रहे हो। और तो कोई तुम्हारी सुनता नहीं, तुम्हारे बेटे को तो सुननी ही पड़ती है। इसलिए कौन बेटा अपने बाप को माफ कर पाता है! कोई बेटा अपने बाप

को माफ नहीं कर पाता। और अगर मौका मिलेगा बुढ़ापे में, जब तुम बूढ़े हो जाओगे और कमजोर हो जाओगे, असहाय हो जाओगे, बच्चे जैसे हो जाओगे, तब तुम्हारा बेटा तुमसे बदला लेगा। तब छोटी-छोटी बातों में तुम दुत्कारे जाओगे। और तब तुम तड़फोगे और तुम कहोगे—मैंने ऐसा क्या पाप किया? मैंने तुझे बड़ा किया। मैंने अपना जीवन तेरे ऊपर लगाया, निछावर किया और तू मुझ से बदला ले रहा है! यह कैसी अकृतज्ञता! नहीं, लेकिन तुम जांच करना, गौर करना। तुमने अपने अहंकार को खूब उछाला होगा। इस बेटे में पड़े घाव अब तक हरे हैं।

बच्चों के साथ हम बड़ा अमानवीय व्यवहार करते हैं। और यह कहते हम चले जाते हैं कि हमारा बड़ा स्नेह है।

अपने से छोटे के प्रति जो प्रीति होती है उसका नाम स्नेह है। मेरे देखे, अपने से छोटे के प्रति सच्ची प्रीति और ठीक प्रीति तभी होती है जब अपने से बड़े के प्रति श्रद्धा हो, अन्यथा नहीं होती; अन्यथा झूठी होती है। जिस व्यक्ति के जीवन में अपने से बड़े के प्रति श्रद्धा है, सम्यक श्रद्धा है, उस व्यक्ति के जीवन में अपने से छोटे के प्रति सम्यक स्नेह होता है। और उस व्यक्ति के जीवन में एक और क्रांति घटती है—अपने से सम के प्रति सम्यक प्रेम होता है। उसके जीवन में प्रेम का छंद बंध जाता है। छोटे के प्रति सम्यक स्नेह होता है, धारा की तरह बहता है उसका प्रेम बेशर्त। वह कोई शर्तबंदी नहीं करता कि तुम ऐसा करोगे तो मैं तुम्हें प्रेम करूंगा, कि तुम ऐसे होओगे तो मैं तुम्हें प्रेम करूंगा। वह यह भी नहीं कहता कि बड़े होकर तुम इस तरह के व्यक्ति बनना; कि मैं हिंदू हूं तो तुम भी हिंदू होना; कि मैं कम्यूनिस्ट हूं तो तुम भी कम्युनिस्ट होना; कि मैं ईसाई हूं तो तुम भी ईसाई रहना; कि मैं चाहता हूं कि तुम डाक्टर बनो, कि इंजीनियर बनो, तो इंजीनियर ही बनना। नहीं, वह कोई आग्रह नहीं रखता। वह कहता है—मैंने तुम्हें प्रेम दिया, मैं प्रेम देकर आनंदित हुआ; तुमने मुझे हलका किया। जैसे बादल हलके हो जाते हैं भूमि पर बरसकर, ऐसा तुम पर बरसकर मैं हलका हुआ। मैं अनुगृहीत हूं। तुम्हें जो होना हो तुम होना; मैं तुम्हें सहारा दूंगा—तुम जो होना चाहो उसमें—लेकिन तुम्हें कुछ खास बनाने की चेष्टा नहीं करूंगा। मैं कौन हूं! तुम स्वतंत्र हो। तुम आत्मवान हो।

मगर यह प्रेम, यह स्नेह उसी में हो सकता है, जिसके जीवन में श्रद्धा हुई हो और जिसने किसी गुरु का सत्संग किया हो। गुरु वही है जो तुम्हें इतनी स्वतंत्रता दे कि तुम जो होना चाहो, तुम्हें साथ दे, सहारा दे; तुम्हें अपनी सारी संपदा को खोलकर रख दे कि चुन लो; और इतनी भी अपेक्षा न रखे कि तुम धन्यवाद देना। जब तुम किसी गुरु से मिल गए हो, तभी तुम इस योग्य हो सकोगे कि अपने से छोटे के प्रति स्नेह कर सको—सम्यक स्नेह। अन्यथा तुम्हारा स्नेह भी फांसी का फंदा होगा। और जब तुम अपने से बड़े के प्रति श्रद्धा कर सको और अपने से छोटे के प्रति स्नेह कर सको, तो दोनों के मध्य में प्रेम की घटना घटती है, अन्यथा नहीं घटती। तभी तुम अपनी पत्नी को प्रेम कर सकोगे, अपने पति को प्रेम कर सकोगे। और उस प्रेम में बड़े फूल खिलेंगे, बड़ी सुगंध होगी। उस प्रेम में बड़े संगीत का जन्म होगा।

यह प्रीति की तीन साधारण स्थितियां हैं। और जब यह तीनों सम्यक हो जाती हैं, जब इन तीनों के तार मिल जाते हैं, जब यह तीनों छंदोबद्ध हो जाती हैं, तब चौथी अवस्था, परम अवस्था पैदा होती है, उसका नाम—भक्ति। अथातो भक्ति जिज्ञासा!

जिसने स्नेह किया हो, जिसने प्रेम किया हो, जिसने श्रद्धा की हो और जिसके तीनों के तार मिल गए हों और तीनों के माध्यम से जिसके भीतर एक अपूर्व आनंद की आभा जगी हो—वही व्यक्ति भक्ति करने में कुशल हो सकता है। भक्ति प्रीति की पराकाष्ठा है।

भक्ति का अर्थ है: सर्वात्मा से प्रीति। छोटे से कर ली, समान से कर ली, बड़े से कर ली—अब सर्वात्मा से, अब परमेश्वर से।

परमेश्वर कोई व्यक्ति नहीं है, खयाल रखना बार-बार। अगर परमेश्वर व्यक्ति है तुम्हारी धारणा में, तो तुम जो करोगे वह श्रद्धा होगी। फिर श्रद्धा में और भक्ति में कोई फर्क न रह जाएगा। फिर तो परमेश्वर भी एक व्यक्ति हो गया, जैसे गुरु है—और ऊपर सही, बहुत ऊपर सही, मगर श्रद्धा ही रहेगी। श्रद्धा और भक्ति में भेद है।

परमात्मा यानी सर्व। जिस दिन तुम्हारी प्रीति सब दिशाओं में अकारण बहने लगे—अहेतुक—वृक्षों को, पहाड़ों को, पत्थरों को, चांद-तारों को, दृश्य को, अदृश्य को, यह समस्त को तुम्हारी प्रीति मिलने लगे; तुम इस सारे के प्रेम में पड़ जाओ; तुम्हारे प्रेम पर कोई सीमाएं न रह जाएं, उस दिन भक्ति।

ॐ अथातो भक्ति जिज्ञासा।

अब भक्ति की जिज्ञासा करें।

सापरानुरक्तिः ईश्वरे।

ईश्वर के प्रति संपूर्ण अनुराग का नाम भक्ति है।

ऐसा हिंदी में जगह-जगह अनुवाद किया जाता है। मूल ज्यादा साफ है। अनुवाद कहता है: ईश्वर के प्रति संपूर्ण अनुराग का नाम भक्ति है। मूल कहता है: सापरानुरक्तिः। परा। वह जो तीन प्रीतियां थीं, उनका नाम है अपरा—श्रद्धा, प्रेम, स्नेह। वे सांसारिक हैं। ध्यान रहे, श्रद्धा भी सांसारिक है। नास्तिक भी श्रद्धा कर सकता है। आखिर कम्युनिस्ट श्रद्धा करता ही है कार्ल मार्क्स में और दास केपिटल में। नास्तिक भी श्रद्धा कर सकता है, उसके भी गुरु होते हैं। चार्वाक को मानने वाला चार्वाक में श्रद्धा करता है। एपीकुरास को मानने वाला एपीकुरस में श्रद्धा करता है। उसके भी गुरु हैं, उसके भी शास्त्र हैं उसके भी सिद्धांत हैं, उसके भी तीर्थ हैं। अगर मुसलमानों के लिए मक्का है तो कम्युनिस्टों के लिए मास्को है, पर तीर्थ तो हैं ही। अगर किसी के लिए काबा है तो किसी के लिए क्रेमलिन है। तीर्थ तो हैं ही। उसी भक्ति, उसी पूजा, उसी श्रद्धा से लोग मास्को जाते, जिस भक्ति, श्रद्धा और पूजा से लोग काशी जाते हैं, काबा जाते हैं, गिरनार जाते हैं।

श्रद्धा सांसारिक है। जिससे हमने कुछ सीखा है, उसके प्रति श्रद्धा हो जाएगी। अगर तुमने किसी से चोरी सीखी है तो वह तुम्हारा गुरु हो गया और उससे श्रद्धा हो जाएगी। पापी भी श्रद्धा करता है, बुरा आदमी भी श्रद्धा करता है—आखिर

जिससे कुछ सीखा है, वही गुरु हो जाता है। भक्ति श्रद्धा से भिन्न बात है।

सूत्र कहता है :

सापरानुरक्तिः।

यह तो अपरा हुई। यह तो इस जगत की बातें हुईं—प्रेम, स्नेह, श्रद्धा। इनके पार भी एक शुद्ध रूप है प्रीति का। उस रूप को परा अनुरक्ति, ऐसा शांडिल्य कहते हैं। उस परा अनुरक्ति का जो पात्र है, वही ईश्वर है।

अब तुम यह मत समझना कि कोई ईश्वर है, जिस पर तुम अपनी अनुरक्ति को ढालोगे, जिस पर तुम अपनी अनुरक्ति को केंद्रित करोगे। नहीं, अगर तुमने कोई ईश्वर मान लिया और फिर उस पर अपनी अनुरक्ति को केंद्रित किया तो श्रद्धा हो गयी। जिस दिन तुम्हारी अनुरक्ति सभी पात्रों से मुक्त हो जाएगी—न स्नेह रही, न प्रेम रही, न श्रद्धा रही; जिस दिन तुम्हारी प्रीति शुद्ध प्रीति हो गयी; मात्र प्रीति हो गयी; तुम्हारे चित्त की सहज दशा हो गयी, उस दिन जिस तरफ तुम बहोगे, वही ईश्वर है। सब तरफ ईश्वर है।

सापरानुरक्तिरीश्वरे। परा अनुरक्ति संपूर्ण होती है। बच्चे से प्रेम होता है, लेकिन इतना नहीं होता कि अगर मरने का वक्त आ जाए और चुनाव करना पड़े कि दो में से कोई एक ही जी सकता है। तुम या तुम्हारा बेटा—तो बहुत संभावना यह है कि तुम अपने को बचाओगे। तुम कहोगे : बेटे तो और भी पैदा हो सकते हैं। प्रेम था, लेकिन इतना नहीं था कि अपने को गंवा दो।

पत्नी से प्रेम है; तुम कहते हो कि तेरे बिना मर जाऊंगा। मगर अगर आज ऐसा मौका आ जाए कि एक हत्यारा आ जाए और कहे कि दो में से कोई भी एक मरने को तैयार हो जाओ, तो तुम अपनी पत्नी को कहोगे—क्या बैठी देख रही हो, तैयार हो! मैं तेरा स्वामी हूं! पति तो परमात्मा है! तू बैठी क्या देख रही है? तब तुम मरने को राजी न होओगे। यह कहने की बातें हैं!

फिर संपूर्ण अनुरक्ति का क्या अर्थ होता है? संपूर्ण अनुरक्ति का अर्थ होता है—अब तुम अपने को छोड़ने को राजी हो। अपरा अनुरक्ति में तुम रहते हो। तुम्हारे रहते, सब ठीक; लेकिन अगर तुम्हें स्वयं को दांव लगाना पड़े तो फिर तुम हट जाते हो। परा अनुरक्ति में तुम अपने को दांव पर लगा देते हो। तुम कहते हो—मैं तो बूंद हूं, जो सागर में खो जाना चाहती है। मैं तो बीज हूं जो भूमि में खो जाना चाहता है। तुम परमात्मा और अपने बीच परमात्मा को चुनते हो, सर्व को चुनते हो; तुम अपनी सारी सीमाएं छोड़कर छलांग लगा जाना चाहते हो।

जब तक यह शीशे का घर है
तब तक ही पत्थर का डर है
हर आंगन जलता जंगल है
दरवाजे सांपों का पहरा
झरती रोशनियों में अब भी
लगता कहीं अंधेरा ठहरा

जब तक यह बालू का घर है
तब तक ही लहरों का डर है
हर खूंटी पर टंगा हुआ है
जख्म भरे मौसम का चेहरा
शोर सड़क पर थमा हुआ है
गलियों में सन्नाटा गहरा
जब तक यह काजल का घर है
तब तक ही दर्पण का डर है
हर क्षण धरती टूट रही है
जर्रा-जर्रा पिघल रहा है
चांद-सूर्य को कोई अजगर
धीरे-धीरे निगल रहा है
जब तक यह बारूदी घर है
तब तक चिनगारी का डर है

जब तक हमने शरीर के साथ अपने को एक समझा है, तभी तक सब भय हैं—बीमारी के, बुढ़ापे के, मृत्यु के। जिसकी आंखें सब जगह छिपे हुए परमात्मा को खोजने लगीं, जिसमें भक्ति की जिज्ञासा उठी, जिसने जानना चाहा है कि जीवन का परम सार क्या है, जीवन की परम बुनियाद क्या है; जो जानना चाहता है कि अब मैं तरंगों से नहीं, सागर से मिलना चाहता हूं; अब मैं अभिव्यक्ति से नहीं, अभिव्यक्तियों के भीतर जो छिपा है, अदृश्य, उसको जानना चाहता हूं; जिसने अपने भीतर देखा कि एक तो देह है जो दिखायी पड़ती है और एक मैं हूं जो दिखायी नहीं पड़ता...।

तुम आज तक किसी को दिखायी नहीं पड़े हो, इस पर तुमने कभी विचार किया? न तुम्हारी पत्नी ने तुम्हें देखा, न तुम्हारे बेटे ने, न तुम्हारे मित्रों ने—न तुमने अपनी पत्नी को देखा है। जो देखा है वह देह है—तुम अनदेखे रह गए हो। तुम जरा कभी बैठकर सोचना। तुम्हें आज तक किसी ने भी नहीं देखा। तुम्हारी आंखों में भी कोई आंखें डाल दे, तो भी तुम्हें नहीं देख सकता। फिर भी तुम हो—आंखों से अलग, कानों से अलग, हाथ-पैरों से अलग तुम हो; इस देह से अलग तुम हो। तुम भलीभांति जानते हो, वह तुम्हारा सहज अनुभव है कि मैं इससे पृथक हूं। तुम्हारा हाथ कट जाए तो भी तुम नहीं कट जाते। तुम आंखें बंद कर लो तो भी भीतर तुम देखते हो—बिना आंख के देखते हो। तुम भीतर हो। तुम चैतन्य हो। तुम अदृश्य हो।

जैसे तुम्हारे भीतर यह छोटा सा अदृश्य छिपा है, ऐसा ही इस सारे जगत के भीतर भी अदृश्य छिपा है। दृश्य दिखायी पड़ रहा है, अदृश्य से पहचान नहीं हो रही है।

उस अदृश्य की प्रीति में पड़ जाने का नाम भक्ति है।

फिर भय क्या? दृश्य छिन जाएगा तो छिन जाए। अगर दृश्य की कीमत पर विराट अदृश्य मिलता हो, यह क्षुद्र देह जाती हो तो जाए—यह सस्ता सौदा

है—अगर इस देह के जाने पर विराट से मिलन होता हो, प्रभु-मिलन होता हो, तो कौन होगा पागल, जो इस देह के लिए रुकेगा! मगर यह प्रतीति भीतर गहरी हो गयी हो, तब; नहीं तो भक्ति की जिज्ञासा का क्षण नहीं आया अभी।

दोपहरी तक पहुंचते-पहुंचते
मुर्झा जाता है जो
वह कैसा भोर है
क्या
कुल मिला कर
जीवन का मुंह
मृत्यु की ओर है

ऐसा ही है। हम सब मरने की तरफ चल रहे हैं। जिस दिन तुम्हें यह दिखायी पड़ता है कि देर-अबेर, आज नहीं कल, यह देह छूट ही जाएगी; यहां हम सब मरने को ही सन्नद्ध खड़े हैं, पंक्तिबद्ध खड़े हैं; कोई आज मर गया, कोई कल मरेगा; देर-अबेर मैं भी मरूंगा; यहां मृत्यु घटने ही वाली है—इसके पहले अमृत से कुछ पहचान कर लें! अथातोभक्तिजिज्ञासा! इसके पहले कि देह छिन जाए, देह में जो बसा है, उससे पहचान कर लें! इसके पहले कि पिंजड़ा टूट जाए, पिंजड़े में जो पक्षी है, उससे पहचान कर लें। तो फिर पिंजड़ा रहे कि टूटे, कोई भेद नहीं पड़ता। अंतर की जिसे पहचान हो गयी, उसे सब तरफ भगवान की झलक मिलने लगती है। मगर पहली पहचान अपने भीतर है। जिसने स्वयं को नहीं जाना, वह उस परमात्मा को कभी भी नहीं जान सकेगा।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं—परमात्मा को जानना है। मैं उनसे पूछता हूं—तुम स्वयं को जानते हो? स्वयं को बिना जाने कैसे परमात्मा को जानोगे? कण से तो पहचान करो, फिर विराट से करना।

तत्संस्थस्यामृतत्वोपदेशात्।

ऐसा कहा है कि उनमें चित्त लग जाने से जीव अमरत्व को प्राप्त हो जाता है।

उपदेशात् का अर्थ होता है: जिन्होंने जाना, उन्होंने कहा है। उपदेश शब्द का अर्थ इतना ही नहीं होता कि ऐसा कहा है। हर किसी की कही बात उपदेश नहीं होती। उपदेश किस की बात को कहते हैं? जिसने जाना हो। और उपदेश क्यों कहते हैं? उपदेश शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है: जिसके पास बैठने से तुम भी जान लो—उप, देश—जिसके पास बैठने से तुम्हें भी जानना घटित हो जाए, जिसकी सन्निधि में तुम्हारे भीतर भी तरंगें उठने लगें, जिसके स्पर्श से तुम भी स्फुरित हो उठो, जिसके निकट आने से तुम्हारा दीया भी जल जाए, उसके वचन को उपदेश कहते हैं।

तत्संस्थस्यामृतत्वोपदेशात्। जिन्होंने जाना है, उन्होंने कहा है कि उसमें चित्त लग जाने से जीवन अमरत्व को प्राप्त हो जाता है। अनुवाद में थोड़े शब्द ज्यादा हो गए हैं। संस्कृत के सूत्र शब्दों के संबंध में बड़े वैज्ञानिक हैं; एक शब्द का भी ज्यादा उपयोग नहीं करेंगे। अनुवाद ने जीव शब्द को बीच में डाल दिया। अनुवाद इतना ही

होना चाहिए—जिन्होंने जाना, उन्होंने कहाः जो उसे पा लेते हैं वे अमृत हो जाते हैं। उनकी मृत्यु मिट जाती है। उनके लिए मृत्यु मिट जाती है। उनका मृत्यु से संबंध विच्छिन्न हो जाता है। क्यों? क्योंकि ईश्वर का अर्थ होता हैः जीवन। वृक्ष आते हैं और जाते हैं; लेकिन वृक्षों के भीतर जो छिपा जीवन है वह सदा है। पात्र बदलते हैं, नाटक चलता है। हम नहीं थे, सब था; हम नहीं होंगे; फिर भी सब होगा। हमारे होने-न होने से कुछ भेद नहीं पड़ता। जो है, है। हम तरंगें हैं। हम हो भी जाते हैं, नहीं भी हो जाते हैं—फिर भी इस अस्तित्व में न तो हमारे होने से कुछ जुड़ता है और न हमारे न होने से कुछ घटता है। यह अस्तित्व उतना का उतना, जितना का जितना, जस का तस, वैसा का वैसा बना रहता है।

सागर में लहर उठी, फिर लहर सो गयी; क्या तुम सोचते हो लहर के उठने से सागर में कुछ नया जुड़ गया था? अब लहर के चले जाने से क्या सागर में कुछ कमी हो गयी? न तो सागर में कुछ जुड़ा, न कुछ कमी हुई। सब वैसा का वैसा है।

सत्य न तो घटता, न बढ़ता। बढ़े तो कहां से बढ़े। घटे तो कहां घटे, कैसे घटे? सत्य तो जितना है उतना है। जिस दिन व्यक्ति अपने को लहर की तरह देखता है और परमात्मा को सागर की तरह, अपने को तरंग की तरह, इससे ज्यादा नहीं; एक रूप, एक नाम, इससे ज्यादा नहीं; एक भावभंगिमा, एक मुख-मुद्रा, इससे ज्यादा नहीं; उसके भीतर उठा हुआ एक स्वप्न, इससे ज्यादा नहीं—अमृत से संबंध हो गया।

तत्संस्थस्या...उसके साथ जो जुड़ गया। तत् शब्द विचारणीय है। तत् का अर्थ होता हैः वह; दैट। ईश्वर को हम कोई व्यक्तिवाची नाम नहीं देते, क्योंकि व्यक्तिवाची नाम देने से भ्रांतियां होती हैं। राम कहो, कृष्ण कहो—भ्रांति खड़ी होती है। क्योंकि यह भी तरंगें हैं; बड़ी तरंगें सही, मगर तरंगें हैं। उसकी तरंगें हैं। अवतार सही, मगर आज हैं और कल नहीं हो जाएंगे। छोटी तरंग हो सागर में कि बड़ी तरंग हो, इससे क्या फर्क पड़ता है—तरंग तरंग है। उसकी! तत्! उसमें जो ठहर गया; उससे भिन्न अपने को जो नहीं मानता—उसका संबंध अमृत से हो जाता है, क्योंकि परमात्मा अमृत है।

ऐसा कहना कि परमात्मा अमृत है, शायद ठीक नहीं। ऐसा ही कहना ठीक है कि इस जगत में जो अमृत है, उसका नाम परमात्मा है। इस जगत में जो नहीं मरता उसका नाम परमात्मा है। जो इस जगत में मर जाता है, वह संसार। जो नहीं मरता, वह परमात्मा।

तुमने एक बीज बोया। बीज मर गया। लेकिन अंकुर हो गया। जो बीज में छिपा था अमृत, अब अंकुर में आ गया। बीज मर गया, उसने बीज को छोड़ दिया, वह देह छोड़ दी, अब उसने नयी देह ले ली, नया रूप ले लिया। अब तुम बैठकर रोओ मत बीज की मृत्यु पर। क्योंकि बीज में तो कुछ और था ही नहीं, जो था, अब अंकुर में है। फिर एक दिन वृक्ष बड़ा हो गया, फिर एक दिन वृक्ष मर गया। अब तुम रोओ मत वृक्ष की मृत्यु पर। क्योंकि जो वृक्ष में मर गया, वह अब फिर बीजों में छिप गया है। वृक्ष पर बीज लग गये। अब फिर कहीं, फिर किसी मौसम में, फिर किसी

अवसर में, फिर किसी क्षण में बीज अंकुरित होंगे। फिर पौधा होगा, फिर वृक्ष होगा।

जीवन शाश्वत है। रूप बदलते, ढंग बदलते, मगर जीवन शाश्वत है। उसे देखो—अविच्छिन्न जीवन की धारा को।

एक दिन तुम मां के पेट में सिर्फ मांस-पिंड थे। आज वहां मांस-पिंड कहीं भी नहीं है। आज तुम्हारे सामने उस मांस-पिंड का कोई चित्र रख दे तो तुम पहचान ही न सकोगे कि कभी मैं यह था। या कि तुम सोचते हो पहचान सकोगे? फिर एक दिन तुम छोटे बच्चे थे, फिर वह भी खो गया। फिर तुम जवान थे, वह भी खो गया। अब तुम बूढ़े हो, वह भी खो रहा है। मौत भी आएगी, यह देह भी खो जाएगी। फिर किसी और क्षण में, फिर किसी और मौसम में, तुम कहीं फिर उमगोगे, फिर जन्मोगे। जो इस तरह से रूपों से गुजरता है, उसकी याद करो, उसका स्मरण करो। उसका नाम तत्, वह। वह अमृत है। और उससे जो जुड़ गया, वह भी अमृत हो गया।

अब यहां यह भ्रांति मत कर लेना—जैसा कि हिंदी-अनुवाद में हो सकती है—ऐसा कहा है कि उनमें चित्त लग जाने से जीव अमरत्व को प्राप्त हो जाता है। इसमें भ्रांति पैदा हो सकती है, तुमको यह लग सकता है; तो चलो परमात्मा से जुड़ जाएं, इससे मृत्यु से बच जाएंगे; अमृत हो जाएंगे! तो मैं बचूंगा! तो रहूंगा बैकुंठ में, कि स्वर्ग में, कि मोक्ष में—मगर मैं बचूंगा—जीव बचेगा! अब यह जीव नाहक बीच में ले आया गया; इसकी कोई जरूरत न थी।

यह तो ऐसा ही हुआ कि बीज सोचे कि मैं बचूंगा; चलो कोई हर्जा नहीं, पौधे में बचूंगा। बीज कहां बचेगा? बीज तो जाएगा। तुम तो जाओगे, तुम नहीं बचोगे। तुम जैसे हो ऐसे तो तुम जाओगे ही, जा ही रहे हो, प्रतिपल जा रहे हो। तुमने जैसा अपने को जाना है यह बचने वाली बात नहीं है, लेकिन तुम्हारे भीतर कोई ऐसा तत्व भी छिपा पड़ा है, जैसा तुमने अपने को अभी तक जाना ही नहीं है, वह बचेगा। उसका तुमसे कुछ संबंध नहीं।

वह यानी वह, तत्। तुम्हारे भीतर भी तत् बैठा है—साक्षी की तरह बैठा है। जब तुम भोजन कर रहे हो तब वह भोजन नहीं कर रहा है, देख रहा है कि तुम भोजन कर रहे हो। जब तुम स्नान कर रहे हो, तब वह स्नान नहीं कर रहा है, देख रहा है कि तुम स्नान कर रहे हो। जब तुम बीमार पड़ते हो, तब वह बीमार नहीं होता, देखता है कि तुम बीमार हो गए हो। और जब तुम स्वस्थ होते हो, तब वह स्वस्थ नहीं होता, देखता है कि तुम स्वस्थ हो गए हो।

समझ लेना भेद। जिसने भोजन किया, जो भूखा था, जो बीमार पड़ा, जो स्वस्थ हुआ—इसको ही तुमने अब तक माना है कि मैं हूं। यह तो जाएगा। और तुम्हारे भीतर एक तत् छिपा है, एक साक्षी खड़ा है; एक चैतन्य—जिससे तुमने अपना संबंध ही नहीं जोड़ा है अभी तक, जिससे तुम्हारी कोई पहचान ही नहीं—तुम्हारी अपने से पहचान ही कहां है!

तुम्हारी हालत ऐसे ही है जैसे किसी ने अपने को अपने वस्त्रों के साथ एक कर लिया और सोचता है: यही मैं हूं। यह कमीज, यह कोट, यह टोपी, यह

अंगरखा, यह मैं हूं। यह तो जाएंगे, यह तुम हो ही नहीं। तुम तो बिलकुल न बचोगे। लेकिन फिर भी कुछ बचेगा। और वह कुछ तुम्हारे मैं से बिलकुल मुक्त है। वहां मैं का भाव ही नहीं उठता है। वहां मैं की तरंग ही नहीं बनती है।

इसलिए बुद्ध ने तो कह दियाः अनात्मा; कोई आत्मा नहीं। क्योंकि आत्मा अर्थात मैं। उस साक्षी में कहां आत्मा है! उस साक्षी में यह भाव ही नहीं बनता कि मैं। जहां मैं का भाव बना, संसार शुरू हुआ। जहां मैं का भाव मिटा, संसार मिटा। उसमें ठहर गये, तो अमरत्व—ऐसा जानने वालों ने कहा है।

ज्ञानमितिचेन्नद्विषतोऽपिज्ञानस्यतदसंस्थितेः।

ईश्वर-संबंधी ज्ञानविशेष का नाम भक्ति नहीं है। द्वेषी पुरुष को भी ज्ञान होता है, परंतु उसमें प्रीति नहीं होती।

यह सूत्र बहुमूल्य है। खूब ध्यानपूर्वक समझना। ज्ञानविशेष का नाम भक्ति नहीं है। ईश्वर के संबंध में जानना ईश्वर को जानना नहीं है। ईश्वर के संबंध में जानना तो बहुत सस्ता है; बिना कुछ दांव पर लगाए हो जाता है—शास्त्र पढ़ लिए और जान लिया। सदगुरुओं के वचन कंठस्थ कर लिए—तोते की भांति! तो ज्ञान तो सस्ता है। पंडित हो जाना तो बहुत सस्ता है। ज्ञानी होना बहुत कठिन है। ज्ञानी कोई ज्ञान से नहीं होता, ज्ञानी तो प्रेम से होता है। यह बात जरा उलझी हुई लगेगी।

जानने के लिए ज्ञान का संग्रह पर्याप्त नहीं है। जानने के लिए तो प्रीति जगनी चाहिए—विराट के प्रति, अनंत के प्रति, अमृत के प्रति

ईश्वर-संबंधी ज्ञानविशेष का नाम भक्ति नहीं है। इसलिए इस भ्रांति में मत पड़ लेना कि खूब जान लिया—उपनिषद पढ़े, वेद पढ़े, गीता पढ़ी, खूब जान लिया, कंठस्थ कर लिया, शास्त्र याद हो गये, सोचने लगे कि ईश्वर है, क्योंकि शास्त्रों के तर्क ने समझा दिया कि ईश्वर है। मानने भी लगे कि ईश्वर है। लेकिन यह मानना, यह जानना, सब थोथा है, सब ऊपर-ऊपर है। यह तुम्हारे हृदय में नहीं अंकुरित हुआ है। यह जानना तुम्हारा नहीं है। और जब तक तुम्हारा न हो तब तक झूठ है।

ईश्वर-संबंधी ज्ञानविशेष का नाम भक्ति नहीं है। तो असली भक्ति क्या है? असली भक्ति वैयक्तिक रूप से ईश्वर से संबंधित होना है। असली भक्ति व्यक्ति का परम से विवाह है।

शास्त्र पढ़ने से नहीं होगा। सत्य में उतरना होगा। उतरना महंगा सौदा है। खतरा है। बड़ा खतरा तो है अपने को खोने का। अपने को जो मिटाने को तैयार है, वही वहां जाएगा। कबीर ने कहा है; जो घर बारै आपना, चलै हमारे संग। यह अपना, यह मैं, यह घर तो जला डालना होगा। यह अपने ही हाथ से फूंक देना होगा। पंडित कुछ भी नहीं फूंकता, उलटे उसका मैं और मजबूत हो जाता है। वह तो अपने मैं के घर को और बड़ा कर लेता है। ज्ञान से खूब सजा लेता है।

ज्ञान आभूषण है अहंकार का। इसलिए ज्ञानी परमात्मा को नहीं जान पाता, प्रेमी जानता है। प्रेमी का अर्थ हैः जो अपने को कुर्बान करने को तत्पर है। प्रेमी का अर्थ हैः जो झुकने को, समर्पित होने को राजी है।

मैं रुका रहा
किसी बांस की डाली की तरह
हवा के सामने झुका रहा
और आवाज सुनता रहा एक
कि नति ठीक है
मगर मना नहीं है तुम्हारे लिए गति
हमने तो तुमसे उन्नत होने को कहा है
विरति की बात कहां कही है हमने
रत रहने के लिए कहा है हमने तो तुमसे
सुनने को सुनता रहा मैं यह आवाज
मगर समझ लिया मैंने
कि यह एक सलाह है
अपनी एक राह है मेरी
रुकने की और झुकने की
किसी न किसी जगह
पूरी तरह चुकने की
वही जान पाएगा परमात्मा को, जिसने यह राह पकड़ी—
अपनी एक राह है मेरी
रुकने की और झुकने की
किसी न किसी जगह
पूरी तरह चुकने की

जो अपने को पूरा उंडेल देगा। कुछ और चढ़ाने से काम नहीं होगा। किसको धोखा देते हो! फूल चढ़ाने से काम नहीं होगा, जब तक तुम अपने प्राणों के फूल न चढ़ाओ। यह धूप-दीप जलाने से कुछ भी न होगा, जब तक तुम अपने प्राणों के धूप-दीप न जलाओ। ये तुम्हारे पूजा के थाल झूठे हैं। इसलिए तो परमात्मा से कभी कोई संबंध नहीं हुआ। यह पूजा के थाल ही अड़ंगा बने हैं। यह तुम्हारे मंदिरों में बजते हुए घंटनाद और उठता हुआ धूप का धुआं—यह सब झूठा है। यह धुआं तुमसे उठे। यह नाद तुम्हारे भीतर हो! यह तुम्हारा ओंकार हो! तुम जलो! तुम गलो! तुम झुको! तुम अपने को उंडेलो, तो कुछ हो!

ईश्वर-संबंधी ज्ञानविशेष का नाम भक्ति नहीं है। द्वेषी पुरुष को भी ज्ञान होता है, परंतु उसमें प्रीति नहीं होती। ज्ञान तो सरल बात है। ज्ञान तो कैसे भी आदमी को हो सकता है। द्वेषी को भी हो सकता है। अत्यंत घृणा से भरे हुए व्यक्ति को भी हो सकता है। क्रोध से भरे हुए व्यक्ति को भी हो सकता है।

तुमने दुर्वासा जैसे ऋषियों की कहानियां तो पढ़ी ही हैं। ऋषि तो थे ही, मगर गजब के ऋषि रहे होंगे! ज्ञान तो था ही, शास्त्रों के ज्ञाता तो थे ही, लेकिन प्रीति नहीं उमगी, प्रेम का वसंत नहीं आया, प्रेम के फूल नहीं खिले प्रेम की सरिता नहीं

बही—क्रोध ही जलता रहा। फिर कभी-कभी उनको भी हो गया है, जिनके पास पांडित्य बिलकुल नहीं था—जैसे कबीर को, या कि जैसे मीरा को। पंडित तो जरा भी नहीं थे। शास्त्र का तो कुछ बोध ही नहीं था। कबीर ने तो कहा है—मसि कागद छूयो नहीं। स्याही और कागज तो कभी छुआ ही नहीं। लेकिन कबीर ने कहा है—ढाई आखर प्रेम के, पढ़ै सो पंडित होय। वे जो ढाई अक्षर प्रेम के हैं, वे जरूर पढ़े। बस उन्हीं को पढ़ लिया तो सब पढ़ लिया। उन ढाई अक्षरों में सब अक्षर आ गये। अक्षर आ गया।

प्रेम द्वार है परमात्मा का, ज्ञान नहीं।

तीन बातें खयाल में लेना। पहली बात—कर्म, दूसरी बात—ज्ञान, और तीसरी बात—भक्ति। कर्म बड़ा स्थूल अहंकार है—कुछ करके दिखा दूं। कुछ पाकर दिखा दूं। धन हो, पद हो, प्रतिष्ठा हो, दौड़-धाप—कर्ता का अहंकार है। जब आदमी कर्म से हार जाता है, गिर पड़ता है, चलते-चलते-चलते थक जाता है, अनुभव में आता है कि मेरे ही किए कुछ भी नहीं होगा, मेरे बस में नहीं है, मैं एक छोटी बूंद हूं और यह अस्तित्व बड़ा है, मेरी सामर्थ्य में नहीं—तब आदमी ज्ञान से संयुक्त होता है। कर्म से थका तो ज्ञान से संयुक्त होता है।

ज्ञान का अर्थ होता है: जीत तो न सका, जान कर रहूंगा। जीत तो नहीं हो सकी, लेकिन जानना तो हो सकता है! यह सूक्ष्म अहंकार है। फिर एक दिन आदमी इससे भी थक जाता है, कि जानना भी नहीं हो सकता; मैं इतना छोटा हूं और यह इतना विराट है—इसको जानूंगा कैसे! मैं इससे अलग कहां हूं, अलग-थलग होता तो जान लेता; मैं तो इसी में जुड़ा हूं, इसीका हिस्सा हूं। अब कोई पत्ता किसी वृक्ष का, वृक्ष को जानना चाहे, कैसे जानेगा! वह वृक्ष का ही हिस्सा है। वृक्ष उससे पूर्व है। वृक्ष चाहे तो पत्ते को जान ले, पत्ता वृक्ष को नहीं जान सकता।

एक दिन कर्म थक जाता है तो ज्ञान पैदा होता है। कर्म यानी स्थूल अहंकार ज्ञान यानी सूक्ष्म अहंकार। एक दिन ज्ञान भी थक जाता है, ततब क्षण आता है: ॐ अथातो भक्ति जिज्ञासा! तब आदमी कहता है: न मैं जीत सका, न मैं जान सका, प्रेम तो कर सकता हूं! यह हो सकता है। पत्ता वृक्ष को जीत नहीं सकता, न वृक्ष को जान सकता है; लेकिन पत्ता वृक्ष के प्रेम में लीन हो सकता है। इसमें कोई अड़चन नहीं है। कर्म—स्थूल अहंकार ज्ञान—सूक्ष्म अहंकार; भक्ति—निरहंकार।

तयोपक्षयाच्च।

क्योंकि पूर्णरूप से भक्ति का उदय होते ही ज्ञान का नाश हो जाता है।

यह सूत्र बड़ा अदभुत है। इसके दो अर्थ हो सकते हैं। तयोपक्षयाच्च। उसके जानने से क्षय हो जाता है। इसके दो अर्थ हो सकते हैं। एक अर्थ तो यह हो सकता है कि ज्ञान के जानने से भक्ति का क्षय हो जाता है। दूसरा अर्थ यह हो सकता है कि भक्ति के जानने से ज्ञान का क्षय हो जाता है। दोनों अर्थ प्यारे हैं। और दोनों अर्थ एक साथ मैं करना चाहता हूं। अब तक किसी ने दोनों अर्थ एक साथ किए नहीं हैं।

पहला, ज्ञान से भक्ति का क्षय हो जाता है। जितना आदमी जानकार होगा,

उतना ही कम प्रेम हो जाएगा। जानना प्रेम की हत्या करता है। जानना जहर है प्रेम के लिए। क्योंकि प्रेम के लिए रहस्य चाहिए, प्रेम के लिए विस्मय-विमुग्धता चाहिए और ज्ञान तो रहस्य को छीन लेता है। ज्ञान तो कहता है : हम जानते हैं रहस्य क्या है?

छोटे बच्चे प्रेम कर सकते हैं—क्योंकि आश्चर्यचकित, विस्मय-विमुग्ध, अवाक! छोटा बच्चा छोटी-छोटी चीजों के प्रेम में पड़ जाता है—समुद्र के किनारे रंगीन पत्थर बीनने लगता है; शंख-सीप बीनने लगता है। तुम ज्ञानी हो, तुम कहते हो फेंको इनको, कचरा कहां ले जा रहे हो! बच्चे की समझ में नहीं आता कि इतना प्यार पत्थर, सूरज की रोशनी में ऐसे दमक रहा है हीरे जैसा! ऐसा प्यार शंख! वह बाप की नजर बचाकर खीसे में छिपा लेता है। उसे प्रेम उपजता है। उसे हर चीज से प्रेम उपजता है। वह हर चीज के पास ठिठककर खड़ा हो जाता है। घास में फूल खिला है और वह ठिठककर खड़ा हो जाता है। वह भरोसा नहीं कर पाता ऐसा प्यारा फूल, ऐसा अदभुत रंग! एक तितली उड़ी जा रही है, वह भरोसा नहीं कर पाता; वह भागने लगता है तितली के पीछे—ऐसा चमत्कार, जैसे फूल को पंख लग गए हों! हर चीज चमत्कृत करती है, उसे, क्योंकि वह कुछ भी नहीं जानता, अज्ञानी है, विस्मय से भरा है। आश्चर्य अभी उसका जीवित है।

फिर तुम धीरे-धीरे ज्ञान ठूंसोगे, तुम हर चीज समझा दोगे। फिर एक दिन धीरे-धीरे जब वह विश्वविद्यालय से वापिस लौटेगा ज्ञानी होकर—सब गंवाकर और कोरे कागज साथ लेकर, सर्टिफिकेट लेकर—तब उसे कोई चीज विस्मय-विमुग्ध न करेगी। हर चीज का उत्तर उसके पास होगा। तुम पूछो—वृक्ष हरे क्यों हैं? वह कहेगा—क्लोरोफिल। बात खतम हो गयी। स्त्री सुंदर क्यों लगती है? हारमोन। बात खतम हो गयी। प्रेम क्या है? रसायनशास्त्र। वह समझा सकेगा सब। वह सब समझकर आ गया है। वह हर चीज को जानता है। अब अनजाना कुछ छूटा नहीं है, प्रीति कैसे उमगे! आश्चर्य ही मर गया। आश्चर्य की हवा में प्रीति उमगती है।

इसलिए तुम जानकर आश्चर्य चकित मत होना कि जैसे-जैसे आदमी का ज्ञान बढ़ा है वैसे-वैसे दुनिया में प्रेम कम हो गया। यह स्वाभाविक परिणाम है। यह शांडित्य के सूत्र में छिपा है : तयोपक्षयाच्च।

देखते नहीं, तुम रोज देखते नहीं—दुनिया में जितनी शिक्षा बढ़ती जाती है, उतना प्रेम कम होता जाता है। शिक्षित आदमी और प्रेमी, जरा मुश्किल जोड़ है! जितना शिक्षित, उतना ही कम प्रेमी। थोड़ा अशिक्षित होना चाहिए प्रेम के लिए। ग्रामीण के पास प्रेम है, शहरी के पास विदा हो गया। असभ्य के पास प्रेम है, सभ्य के पास नहीं। जो जितना सुसंस्कृत हो गया है, उसके पास औपचारिकता है, लेकिन औपचारिकता में कहीं कोई प्राण नहीं, कहीं कोई जीवन नहीं। वह जब तुमसे पूछता है, कहिए कैसे? कुछ नहीं पूछ रहा है। वह यह कह रहा है कि चलो, आगे बढ़ो। यह तो पूछना पड़ता है। हमें मतलब? तुम्हें मतलब? किसी को क्या लेना-देना है।

वर्षों बीत जाते हैं और पड़ोसी से पहचान नहीं होती। सुसंस्कृत आदमी का कोई पड़ोसी ही नहीं है। पड़ोस तो प्रेम से बनता है। जीसस ने कहा है—कौन है

पड़ोसी? क्योंकि जीसस बहुत जोर देते थे इस बात पर कि पड़ोसी से प्रेम करो, तो ही तुम परमात्मा से प्रेम कर पाओगे। अपने प्रेम को थोड़ा बढ़ाओ, फैलाओ सब तरफ; आस-पड़ोस प्रेम को फैलाओ। कौन है पड़ोसी? एक दिन उनके शिष्य ने पूछा कि आप किसको पड़ोसी कहते हैं? तो जीसस ने कहा—एक आदमी निकलता था एक सुनसान रास्ते से, डाकुओं ने हमला किया, उसे लूट लिया, उसको छुरे मारे। उसको कई घावों से भरकर पास के गड्ढे में फेंक दिया। फिर उसके गांव का ही पादरी वहां से गुजरा-रबाई—उसने देखा इस आदमी को, यह इसके गांव का ही आदमी था, इसके ही मंदिर में प्रार्थना करने आता था—यह मंदिर में ही प्रार्थना करने जा रहा था—इसने देखा—घाव से भरे, कराहते। उस आदमी ने कहा कि मुझे बचाओ; मैं मर रहा हूं, मुझे उठाओ। लेकिन उसने कहा कि अगर मैं तुम्हें उठाऊं तो मैं झंझट में पडूंगा; पुलिस पीछे पड़ेगी—क्या हुआ? कैसे हुआ? किसने मारा? तुम वहां क्या कर रहे थे? तुम्हारा कुछ हाथ तो नहीं है? फिर अभी मुझे मंदिर जाना है, मैं प्रार्थना करने जा रहा हूं। यह बेवक्त की झंझट कौन सिर ले! मंदिर की जगह पुलिस-थाने जाना पड़े! फिर इसको अस्पताल ले जाओ, फिर मर-मरा जाए, फिर न-मालूम कौन झंझट खड़ी हो। उसने तो पीठ फेर ली और चल पड़ा। फिर दूसरे गांव का एक आदमी पास से गुजर रहा था, जिसने इस आदमी को कभी देखा भी नहीं, वह पास आया, उसने इसे अपने गधे पर बिठाया, इसके घाव धोये, इसको पास की धर्मशाला में ले गया, वहां भोजन कराया, वहां इसे लिटाया चिकित्सक को बुलाया—और यह इस आदमी को जानता भी नहीं था।

तो जीसस ने पूछा अपने शिष्यों से—तुम किसको पड़ोसी कहते हो? वह पुरोहित पड़ोसी था, जो पड़ोस में ही रहता था, या यह अजनबी आदमी पड़ोसी है, जिसने इसे कभी देखा नहीं था? शिष्यों ने कहा—स्वभावतः यह अजनबी आदमी पड़ोसी है। तो जीसस ने कहा : जहां प्रेम है, वहां पड़ोस है। जीता बड़ा प्रेम है, उतना पड़ोस है। अगर प्रेम बड़ा हो तो सारी पृथ्वी पड़ोस है। और प्रेम बड़ा हो तो सारा ब्रह्मांड पड़ोस है। प्रेम की सीमा पड़ोस की सीमा है। प्रेम यानी पड़ोस।

जैसे-जैसे शिक्षा बढ़ती है, ज्ञान बढ़ता है, प्रेम संकुचित होता जाता है। तयोपक्षयाच्च। इसलिए ज्ञान भक्ति में सहयोगी तो होता ही नहीं, बाधा होता है। और दूसरा अर्थ भी बहुमूल्य है—भक्ति से ज्ञान का क्षय हो जाता है। और जब भक्ति का जन्म होता है तो आदमी पुनः अज्ञानी हो जाता है; वह सब ज्ञान-व्यान को जलाकर फेंक देता है, राख कर देता है। क्योंकि जब वह परमात्मा से थोड़ा सा जुड़ता है, तब उसे पता चलता है कि जो जाना सब कचरा था। वह तो सब झूठ था वह तो सब व्यर्थ था। अब असली हीरे मिले। तो वह जो उसने कंकड़-पत्थर बीन रखे थे, फेंक देता है। जो उसने शास्त्रों का उच्छिष्ट इकट्ठा कर लिया था, अब क्यों करे! अब तो अपने ही शास्त्र का जन्म हो गया है। अब तो उपनिषद अपने भीतर ही उतर रहा है। अब क्यों किसी उपनिषद को बांधे फिरे। अब क्यों किसी कुरान की आयत को दोहराए! अपनी ही आयत गर्भ में आ गयी है, पक रही है। अपने ही फल पकने लगे, अपने ही

फूल खिलने लगे। तो जैसे ही भक्ति का जन्म होता है, ज्ञान का क्षय हो जाता है। भक्ति और ज्ञान ऐसे हैं जैसे रोशनी और अंधेरा। रोशनी है तो अंधेरा नहीं। अंधेरा है तो रोशनी नहीं। दोनों साथ नहीं होते हैं।

ज्ञानी भक्त नहीं होता—ज्ञानी यानी पंडित, खयाल रखना—और भक्त ज्ञानी नहीं होता। भक्त तो निर्दोष हो जाता है, समस्त ज्ञान से मुक्त हो जाता है। भक्त तो पुनः अज्ञानी हो जाता है। क्योंकि परमात्मा अज्ञेय है; उसके सामने हम अज्ञानी की तरह ही खड़े हो सकते हैं, ज्ञानी की तरह नहीं। ज्ञान का दावा अहंकार का दावा है।

इस सूत्र को खूब हृदय में सम्हालकर रखना, यह कुंजी है: -तयोपक्षयाच्च। क्योंकि पूर्णरूप से भक्ति उदय होते ही ज्ञान का नाश हो जाता है।

तीर-तीर
थका शरीर लेकर चलता हूं
रुक जाता हूं शाम को
नाम का सहारा
काट देता है रातें
और फिर पौ फटते ही
उतर पड़ता हूं पानी में
वाणी में घोलकर विश्वास
कि पहुंच रहा हूं ठांव पर
टेक पाऊंगा
किसी-किसी संध्या में
अपना माथा
अशरण-शरण तुम्हारे पांव पर
नाम से रूप तक
रूप से नाम तक यात्रा
चल रही है
ऐसा नहीं लगता
किसी दिन बंद होगी यह
लगता है रोज-रोज
अधिकाधिक छंद होगी यह!

बड़ा जीवन पड़ा है शेष अभी। जो तुमने जाना, वह तो कुछ भी नहीं है। बड़ा जीवन शेष पड़ा है अभी। जो तुमने जाना, वह तो मृत्यु है। अमृत तो अपरिचित पड़ा है। बड़ी यात्रा करनी है। यह कुछ ऐसी यात्रा नहीं कि समाप्त होगी।

ऐसा नहीं लगता
किसी दिन बंद होगी यह
लगता है रोज-रोज
अधिकाधिक छंद होगी यह!

रोज-रोज नए छंद, नए गीत उमगेंगे। रोज-रोज ओंकार नए रूपों में प्रकट होगा बढ़ो! ज्ञान से नहीं, कर्म से नहीं—प्रेम से!

ॐ अथातोभक्तिजिज्ञासा!

आज इतना ही।

दूसरा प्रवचन

प्रीति को कामना से मुक्त करो

②

जीवन क्या है?

★

शांडिल्य ऋषि के संबंध में कुछ कहें!

★

बुद्धि श्रद्धा करने में बाधा बनती है।
वह आशंका और प्रश्न उठाती है!

★

प्रीति और कामना के बीच क्या कुछ संबंध है?

पहला प्रश्न : जीवन क्या है?

ऐसे प्रश्न सरल लगते हैं। सभी के मन में उठते हैं। पर ऐसे प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है। ऐसे प्रश्न वस्तुतः प्रश्न ही नहीं हैं, इसलिए उनका उत्तर नहीं।

जीवन क्या है, इसका उत्तर तभी हो सकता है जब जीवन के अतिरिक्त कुछ और भी हो। जीवन ही है, उसके अतिरिक्त कुछ और नहीं है। हम उत्तर किसी और के संदर्भ में दे सकते थे, लेकिन कोई और है नहीं, जीवन ही जीवन है। तो न तो कुछ लक्ष्य हो सकता है जीवन का, न कोई कारण हो सकता जीवन का। कारण भी जीवन है और लक्ष्य भी जीवन है।

ऐसा समझो, तुमसे कोई पूछे—किस चीज पर ठहरे हो? तुम कहो—छत पर। और छत किस पर ठहरी है? तो तुम कहो—दीवालों पर। और दीवालें किस पर ठहरी हैं? तो तुम कहो—पृथ्वी पर। और पृथ्वी किसी पर ठहरी है? तो तुम कहो गुरुत्वाकर्षण पर। और ऐसा कोई पूछता चले—गुरुत्वाकर्षण किस पर ठहरा है? तो—चांद-सूरज पर। और चांद-सूरज तारों पर। और अंततः पूछे कि यह सब किस पर ठहरा है? तो प्रश्न तो ठीक लगता है, भाषा में ठीक जंचता है, लेकिन सब किसी पर कैसे ठहर सकेगा, सब में तो वह भी आ गया है जिस पर ठहरा है। सब में तो सब आ गया। बाहर कुछ बचा नहीं।

इसको ज्ञानियों ने अति प्रश्न कहा है। सब किसी पर नहीं ठहर सकता। इसलिए परमात्मा को स्वयंभू कहा है। अपने पर ही ठहरा है। अपने पर ही ठहरा है, इसका अर्थ होता है, किसी पर नहीं ठहरा है।

जीवन क्या है, तुम पूछते। जीवन जीवन है। क्योंकि जीवन ही सब कुछ है। मेरे लिए जीवन परमात्मा का पर्यायवाची है। लेकिन प्रश्न पूछा है, जिज्ञासा उठी है, तो थोड़ी खोजबीन करें। अगर उत्तर देना ही हो, अगर उत्तर के बिना बेचैनी मालूम पड़ती हो, तो फिर जीवन को दो हिस्सों में तोड़ना पड़ेगा। जिनने उत्तर दिए, उन्होंने जीवन को दो हिस्सों में तोड़ लिया। एक को कहा—यह जीवन और एक को कहा—वह जीवन। यह जीवन माया, वह जीवन सत्य इस जीवन का अर्थ फिर खोजा जा सकता है। इस जीवन का अर्थ है—उस जीवन को खोजना। इस जीवन का प्रयोजन है—उस जीवन को पाना। यह अवसर है। मगर तब जीवन को बांटना पड़ा। बांटो तो उत्तर मिल जाएगा। मगर उत्तर थोड़ी दूर तक ही काम आएगा। फिर अगर कोई पूछे कि वह जीवन क्यों है—सत्य का, मोक्ष का, ब्रह्म का—फिर बात वहीं अटक जाएगी। वह जीवन बस है।

लेकिन यह विभाजन काम का है। कृत्रिम है, फिर भी काम है। अपने भीतर भी तुम इन दो धाराओं को थोड़ा पृथक-पृथक करके देख सकते हो। थोड़ी दूर तक सहारा मिलेगा। एक तो वह है जो तुम्हें दिखायी पड़ता है, और एक वह है जो देखता है। दृश्य और द्रष्टा। ज्ञाता और ज्ञेय। जाननेवाला और जाना जानेवाला। उसमें ही जीवन को खोजना जो जाननेवाला है। अधिक लोग उसमें खोजते हैं जो दृश्य है—धन में खोजते, पद में खोजते। पद और धन दृश्य हैं। बाहर खोजते। बाहर जो भी है सब दृश्य है: उसमें खोजना जो द्रष्टा है, साक्षी है, तो तुम्हें परम जीवन की स्फुरणा मिलेगी। उसी स्फुरणा में उत्तर है—मैं उत्तर नहीं दे सकूंगा। कोई उत्तर कभी नहीं दिया है। उत्तर है नहीं, मजबूरी है— देना चाहा है बहुतों ने कभी किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया है। और जिन्होंने उत्तर सच में देने की चेष्टा की है, उन्होंने सिर्फ इशारे बताए हैं कि तुम अपना उत्तर कैसे खोज लो। उत्तर नहीं दिया, संकेत किए हैं—ऐसे चलो, तो उत्तर मिल जाएगा।

उत्तर बाहर नहीं है, उत्तर तुम्हारे भीतर है। उत्तर है इस रूपांतरण में कि मेरी आंखें बाहर न देखें, भीतर देखें। मेरी आंखें दृश्य को न देखें, द्रष्टा को देखें। मैं अपने अंतरतम में खड़ा हो जाऊं, जहां कोई तरंग नहीं उठती; वहीं उत्तर है, क्योंकि वहीं जीवन अपनी पूरी विभा में प्रकट होता है। वहीं जीवन के सारे फूल खिलते हैं। वहीं जीवन का नाद है—ओंकार है।

इस छोटी सी कविता को समझो—

'आगे?'
ऊंगते-ऊंगते बस यूं ही किसी एक ने पूछा
'आगे भी पुल था, वही पुल था, वही पुल—
नीलिमी रात दहकती थी जहां नीचे, बहुत नीचे, जमीं पर
इस कदर नीचे कि झुककर अगर आवाज भी दो
चूर हो जाए वह आवाज गिरकर भी गिर के जमीं पर
नीलिमी रात दहकती थी वहां नीचे, बहुत नीचे, जमीं पर
और दोपहर का पारा था, बरसता था फलक से
मैं कई सदियां चला, चलता रहा चलता रहा पुल पे मगर
दूसरा कोई सिरा पुल का नजर आया न मुझको
आखिरश बैठ गया थक के, बस एक सांस की खातिर
पल को सुस्ता के उठा
बस कि सोचा था उठूं
पांव को पुल से हटाया तो हटा पाया न पांव
हाथ से पांव छुड़ाया तो मेरा हाथ न छूटा
वह तिलिस्मी था कोई पुल कि मेरा जिस्म चिपकने सा लगा था
और पुल के, उसी पुल के कई दांत से अब उगने लगे थे
'ऊं एक ने लंबी जम्हाई ली और कहा 'झूठ'

'दूसरी, अच्छी सी, कोई कहानी हो तो सुनाओ'
मैंने कुछ सोच के फिर एक कहानी थी शुरू की :
और शहजादा कई कांच के दरवाजों से गुजरा
पहले दरवाजे से दो पांव नजर आए परी के
नीलिमी हौज में डूबे हुए, दो गोरे कंवल से
दूजे दरवाजे से एक हाथ नजर आया परी का
संगेमर्मर पे महकता हुआ इक फूल पड़ा था
तीजे दरवाजे से भी पीठ ही नजर आयी परी की
चौथे दरवाजे से भी चेहरा नजर न आया उसका
और शहजादा कई कांच के दरवाजों से गुजरा
कोई दरवाजा मगर हौज की जानिब न खुला—
बाप रे, फिर?—ऊंघने वालों ने अब जाग के पूछा
सिर्फ इतना ही नजर आया कि वह सोनपरी
कितनी सदियों से उसी हौज पर यूं बैठी हुई है
और शहजादा कई सदियों से उस शीशमहल में
हौज तक जाने का दरवाजा है जो ढूंढ रहा है
एक दरवाजा उसी हौज पे खुलता था—'
'मिला?'
बीच में चौंक के यूं पूछा किसी ने
'हां मिला—
'और शहजादा परी तक पहुंचा?'
अब के आवाज में उम्मीद थी, ताकीद भी थी
'हां, वह पहुंचा तो मगर—'
'हां, मगर—'
'सब अंग थे उस हूर के बस चेहरा नहीं था'
'धत!'—तिलमिलाकर कहा एक ने, 'सब झूठ'
जिंदगी सच है कि झूठ ही लगती अगर अफसाना न होती।

जिंदगी, सच है कि झूठ ही लगती अगर अफसाना न होती। वह जो दृश्य का जगत है, एक कहानी है, जो तुमने रची और जो तुमने तुमसे ही कही। एक नाटक है, जिसमें निर्देशक भी तुम, कथा-लेखक भी तुम, अभिनेता भी तुम, मंच भी तुम, मंच पर टंगे पर्दे भी तुम और दर्शक भी तुम। एक सपना है, जो तुम्हारी वासनाओं में उठा और धुएं की तरह जिसने तुम्हें घेर लिया। एक तो जिंदगी यह रही—दुकान की, बाजार की, पत्नी-बेटे की, आकांक्षाओं की। संसार जिसे कहा है। और एक जिंदगी और भी है—वह जो भीतर बैठा देख रहा है। देखता है कि जवान था, अब बूढ़ा हुआ; देखता था कि तमन्नाएं थीं, अब तमन्नाएं न रहीं; देखता था कि बहुत दौड़ा और कहीं न पहुंचा; देखता था, देखता रहा है, सब आया, सब गया, जीवन की धारा

बहती रही, बहती रही, लेकिन एक है कुछ भीतर जो नहीं बहता, जो ठहरा है, जो थिर है, जो अडिग है, वह साक्षी। एक जीवन वह है।

बाहर का जीवन भटकाएगा, भरमाएगा। उत्तर के आश्वासन देगा और उत्तर कभी आएगा नहीं। भीतर का जीवन ही उत्तर है।

तुम पूछते हो—जीवन क्या है? तुम्हें जानना होगा। तुम्हें अपने भीतर चलना होगा। मैं कोई उत्तर दूं, वह मेरा उत्तर होगा। शांडिल्य कोई उत्तर दें, वह शांडिल्य का उत्तर होगा। वह उन्होंने जाना, तुम्हारे लिए जानकारी होगी। और जानकारी ज्ञान में बाधा बन जाती है। जानकारी से कभी जानना नहीं निकलता। उधारी से कहीं जीवन निकला है!

बजाय तुम बाहर उत्तर खोजो, तुम अपने को भीतर समेटो। शास्त्र कहते हैं, जैसे कछुवा अपने को समेट लेता है भीतर, ऐसे तुम अपने को भीतर समेटो। तुम्हारी आंख भीतर खुले, और तुम्हारे कान भीतर सुनें, और तुम्हारे नासापुट भीतर सूंघें, और तुम्हारी जीभ भीतर स्वाद ले, और तुम्हारे हाथ भीतर टटोलें, और तुम्हारी पांचों इंद्रियां अंतर्मुखी हो जाएं; जब तुम्हारी पांचों इंद्रियां भीतर की तरफ चलती हैं, केंद्र की तरफ चलती हैं, तो एक दिन वह अहोभाग्य का क्षण निश्चित आता है जब तुम रोशन हो जाते हो। जब तुम्हारे भीतर रोशनी ही रोशनी होती है। और ऐसी रोशनी जो फिर कभी बुझती नहीं। ऐसी रोशनी जो बुझ ही नहीं सकती। क्योंकि वह रोशनी किसी तेल पर निर्भर नहीं—'बिन बाती बिन तेल'। अकारण है। वही जीवन का सार है। वही जीवन का 'क्या' है।

उत्तारों में नहीं मिलेगा समाधान। समाधि में समाधान है।

दूसरा प्रश्नः शांडिल्य ऋषि के संबंध में कुछ कहें।

जिनके भीतर से ऐसे अपूर्व सूत्रों का जन्म हुआ, उनके संबंध में कुछ जानने का मन स्वाभाविक है।

शांडिल्य ऋषि के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। किस ऋषि के संबंध में कुछ भी ज्ञात है! कोई लकीर नहीं छोड़ी, पदचिह्न नहीं छोड़े हैं। अच्छा ही किया है। नहीं तो तुम्हारी आदतें व्यर्थ में उलझ जाने की हैं। शांडिल्य ऋषि कहां पैदा हुए, इससे क्या सार होगा? पर्व में पैदा हुए कि पश्चिम में, उत्तर में पैदा हुए कि दक्षिण में, क्या फर्क पड़ेगा? इस गांव में पैदा हुए कि उस गांव में, क्या फर्क पड़ेगा? शांडिल्य ऋषि के पिता कौन थे, उनका नाम क्या था, क्या फर्क पड़ेगा? अ, ब, स, द, कोई भी पिता रहे हों। कितने दिन जीए—साठ, कि सत्तर, कि अस्सी, कि सौ, कि डेढ़ सो साल, क्या भेद पड़ता है! इतने लोग जी रहे हैं, सत्तर साल जीओ तो पानी में चला जाता है, सात सौ साल जीओ तो पानी में चला जाता है। सपना ही है, कितना लंबा देखा इससे क्या भेद पड़ेगा? जागने पर पाओगे कि सपना लंबा था कि छोटा था, सब बराबर था, क्योंकि सपना सपना था।

शांडिल्य ऋषि के संबंध में कुछ भी पता नहीं है। बस यही सूत्र, भक्तिसूत्र, इतनी ही सुगंध छोड़ गए हैं। मगर इतनी सुगंध काफी है। क्योंकि इन सूत्रों के अनुसार अगर तुम अपनी आंखें खोलोगे तो तुम्हारे भीतर का ऋषि जो सोया है, जाग जाएगा। वही असली बात है। शांडिल्य के संबंध में जानने से क्या होगा? शांडिल्य को ही जान लो। और वह जानने का मार्ग तुम्हारे भीतर है।

इसलिए पूरब के किसी मनीषी के संबंध में कुछ भी पता नहीं। पश्चिम के लोग बहुत हैरान होते हैं। और उनका कहना ठीक ही है कि पूरब के लोगों को इतिहास लिखना नहीं आता। उनकी बात सच है। लेकिन पूरब की मनीषा को भी समझना चाहिए। पूरब के लोग इतना लिखने के आदी रहे हैं—सबसे पहले भाषाएं पूरब में जन्मी, 'सबसे पहले किताबें पूरब में जन्मी, सबसे पहले पूरब में लिखावट पैदा हुई, सबसे पुरानी किताबें पूरब के पास है—तो जिन्होंने वेद लिखे, उपनिषद लिखे, गीता लिखी, वे चाहते तो इतिहास न लिख सकते थे! चाहकर नहीं लिखा।

उनकी बात भी समझनी चाहिए।

जानकर नहीं लिखा। जिन्होंने कहा संसार माया है, वे इतिहास लिखें तो कैसे लिखें! किस बात का इतिहास! बबूलों का इतिहास! इंद्रधनुषों का इतिहास! मृग-मरीचिकाओं का इतिहास! जो है ही नहीं, उसका इतिहास! पश्चिम ने इतिहास लिखा, क्योंकि पश्चिम ने बाहर के जगत को सत्य माना है। इतिहास लिखने के पीछे बाहर के जगत को सत्य मानने की दृष्टि है। सत्य है, तो महत्वपूर्ण है। तुम सुबह उठकर अपने सपने तो नहीं लिखते! मिनट-दो मिनट भी याद नहीं रखते। जाग गए, बात खतम हो गयी। सपना भी कोई लिखने की बात है! तुम डायरी में अपने सपने नहीं लिखते। हालांकि पश्चिम में लोग सपने भी डायरी में लिखते हैं। जब बड़े सपने को मान लिया, तो छोटे सपने को भी मानना पड़ता है। और जिन्होंने बड़ा सपना ही इनकार कर दिया, वे छोटे सपने की क्या फिकर करें? सपने के भीतर सपना है! पूरब ने इतिहास नहीं लिखा, क्योंकि पूरब की दृष्टि यह है कि इन सब व्यर्थ की बातों को लिखने से क्या होगा? सार क्या है? प्रयोजन क्या है? सिर्फ बच्चों को सताओगे स्कूल में, कि तिथि-तारीख याद करते रहें, जिनका कोई मूल्य नहीं है। अब सिकंदर कब पैदा हुआ, इससे क्या लेना-देना। न भी हुआ हो तो अच्छा—न ही हुआ हो तो अच्छा। इस कूड़ा-कर्कट को क्यूं याद रखो। यह किस काम पड़ता है।

नहीं, पूरब ने पुराण लिखा, इतिहास नहीं लिखा। पुराण बड़ी और बात है। पश्चिम में पुराण जैसी कोई चीज है ही नहीं।

पुराण क्या है?

एक सिकंदर हुआ, दूसरा सिकंदर हुआ, तीसरा सिकंदर हुआ, सिकंदरों पर सिकंदर हुए, अब सब की कहानी लिखने से क्या सार है। हमने सिकंदर की जो वृत्ति है, उसकी एक कहानी लिख ली। उस वृत्ति की प्रतीक-कहानी। एक आदमी धन के पीछे पागल हुआ, दूसरा आदमी धन के पीछे पागल हुआ, तीसरा आदमी धन के पीछे पागल हुआ, करोड़ों लोग धन के पीछे पागल हुए, अब सब का इतिहास लिखने की

क्या जरूरत है। धन के पागलपन की बात हमने एक कहानी में निचोड़ कर ली। उसको हम पुराण कहते हैं।

पुराण का मतलब है, ऐसा कभी हुआ नहीं है, लेकिन ऐसा ही हो रहा है चारों तरफ। उस में से सार निचोड़ लिया है, संक्षिप्त निकाल लिया है, सूत्र बना लिया है। उस सूत्र को हमने लिखा है। अगर कोई खोजने जाए तो शायद वैसा ठीक-ठीक कभी न हुआ हो।

जैसे समझो, बुद्ध की प्रतिमा है; यह पुराण है, इतिहास नहीं। क्यों पुराण है? क्योंकि इसमें इस बात की फिकर नहीं की गयी कि बुद्ध की नाक जैसी थी वैसी ही इस प्रतिमा में है या नहीं, इस की भी फिकर नहीं की गयी कि बुद्ध के बाल जैसे थे वैसे ही प्रतिमा में आए कि नहीं। इस बात की फिकर नहीं की गयी कि बुद्ध का नहीं है। फिर यह क्या है? सीना जैसा था वैसा ही आया या नहीं—यह कोई फोटोग्राफ नहीं है। यह इतिहास यह समस्त बुद्धों की प्रतिमा है। जो भी जागा, वह किस तरह बैठता है, उसका सार-सूत्र इस में है। जो भी जागा, किस तरह चलता है, उसका सार-सूत्र इस में है। जो भी जागा उसकी आंखें कैसी होती हैं; जो भी जागा, उसकी दृष्टि कैसी निर्मल होती है, उसके बैठने में भी कैसी मग्नता और शांति होती है, उसकी मौजूदगी में कैसा प्रसाद बरसता है—यह सारे बुद्धों की प्रतिमा है।

तुमने देखा जैन मंदिर में जाकर चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएं तुम भेद न कर सकोगे कौन किसकी है। सब एक जैसी हैं। भेद करने के लिए हर प्रतिमा के नीचे चिह्न बनाना पड़ा है। किसी का प्रतीक सिंह और किसी का कुछ और किसी का कुछ, वह प्रतीक बनाना पड़ा है, सिर्फ भेद करने के लिए ताकि पता चले कि कौन किस की है। नहीं तो मूर्तियां सब एक-जैसी हैं। क्या तुम सोचते हो चौबीस तीर्थंकर एक जैसे थे? सब की ऊंचाई एक जैसी थी, नाक एक जैसी थी, बाल एक जैसे थे, कान एक जैसे थे? इस भूल में मत पड़ना। यहां दुनिया में दो आदमी एक जैसे होते कब हैं? कभी नहीं होते। तुम्हारे अंगूठे का चिह्न बस तुम्हारा ही है, दुनिया में किसी दूसरे के अंगूठे का चिह्न वैसा नहीं होता। न पहले कभी हुआ है, न आगे कभी होगा। हर आदमी यहां अनूठा है। तो चौबीस तीर्थंकर तुम एक जैसे पाओगे कहां? सबके कान इतने लंबे कि कंधा छू रहे हैं। इतने-इतने लंबे कान वाले चौबीस आदमी एक-साथ पाओगे कहां?

और फिर मूढ़ हैं, जो इन मूर्तियों को इतिहास समझ लेते हैं। वे कहते हैं, जब तक कान इतना लंबा न हो तब तक कोई आदमी तीर्थंकर है ही नहीं। अब कान महत्वपूर्ण हो गया। और प्रतीक किसी और ही बात का है। वह लंबा कान सिर्फ सूचक है, संकेत है। वह लंबा कान इस बात का सूचक है कि यह लोग श्रवण में कुशल थे। वही सुनते थे, जो था जैसा था। इन्होंने ओंकार का नाद सुना था, इस बात की खबर देने के लिए लंबा कान बनाया। यह जो नाद से भरा हुआ जगत है, इनको सुनायी पड़ गया था। इनकी बड़ी-बड़ी आंखें सिर्फ इस बात की खबर हैं कि इनकी दृष्टि बड़ी थी, गहरी थी, पारदर्शी थी। इनकी अडिग प्रतिमा, थिर-भाव, शून्य-भाव

इस बात का प्रतीक है कि भीतर इनके सब डांवाडोलपन विदा हो गया था। थिर हो गए थे; कोई कंपन नहीं उठता था, निष्कंप हो गए थे।

एक बुद्ध की प्रतिमा में सारे बुद्धों की प्रतिमाएं हैं। और एक बुद्ध की कहानी में सारे बुद्धों की कहानी है। और एक बुद्ध के वचनों में सारे बुद्धों के वचन हैं।

पश्चिम के पास ऐसी दृष्टि नहीं है। वे पूछते हैं इतिहास, हम लिखते हैं पुराण। शांडिल्य की हमने फिकर नहीं की। क्या सार है! असार में क्या सार है! तुम पत्र लिखते हो अपनी प्रेयसी को, तुम पत्र के नीचे यह थोड़े ही लिखते हो कि पार्कर फाउंटेनपेन से लिखा गया। कि लिखते हो? लिखते हो तो पागल हो। तुमने पार्कर फाउंटेनपने से लिखा, कि शेफर से लिखा, इससे क्या फर्क पड़ता है। लिखने वाला न तो पार्कर फाउंटेनपेन है, न शेफर फाउंटेनपेन है। फाउंटेनपेन ने तो केवल उपकरण का काम किया है। शांडिल्य ऋषि तो उपकरण हैं, परमात्मा बोला। फाउंटेनपेन के संबंध में लिखो तो इतिहास होगा; भ्रांति होगी, भूल हो जाएगी। इसलिए हमने अच्छा ही किया कि ऋषियों के संबंध में कुछ भी नहीं बचाया; ताकि तुम छुद्र में न उलझ जाओ; नहीं तो तुम्हारे इस छुद्र में उलझ जाने का इतना गहरा भाव रहता है कि छुद्र में ही तुम उलझ जाते हो।

अब जैनों में श्वेतांबर हैं, दिगंबर हैं, वे लड़ते रहते हैं छुद्र बातों पर। ऐसी छुद्र बातों पर कि भरोसा ही न हो कि इन बातों पर भी कोई लड़ सकता है! कि महावीर की प्रतिमा आंख बंद किए हो कि खुली हुई हो। अब यह बात सच है कि प्रतिमा दोनों काम नहीं कर सकती—प्रतिमा है, अब आंख खोलना और बंद करना तो नहीं कर सकती, महावीर दोनों काम करते रहे होंगे; आंख खोलना और आंख बंद करना दोनों ही करते रहे होंगे। आखिर जिंदा आदमी थे, तो आंख कभी खोलते भी होंगे, कभी बंद भी करते होंगे, ऐसा थोड़े ही कि आंख बंद किए सो बंद किए, या खोल ली तो खोले ही रहे—कोई पागल तो नहीं थे। प्रतिमा में मुश्किल है, क्योंकि प्रतिमा पत्थर है। अब प्रतिमा पलक नहीं झंप सकती, तो प्रतिमा में या तो आंख खुली होगी या बंद होगी।

मगर झंझट खड़ी हो जाती है इसी बात पर कि प्रतिमा आंख खुली बनाएं कि बंद बनाएं। लोग हैं जो कहते हैं, हम तो खुली आंख की ही पूजा करेंगे। और लोग हैं जो कहते हैं, हम तो बंद आंख की ही पूजा करेंगे—इस पर सिर फूट जाते हैं, अदालतों में मुकदमे चलते हैं, मंदिर तोड़ दिए जाते हैं। और ऐसा किसी एक धर्म में होता हो ऐसा नहीं, सभी धर्मों में होता है। छुद्र में उलझ जाते हैं हम। हम छुद्र के लिए बड़े उत्सुक हैं। हमें छुद्र चाहिए ही, ताकि हम जल्दी से मुट्ठी बांध लें। विराट तो हमारी पकड़ में नहीं आता और विराट हमें डराता भी है।

अब शांडिल्य-सूत्रों को समझने से ज्यादा चिंता तुम्हारी इस बात की है कि शांडिल्य ऋषि के संबंध में कुछ पता चलना चाहिए। क्या फायदा? क्या करोगे? उससे कहीं भी तो कोई लाभ नहीं होगा तुम्हारी समाधि में, तुम्हारी भक्ति में। व्यर्थ को क्यों पूछना चाहते हो? कैसे कपड़े पहनते थे पहनते थे कि नहीं पहनते थे, किस

मकान में रहते थे, कैसा भोजन करते थे? लेकिन हम क्यों पूछना चाहते हैं, हमारे भीतर यह प्रश्न क्यों उठता है? प्रश्न से भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह है—गीता ने पूछा है यह प्रश्न—प्रश्न से भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि गीता के मन में यह प्रश्न क्यों उठता है? सूत्र काफी नहीं हैं? सूत्र पर्याप्त नहीं हैं? सूत्रों में ही ऋषि को खोजो, सूत्रों से बाहर नहीं। सूत्रों में ही पकड़ो ऋषि को। सूत्रों में ही उनकी उपस्थिति है, क्योंकि यह उनके प्राण और उनकी प्रज्ञा हैं। यह उनका अनुभव है। यह उनकी जीवंत प्रतीति है। यह सूत्र ऐसे ही नहीं हैं कि किसी लेखक ने लिखे हैं। जिसने जीए हैं—यही तो भेद है ऋषि और कवि का।

कवि हम उसे कहते हैं जिसने जीया नहीं और गाया, ऋषि हम उसको कहते हैं जिसने जीया और गाया; जो जीया, वही गाया; जैसा जीया, वैसा ही गाया; जाना तो कहा; उसको ऋषि कहते हैं। बिना जाने कहा, उसको कवि कहते हैं। इसलिए कवि की कविता पढ़ो तो बहुत सुंदर मालूम होगी। और अगर कभी भूल-चूक कवि से मिलना हो जाए, तो बड़ा चित्त में विषाद होगा। भरोसा ही न आएगा कि यही सज्जन! इतनी ऊंची कविता! इन पर प्रकट कैसे हुई इतनी ऊंची कविता! आकाश की बात है कविता में। और यह हो सकता है मिल जाएं तुम्हें कहीं चोरस्ते पर बैठे बीड़ी पीते, मक्खियां भिनभिना रही हों, कई दिन से नहाए न हों, तुम्हें भरोसा ही न आए कि कविता इन पर उतरती क्यों है? कविता को उतरने के लिए और कोई नहीं मिलता? इनको चुना है! इस गरीब आदमी को क्यों परेशान कर रही है कविता। तुम्हें भरोसा न आए, तुम शायद सोचो कि कहीं से नकल कर ली होगी, किसी की उधार चुरा ली होगी, इनकी शकल-सूरत ऐसी नहीं मालूम पड़ती कि कविता ने इन्हें वरा होगा। मगर अक्सरइ ऐसा होगा। कवि और कविता में कोई तालमेल नहीं होता। किसी क्षण में कवि पकड़ लेता है, जैसे बिजली कौंध गयी।

ऋषि ऐसा है जैसे दिन का सूरज निकला—बिजली कौंध गयी ऐसा नहीं, किसी क्षण में नहीं, उसका अनुभव है, उसकी प्रतीति है, उसका साक्षात्कार है। शांडिल्य ऋषि हैं, और उन्हें अगर तुम्हें पकड़ना हो तो उनके सूत्रों में ही डुबकी लगा लेना। वह जैसा कहते हैं, उसको ही अगर तुम समझ गए, तो तुम पाओगे कि तुम शांडिल्य ऋषि को समझ गए। ऋषि का अनुभव तुम्हारे भीतर छिपे हुए प्रेम के प्रवाह में होगा। छुद्र को मत पकड़ो। छुद्र की चिंता ही मत करो। छुद्र की चिंता तुम्हारे मन में उठी कि तुम विराट से वंचित होने लगे। मगर हमारी ऐसी ही उत्सुकताएं हैं। हम मूल तो प्रश्न पूछते नहीं, हम गौण प्रश्न पूछते हैं। और कभी-कभी गौण के विवाद में उलझ जाते हैं। सारी दुनिया में तथाकथित धार्मिक लोग गौण के विवाद में उलझ गए हैं। मुसलमान सोचता है कि काबा कि तरफ हाथ जोड़कर प्रार्थना करूं तो ही पहुंचेगी। कोई सोचता है, काशी में स्नान करूं तो ही पहुंचूंगा। गौण में उलझ गए हैं। प्रार्थना महत्वपूर्ण है, किस तरफ हाथ किए क्या फर्क पड़ता है? परमात्मा सब ओर है। काबा ही काबा है। सब पत्थर काबा के पत्थर हैं। और सब जल गंगा है। मन चंगा तो कठौती में गंगा। वह नल की टोंटी से जो आती है, वह भी गंगा है, मन चंगा

हो। रोग से भरे हुए मन को लेकर चले जाओगे, गंगा में भी स्नान कर आओगे, तो क्या होगा?

लेकिन हम छुद्र को पकड़ लेते हैं। प्रार्थना तो भूल जाती है, प्रार्थना की औपचारिकता याद रह जाती है। मंदिर तो हो आते हैं, लेकिन मंदिर का भाव भीतर है ही नहीं। और भाव हो तो मंदिर जाओ क्यों, जरूरत क्या है? जहां बैठे, वहां मंदिर है। जहां बैठकर उसकी स्तुति उठी, वहां मंदिर है। जहां बैठकर आंखें बंद कर लीं, उसके भाव में रसविभोर हुए, वहां मंदिर है।

यहां रोज ऐसा होता है। मैं जीसस पर बोलता हूं तो कोई ईसाई मुझसे आकर कहता है—कि जो बातें आपने कहीं, यह गजब की। मैं कृष्ण पर बोलता हूं तो हिंदू आकर कहता है कि यह बातें अपने बड़े गजब की कहीं। और उन दोनों मूढ़ों को इस बात का खयाल ही नहीं कि जीसस हों कि कृष्ण, मैं वही बोलता हूं जो मुझे बोलना है। मैं बोलने वाला हूं, जीसस और कृष्ण तो खूंटियां हैं। जिन पर मुझे टांगना है वही टांगता हूं। मगर जीसस का नाम और ईसाई का हृदय गदगद हो जाता है—बस नाम से। मुझे जो कहना है वही कहना है। वही मैंने कृष्ण के नाम से भी कहा है—ठीक वही, शब्दशः वही—मैंने कबीर के नाम से भी कहा है—ठीक वही, अक्षरशः वही। वही मैंने बुद्ध के नाम से भी कहा है। लेकिन यह ईसाई तब बैठा सुनता रहा है, इसको कुछ खास भाव नहीं हुआ था। लेकिन जब जीसस का नाम लिया, बस तब गदगद हो गया। जीसस से इसके अहंकार का जोड़ है। किसी का जोड़ कबीर से है, और किसी का जोड़ महावीर से है। मगर तुम सब गौण से उलझ गए हो। नहीं तो तुम पाओगे जो महावीर ने कहा है, वही बुद्ध ने कहा है, वही कृष्ण ने कहा है, वही मोहम्मद ने कहा है।

अगर तुम मूल को देखोगे तो तुम यह व्यर्थ की बातें भूल जाओगे। तुम न हिंदू रह जाओगे, न मुसलमान, न ईसाई। तुम सिर्फ आदमी हो जाओगे। और वही बात मूल्य की है। आदमी पाना बड़े कठिन है। हिंदू मिल जो, ईसाई मिल जाते, बौद्ध मिल जाते, जैन मिन जाते—आदमी नहीं मिलता।

यूनान में एक बहुत बड़ा फकीर हुआ है, डायोजनीज। वह भरी दोपहरी में लालटेन लेकर घूमता था, जलती लालटेन, एथेंस की सड़कों पर। लोग उससे पूछते— तुम पागल तो नहीं हो गए? तुम क्या खोज रहे हो लालटेन लेकर? वह लोगों के चेहरे में लालटेन से देखता, वह कहता—मैं आदमी खोज रहा हूं। जिंदगी के अंत में जब डायोजनीज मर रहा था तो किसी ने उससे पूछा—वह अपनी लालटेन रखे पड़ा था—किसी ने उससे पूछा कि तुम जिंदगीभर दिन की भरी दोपहरी में लालटेन जलाकर आदमी खोजते रहे, मिला? डायोजनीज ने आंखें खोलीं और कहा—आदमी तो नहीं मिला, लेकिन यही क्या कम है कि किसी ने मेरी लालटेन नहीं चुराई। धन्यवाद इसीका कि लालटेन बच गयी। नहीं तो कई की नजर लालटेन पर लगी थी। आदमी तो मिलता ही नहीं था—आदमी मिलना कठिन है, क्योंकि हर आदमी गौण में उलझ गया है।

तुम फिकर न करो, शांडिल्य हुए हों कि न हुए हों, यह सूत्र हो गए, यही

बहुत है। यह किसने लिखे, क्या फर्क पड़ता है। किस कलम से उतरे, क्या फर्क पड़ता है। किस वाणी से बोले गए, क्या फर्क पड़ता है। बोलने वाला गोरा था कि काला था, जवान था कि बूढ़ा था, क्या फर्क पड़ता है। यह सूत्र इस बात की खबर देते हैं कि जिसने भी कहे, पहुंच गया था। जिसने कहे, जानकर कहे। ऋषि था। इन सूत्रों में तुम डुबकी लगाओ।

तीसरा प्रश्न: आपने कल श्रद्धा का महत्व कहा। लेकिन बुद्धि श्रद्धा करने में बाधा बनती है। वह आशंका करती है, प्रश्न उठती है!

आशंका और प्रश्नों में अश्रद्धा है ही नहीं। आशंका और प्रश्न श्रद्धा की तलाश हैं।

बुद्धि बाधा नहीं बनती। बुद्धि तुम्हें साथ दे रही है। बुद्धि कहती है, जल्दी श्रद्धा मत कर लेना नहीं तो कच्ची होगी। बुद्धि कहती है—पहले ठीक जांच-परख तो कर लो। तुम बाजार मिट्टी का घड़ा खरीदने जाते हो—दो पैसे का घड़ा—तो सब तरफ से ठोंक-पीटकर लेते हो या नहीं! तुम यह तो नहीं कहते कि यह बुद्धि जो कह रही है जरा घड़े को ठोंक-पीट लो, यह दुश्मन है घड़े की। नहीं, घड़े की दुश्मन नहीं है। यह कह रही है जब घड़ा लेने ही निकले हो, तो घड़ा जैसा घड़ा लेना; पानी भर सको, ऐसा घड़ा लेना; श्रद्धा करने निकले हो तो ऐसी श्रद्धा लेना कि परमात्मा को भर सको। ऐसा टूटा-फूटा घड़ा मत ले आना। कच्चा घड़ा मत ले आना कि पहली बरसात हो और घड़ा बह जाए। पानी आए और रुके न। छिद्र वाला घड़ा मत ले लेना।

वे तुम्हारे सारे प्रश्न घड़े को ठोंकने-पीटने के हैं। बुद्धि के दुश्मन मत बन जाओ। ऐसा मत सोच लो कि बुद्धि अनिवार्य रूप से श्रद्धा के विरोध में है। नहीं, जरा भी नहीं। सिर्फ बुद्धिमान ही श्रद्धालु हो सकता है। बुद्धिहीन श्रद्धालु नहीं होता, सिर्फ विश्वासी होता है। और विश्वास और श्रद्धा में बड़ा भेद है।

विश्वास तो इस बात का संकेत है केवल कि इस आदमी को सोच-विचार की क्षमता नहीं है। विश्वास तो अज्ञान का प्रतीक है। जो मिला, सो मान लिया। जिसने जो कह दिया, सो मान लिया। न मानने के लिए, प्रश्न उठाने के लिए तो थोड़ी बुद्धि चाहिए, प्रखर बुद्धि चाहिए।

बुद्धि सिर्फ तुमसे यह कह रही है—उठाओ प्रश्न, जिज्ञासाएं खड़ी, करो, सोचो। और जब सारे प्रश्नों के उत्तर आ जाएं, और सारी शंकाएं-कुशंकाएं गिर जाएं, तब जो श्रद्धा का अविर्भाव होगा, वही सच है।

मैं तुम्हारे पक्ष में हूं। मैं तुमसे यह कहता ही नहीं कि तुम विश्वास कर लो। विश्वास ने ही तो मारा! विश्वास ही तो डुबाया है तुम्हें! विश्वास ने ही तो तुम्हें हिंदू-मुसलमान-ईसाई बना दिया है। मैं तुम्हें धार्मिक बनाना चाहता हूं। धार्मिक आदमी का अर्थ होता है—खोजेगा; खोजी होगा; बेरहम खोजेगा। जरा भी अपने को बचाएगा नहीं, चाहे कितने ही कष्ट में पड़ना पड़े और चाहे कितनी ही पीड़ा से

गुजरना पड़े और चाहे कितनी ही बेचैनी सहनी पड़े। निश्चित ही जब प्रश्न उठते हैं तो बेचैनी होती है, क्योंकि हर प्रश्न कांटा बनकर चुभ जाता है। और जब शंकाएं उठती हैं तो निश्चित ही सब समाधान खो जाते हैं, संताप पैदा होता है, भय पैदा होता है, पैर थरथराने लगते हैं, जमीन पैर के नीचे से खिसक जाती है। कोई फिकर न करो, यही सम्यक श्रद्धा को पाने का मार्ग है। पूछो दिल खोलकर पूछो; समग्रता से पूछो, कंजूसी मत करना। अगर जरा भी एकाध प्रश्न तुमने बचा लिया, पूछा नहीं, तो वही प्रश्न तुम्हें डुबाएगा। वही तुम्हारी नाव में छेद रह जाएगा। और एक दफा सागर में उतर गए नाव लेकर—छेद वाली नाव—फिर बहुत पछताओगे। किनारे पर ही सारी तलाश कर लो,। सब छेद खोद डालो, सारे छेद भर डालो और जब तुम पाओ कि सब तरफ से बुद्धि निश्चिंत हो गयी—बुद्धि कहती है कि हां, ठीक; बुद्धि बताती है झंडा कि अब चल पड़ो—जब बुद्धि आज्ञा दे दे, तभी श्रद्धा में जाना।

बुद्धि के मार्ग से जो श्रद्धा आती है, वही परिपक्व है। उसी से बुद्धों का जन्म होता है। जो श्रद्धा बुद्धि के विपरीत आती है, वह सिर्फ तुम्हें बुद्धू बनाती है, बुद्ध कभी भी नहीं बनाएगी। तो जल्दी क्या है? इतनी घबड़ाहट क्या है? खोजो, खोज में पीड़ा है। खोज आग है जो जलाती है, मगर निखारती भी है।

हर प्रश्न जो उठता है, वह सम्यक है। उसका हल खोजो। दो ही होंगी संभावनाएं—या तो हल मिल जाएगा, प्रश्न शांत हो जाएगा। या खोजते-खोजते पता चलेगा कि यह प्रश्न प्रश्न ही नहीं है, इसमें बुनियादी भूल है, इसका उत्तर नहीं हो सकता। जैसे कोई आदमी पूछे कि हरे रंग की सुगंध क्या है? प्रश्न जैसा लगता है, उमगर है नहीं। अब रंग का सुगंध से क्या लेना-देना! हरे रंग में कोई भी सुगंध हो सकती है, और निर्गंध भी हो सकता है? हरा रंग और सुगंध का कोई संयोग नहीं है। अब कोई पूछे, हरे रंग की सुगंध क्या है? भाषा में तो प्रश्न बिलकुल ही ठीक मालूम पड़ता है, लेकिन अस्तित्व में गलत है। मगर यह भी मैं कहूंगा—किसी पर भरोसा करके मत मान लेना। क्योंकि पता नहीं वह आदमी तुम्हें धोखा देना चाहता हो। यहां बहुत धोखेबाज हैं। या हो सकता है वह आदमी तुम्हें धोखा न देना चाहता हो, खुद धोखे में पड़ गया हो। क्योंकि यहां स्वयं को धोखा देने वाले लोग भी हैं।

खोजो। जिन प्रश्नों के उत्तर मिल जाएंगे, वे प्रश्न गिर गए, उतने तुम निर्भार हुए। और जिन प्रश्नों के उत्तर अंत तक न मिलेंगे, उनमें भी खोजते-खोजते तुम्हें यह अनुभव समझ में आ जाएगा कि यह प्रश्न प्रश्न ही नहीं हैं। जो प्रश्न प्रश्न है, उसका उत्तर निश्चित मिलेगा। और जो प्रश्न प्रश्न नहीं है, उसके संबंध में दृष्टि जगेगी कि यह प्रश्न ही नहीं है, यह व्यर्थ का प्रश्न है, इसका उत्तर हो ही नहीं सकता, मैं नाहक खोज रहा हूं। दोनों हालतों में प्रश्न से तुम निर्भार होते जाओगे। एक ऐसी घड़ी आती चेतना की, जब कोई प्रश्न नहीं रह जाता। उस निष्प्रश्न दशा में श्रद्धा का जन्म है।

तुम पूछते—आपने कल श्रद्धा का महत्व कहा, लेकिन बुद्धि श्रद्धा करने में बाधा बनती है। नहीं, बुद्धि कभी बाधा नहीं बनती। तुम जल्दी श्रद्धा करना चाहते हो, तुम कच्ची श्रद्धा करना चाहते हो, इसलिए तुम बुद्धि का विरोध कर रहे हो। तुम

गलत हो, बुद्धि गलत नहीं है। तुम उधार श्रद्धा करना चाहते हो। तुम कीमत नहीं चुकाना चाहते श्रद्धा की। तुम कष्ट नहीं झेलना चाहते श्रद्धा को पाने में। और हर चीज के लिए कीमत चुकानी पड़ती है। और श्रद्धा तो इतनी बड़ी संपदा है, उसके लिए कीमत न चुकाओगे तो कैसे मिलेगी। तुम चाहते हो कोई कह दे और हम मान लें। कोई कह दे और हम मान लें। हमें कुछ खोज-बीन न करनी पड़े। हमें यह लंबे रास्ते तय न करने पड़े। हमें यह पहाड़ी चढ़ाइयां पूरी न करनी पड़ें। हमें यह सागर न लांघने पड़ें। हम यहीं के यहीं बैठे रहें। कोई कह दे, हम मान लें। बुद्धि इसमें बाधा डालती है। बुद्धि श्रद्धा में बाधा नहीं डालती, बुद्धि तुम्हारी इस बेईमानी में बाधा डालती है। यह तो तुम सस्ती और जो मुफ्त श्रद्धा चाहते हो उसमें बाधा डालती है। और अच्छा है कि बाधा डालती है। बुद्धि तुम्हें चैन न लेने देगी। ऐसी मुफ्त ओढ़ ली गयी श्रद्धाएं बुद्धि उखाड़कर फेंक देगी। बुद्धि परमात्मा की सेवा में संलग्न है। तुम्हारी सेवा में संलग्न नहीं है। नहीं तो तुम तो किसी भी घूरे पर बैठ जाना चाहते हो आंख बंद करके और सोचना चाहते हो, यही महल है, आ गया महल—क्योंकि चलने से बचना है। अगर कहो कि महल नहीं आया, तो चलना पड़ता है। अगर कहो कि यह सत्य नहीं है, तो फिर सत्य खोजना पड़ता है। तुम तो किसी भी चीज को पकड़ लेना चाहते हो। तुम तो ऐसे हो, जैसे डूबते को तिनके का सहारा—तिनका ही पकड़ लेता है। कागज की नाव में ही बैठ जाते हो—नाव नाम मिल गया, बस पर्याप्त है। बुद्धि कहती है जरा सम्हालो, जरा होश सम्हालो, यह कागज की नाव है, डुबकी खा जाओगे। अभी कम से कम किनारे पर हो—इस किनारे पर ही सही, कम से कम किनारे पर हो। उस किनारे पर पहुंचना हो तो कोई ठीक, सम्यक नाव खोजो। यह कागज की नावों से नहीं पहुंच पाओगे।

तुम्हारे पिता ने कह दिया कि मान लो और तुमने मान लिया—यह कागज की नाव है। न तुम्हारे पिता को पता है, उनके पिता ने उनसे कह दिया था। उनको भी पता नहीं था। ऐसी उधारी चल रही है। तुम जिंदगी को इस तरह जी सकते हो? तुम्हारे पिता ने कह दिया कि बेटा, मैंने भोजन कर लिया, अब तुझे क्या जरूरत है, तू मान ले पेट भर गया—तो तुम मानते नहीं, तुम कहते पिताजी, आपका भर गया होगा, मेरा तो भरना चाहिए। मैं भोजन करूंगा तब मेरा भरेगा, आपके भरने से मेरा नहीं भरता। मैं अपनी तृप्ति चाहता हूं। मैं भी हूं।

लेकिन पिता ने कहा कि ईश्वर है, मैं मानता हूं, तू भी मान ले और तुमने मान लिया। असल में तुम ईश्वर को खोजने से बचना चाहते हो। तुम चालबाजी कर रहे हो। तुम कहते हो, कौन झंझट में पड़े? तुम नास्तिक हो। तुम कहते हो कि मैंने ईश्वर को मान लिया—मगर तुम नास्तिक हो, क्योंकि तुम ईश्वर को पाने की झंझट में नहीं पड़ना चाहते—यही तो नास्तिकता है। तुम से तो वह नास्तिक बेहतर है जो कहता है—मैं ईश्वर इस तरह नहीं मानूंगा, जब तक देख नहीं लूंगा। वह कम से कम तुमसे ज्यादा झंझट ले रहा है; परेशानी ले रहा है, चिंता ले रहा है। उसकी रातों में बेचैनी होगी, कई बार जाग आएगा, डरेगा, घबराएगा; बुढ़ापा पास आएगा तो सोचेगा अब

मान लेना चाहिए, अब मौत करीब आती है, कहीं हो ही न! कहीं ऐसा न हो कि मर कर और उसके सामने खड़ा होना पड़े और वह पूछे कि कहो जनाब, मानते नहीं थे, अब बोलो? कभी पूजा नहीं की, अब जाओ नरक!

बुढ़ापा करीब आता है तो नास्तिक भी सोचने लगता है अब मान ही लो, हर्ज क्या है, बिगड़ेगा क्या? यही समझो कि कुछ समय पूजा-पत्री में खराब हुआ और क्या बिगड़ने वाला है? हुआ, तो काम आ जाएगा और नहीं हुआ तो अपना खोया क्या? वह सम्हाल रहा है। वह व्यवसाय कर रहा है। उससे तो नास्तिक कहीं ज्यादा ईमानदार है! वह कहता है ठीक है, जो होगा, मगर जब तक मैं अनुभव न कर लूं, कैसे मानूं! मैं नास्तिक का विरोधी नहीं हूं। मेरी तो दृष्टि यही है कि परम आस्तिकता नास्तिकता के मार्ग से ही आती है। मैं तो नास्तिकता को आस्तिकता का विरोध नहीं मानता, सीढ़ी मानता हूं। झूठा आस्तिक कभी आस्तिक नहीं हो पाता, सच्चा नास्तिक निश्चित ही आस्तिक हो जाता है। अब तुम कहते हो कि बुद्धि बाधा डाल रही है! बुद्धि बाधा डाल रही है, तुम जल्दी से पकड़ लेना चाहते हो। बुद्धि की बड़ी कृपा है तुम पर! उसके प्रश्नों को सुनो उसकी शंकाओं पर विचार करो। वह जो तुम्हारे भीतर बवंडर उठाती है, उन बवंडरों से गुजरो। वह जो तूफान उठाती ह उनसे गुजरना होगा। वे तुम्हारी परीक्षाएं हैं, उनसे कसौटी है। उनसे गुजरकर ही तुम निखरोगे, गुजरकर ही किसी दिन तुम सम्यक श्रद्धा को उपलब्ध होओगे। विश्वास तो झूठे हैं। विश्वास पर विश्वास मत कर लेना।

बहुत लोगों ने अपनी बुद्धि को मौका नहीं दिया है। बुद्धि का तत्व परमात्म तत्व है। जो तुम्हारे भीतर प्रश्न पूछ रहा है, वह भी परमात्मा है। बहुत लोग बुद्धि को अवसर ही नहीं देते। उसको दबाकर रखते हैं, उसको उभरने नहीं देते। इसीलिए तो अधिक लोग पंगु रह जाते हैं—पक्षाघात, अप्रौढ़ रह जाते हैं, बचकाने रह जाते हैं। उनके जीवन में परिपक्वता नहीं आती।

मैं सभी प्रश्नों के पक्ष में हूं। या तो प्रश्न सच्चे होंगे तो उत्तर मिल जाएंगे, या प्रश्न झूठे होंगे तो उनका झूठ दिखायी पड़ जाएगा। दोनों हालत में लाभ है। मगर चलो बुद्धि के साथ। श्रद्धा बुद्धि का अंतिम शिखर है—बुद्धि ही लाती है। बुद्धिमान ही श्रद्धा तक पहुंचते हैं।

एक जगह नाटक हो रहा था। उस नाटक का एक पात्र एक गधा भी था। गधे को अभिनय करता देखने के लिए सैकड़ों लोग आए। नाटक निहायत घटिया और बोर था। अंत में निर्देशक ने गधे को मंच पर बुलाया। गधे ने आकर निर्देशक को एक दुलत्ती मारी और चला गया। एक प्रसिद्ध आलोचक ने बगल में बैठे एक मित्र से कहा—यार! गधा न केवल एक अच्छा कलाकार ही था, एक सुलझा हुआ समीक्षक भी था।

बुद्धि की आलोचना को समझो। बुद्धि की समीक्षा को समझो। बुद्धि बहुत बार दुलत्तियां मारती है। और उनसे चोट भी होती है और पीड़ा भी होती है। मगर बिना पीड़ा के कौन पका है? बिना चोट के कौन निखरा है? आग से गुजरे बिना सोना

कुंदन नहीं बनता है। तुम भी नहीं बनोगे। सस्ती श्रद्धा नहीं, कठिनाइयों से गुजरकर पायी गयी श्रद्धा ही शरण है।

चौथा प्रश्न : प्रीति और कामना के बीच क्या कुछ संबंध है?

प्रीति तो शुद्ध भावदशा है। प्रीति यानी परमात्मा। वही जीसस ने कहा है : प्रीति अर्थात परमात्मा। प्रीति तो शुद्ध दशा है। जैसे प्रकाश जले—शुद्ध—किसी चीज पर न पड़े, ऐसी प्रीतिं है। फिर प्रीति जब किसी पर पड़ती है, किसी विषय पर पड़ती है, तो उसके रूप बनने शुरू हो जाते हैं। जैसे जल को हम किसी बर्तन में रख देते हैं तो बर्तन का आकार ले लेता है। ऐसी ही शुद्ध प्रीति जब किसी पात्र में गिरती है, तो पात्र का आकार ले लेती है। अगर पत्नी से हो, तो प्रेम; अगर बेटे से हो तो स्नेह; अगर गुरु से हो तो श्रद्धा। मगर यह सब हैं प्रीति के ही रूप। और सभी के भीतर एक ही ऊर्जा आंदोलित हो रही है। लेकिन जिस विषय पर पड़ती है, उस विषय की छाया भी पड़ने लगती है।

तो समझना, तुमने पूछा है प्रीति और कामना के बीच क्या कोई संबंध है? प्रेम में कामना बहुत ज्यादा है। पति-पत्नी का प्रेम है उसमें कामना बड़ी मात्रा में है। स्नेह में उतनी बड़ी मात्रा में नहीं, लेकिन थोड़ी है, अपने बेटे से, अपनी बेटी से जो प्रेम है, जो लगाव है, उसमें भी आकांक्षा छिपी है—कल बेटा बड़ा होगा, जो महत्वाकांक्षाएं मैं पूरी नहीं कर पाया, यह पूरी करेगा। बेटे के कंधे पर बंदूक रखकर चलाने की इच्छा किस बाप की नहीं है! मैं धन नहीं कमा पाया, कमाना चाहता था, बेटा कमाएगा। मैं मर जाऊंगा, लेकिन बेटा मेरे नाम को बचा रखेगा। इसीलिए तो लोग सदियों से बेटे के लिए दीवाने रहे हैं। बेटी पैदा होती है तो इतने प्रसन्न नहीं होते, क्योंकि उससे नाम नहीं चलेगा। बेटा पैदा होता है, उससे नाम चलेगा। और नाम चलाने की आकांक्षा कामना है, अहंकार की यात्रा है—मेरा नाम रहना चाहिए— जैसे तुम्हारे नाम न रहने से दुनिया का कुछ बिगड़ जाएगा। तुम रहो कि न रहो, दुनिया का कुछ बिगड़ता नहीं। तुम्हारे नाम का मूल्य क्या है! लेकिन लोग कहते हैं—नहीं, चला आया, चलता रहे! एक तरह की परोक्ष अमरता की आकांक्षा है कि पता नहीं हम तो बचे, न बचे, लेकिन कुछ तो बचेगा—हमारा अंश सही, हमारा बेटा सही, है तो हमारा खून। फिर इसके बेटे होंगे, इसी बहाने जीएंगे। मगर जीएंगे। ऐसी जीवेषणा है।

तो कामना तो है ही। पति-पत्नी जैसी प्रगाढ़ वासना जैसी नहीं है, मगर फिर भी महत्वाकांक्षा है। उससे भी कम रह जाती है गुरु के साथ जो श्रद्धा का संबंध है, उसमें। और भी कम हो गयी। पर फिर भी है, क्योंकि गुरु से भी कुछ पाने की आकांक्षा है—मोक्ष, ध्यान, समाधि—कुछ पाने की आकांक्षा है, मगर शुद्ध होती जा रही है, कम होती जा रही है। पति-पत्नी के प्रेम में सर्वाधिक, पुत्र-पुत्रियों के प्रेम में उससे कम, श्रद्धा में बहुत न्यून, एक प्रतिशत रही जैसे। पति-पत्नी के प्रेम में निन्यानबे प्रतिशत थी। फिर जब एक प्रतिशत भी शून्य हो जाता है, तो श्रद्धा का भी

अतिक्रमण हो गया—तब भक्ति। भक्ति में कामना जरा भी नहीं रहती। अगर भक्ति में कामना रहे, तो भक्ति नहीं है। अगर तुमने परमात्मा से कुछ मांगा, तो चूक गए—कुछ भी मांगा तो चूक गए। तुमने कहा कि मेरी पत्नी बीमार है ठीक हो जाए, कि मेरे बेटे को नौकरी नहीं लगती नौकरी लग जाए, कि तुम चूक गए—यह प्रार्थना न रही, यह वासना हो गयी। प्रार्थना तो तभी है जब कोई भी मांग न हो, कोई अपेक्षा न हो। प्रार्थना शुद्ध धन्यवाद है, मांग का सवाल ही नहीं है—जो दिया वह इतना ज्यादा है कि हम अनुगृहीत हैं। जो दिया, वह मेरी पात्रता से ज्यादा है। ऐसी कृतज्ञता का नाम भक्ति है। भक्ति सौ प्रतिशत प्रीति है। जरा भी धुआं नहीं रहा। आग तुम जलाते हो, लकड़ी तुम जलाते हो तो तुमने देखा, अलग-अलग लकड़ियों से अलग-अलग धुआं उठता है। मगर तुमने कारण देखा? कारण होता है जो लकड़ी जितनी गीली होती है, उतना धुआं उठता है। अगर लकड़ी बिलकुल गीली न हो, आर्द्रता हो ही न लकड़ी में, धुआं बिलकुल नहीं उठेगा। धुआं लकड़ी से नहीं उठता, लकड़ी में छिपे पानी से उठता है।

तो गीली लकड़ी जलाओ तो बहुत धुआं उठता है—पति-पत्नी के बीच गीली लकड़ी जलती है। पिता-बेटे के बीच लकड़ी थोड़ी सूखी है, मगर अभी भी धुआं उठता है। गुरु-शिष्य के बीच करीब-करीब लकड़ी सूखी है, जिनके पास देखने को आंखें हैं उनको ही धुआं दिखायी पड़ेगा, नहीं तो दिखायी भी नहीं पड़ेगा, अगर आंख थोड़ी कमजोर है और चश्मा लगा है तो दिखायी नहीं पड़ेगा—एक प्रतिशत बचा है, निन्यानबे प्रतिशत सूखापन है। और जब परमात्मा और तुम्हारे बीच प्रीति जलती है तो धुआं उठता ही नहीं—निर्धूम अग्नि होती है।

इस परम स्थिति के दो रूप हो सकते हैं। एक का नाम ध्यान, एक का नाम भक्ति। अगर यह परम प्रीति की दशा, निर्धूम दशा परमात्मा की तरफ उन्मुख हो, समग्र के प्रति उन्मुख हो, तो भक्ति इसका नाम है। और अगर यह किसीके प्रति उन्मुख न हो, अंतर्मुखी हो, अपने में ही गिर रही हो—यह प्रीति का झरना स्वयं में ही गिरा रहा हो, कहीं न जा रहा हो; इसकी कोई दिशा न हो, तो ध्यान। इन दो ही मार्गों से आदमी ने पाया है। बुद्ध ने ध्यान से, मीरा ने भक्ति से। दोनों की शुद्ध दशाएं हैं। बुद्ध की प्रीति अपने ही भीतर उमगती है—लबालब—झील बन गयी हैं; मीरा की भक्ति नाचती है और सागर की तरफ चलती है—सरिता बन गयी है। पर दोनों ही हालत में प्रीति शुद्ध हो गयी।

क्या तुम पूर्व हो
मुझे
सूरज दोगे
क्या तुम अपूर्व हो
मुझे
शरण में लोगे
क्या तुम उत्तर हो

मुझे तुम में से
समाधान मिलेगा
क्या दक्षिण-पवन हो तुम
तुम में से मुझे
मलय-गान मिलेगा?

भक्त परमात्मा को सब तरफ देखता—पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण; ऊपर, नीचे, सब दिशाओं में, सब आयामों में। भक्त भगवान से घिरा होता है। भक्त स्वयं तो मिट गया होता है, भगवान ही बचता है। यह प्रीति की एक दशा।

ध्यानी के लिए भगवान होता ही नहीं। प्रीति की समग्रता इतनी गहरी हो गयी होती है कि कोई पर नहीं बचता, परमात्मा कैसे बचेगा? कोई पर नहीं बचता, स्व ही होता है। उस स्व की परम स्थिति में भी मुक्ति है। दोनों हालत में एक घटना घट जाती है। भक्त शून्य हो जाता है—अपने तरफ—और परमात्मा पूर्ण हो जाता है; और ध्यानी अपने में पूर्ण हो जाता है, परमात्मा शून्य हो जाता है। पूर्ण और शून्य का मिलन हो जाता है—दो ढंग से। और जहां पूर्ण और शून्य का मिलन है, वहीं मुक्ति है, वहीं मोक्ष है। सब तुम पर निर्भर है कि तुम्हारा प्रेम कहां उलझा है, किससे लगा है।

मैंने सुना, एक सज्जन ने एक बार कव्वाली आयोजित करवायी। जो कव्वाल था, एक सूफी मस्त फकीर था। स्त्रियों के बैठने के लिए पर्दे के पीछे अलग प्रबंध था। उक्त महाशय की पत्नी और अन्य महिलाएं पर्दे के पीछे बैठी कव्वाली सुन रही थीं। कव्वाल तो फकीर था, मस्त फकीर था—वह अपनी मस्ती में आकर बार-बार एक ही मिसरे की रट लगाने लगा—पर्दे के पीछे कौन है। अरे, पर्दे के पीछे कौन है? इस नीले पर्दे के पीछे कौन है? अब वह तो आकाश की बात कर रहा है—नीला पर्दा—इस पर्दे के पीछे कौन है? और जो उसको परमात्मा की याद आ गयी तो धुन बंध गयी, वह कहने लगा—अरे, इस पर्दे के पीछे कौन है? नीले पर्दे के पीछे कौन है? संयोगवश वह पर्दा भी नीला था, जिसके पीछे स्त्रियां बैठी थीं।

जब कव्वाल ने दस-बारह बार यही मिसरा दोहराया, तो वह महाशय बिगड़ पड़े जिन्होंने कव्वाली आयोजित करवायी थी, गरजकर बोले—अरे कमबख्त, तेरा ध्यान बस पर्दे के पीछे लगा हुआ है! तेरी मां-बहनें हैं पर्दे के पीछे, और कौन है!

अपनी-अपनी दृष्टि है।

सूफी फकीर उस विराट पर्दे की बात कर रहा है जो आकाश है, और उसके पीछे कौन है उसकी बात कर रहा है। सूफी फकीर मस्ती की बात कर रहा है, भक्ति की बात कर रहा है। मगर इस आदमी को बेचैनी हो रही है। इसको न तो परमात्मा का कोई बोध है, न आकाश की कोई स्मृति है; न इस सूफी की मस्ती का कुछ अनुभव है। और जब यह ज्यादा मस्त होने लगा और जब ज्यादा दोहराने लगा तो उसकी बेचैनी बढ़ने लगी, उसने कहा—यह तो हद हो गयी, यह तो बदतमीज मालूम होता है। यह भी कोई बात उठाने की है कि पर्दे के पीछे कौन है! तेरी मां-बहनें हैं! तुम्हारा प्रीति का विषय क्या है, बस उतना ही तुम समझ पाओगे। तुम्हारी जो प्रीति की धारा

है, जिस तरफ जा रही है, उतना ही तुम समझ पाओगे।

इसलिए अक्सर ऐसा हो गया है कि भक्तों के वचनों को बहुत गलत समझा गया है। फ्रायड और उसके अनुयायी तो समझते हैं कि यह भक्तों की वाणी सब कामवासना का ही विक्षिप्त रूप है—पर्दे के पीछे कौन है? अरे! नीले पर्दे के पीछे कौन है? फ्रायड समझता है कि यह सब स्त्रियों की बातें हो रही हैं। तुम्हारी मां-बहनें हैं, और कौन है!

तुम उतना ही समझ सकते हो जितनी तुम्हारी प्रीति है, जहां तुम्हारी प्रीति है। प्रीति को मुक्त करो। अगर पति-पत्नी वाली प्रीति है, तो थोड़ा वात्सल्य को जगाओ, थोड़ा स्नेह को जगाओ। अगर स्नेह जग गया है तो थोड़ी श्रद्धा जगाओ। अगर श्रद्धा जग गयी है, तो भक्ति में छलांग लगाओ।

बंद शीशों के परे देख दरीचों के उधर
सब्ज पेड़ों पे घनी शाखों पे फूलों पे वहां
कैसे चुपचाप बरसता है मुसल्सल पानी
कितनी आवाजें हैं, ये लोग हैं, बातें हैं मगर
जहन के पीछे किसी और ही सतह पे कहीं
जैसे चुपचाप बरसता है तसव्वुर तेरा

सब तरफ वही बरस रहा है—जैसे चुपचाप बरसता है तसव्वुर तेरा—देखने की आंख चाहिए। प्रीति को कामना से मुक्त करो—कामना के कारण ही देखने की आंख नहीं मिलती; कामना अंधा बनाती है; कामना अंधी है।

आज इतना ही।

तीसरा प्रवचन

भक्ति परमात्मा की किरण है

③

द्वेषप्रतिपक्षभावाद्रसशब्दाच्च रागः। ।।६।।

नक्रियाकृत्यनपेक्षणाज्ज्ञानवत् ।।७।।

अत एव फलानन्त्यम् ।।८।।

तद्वतःप्रपत्तिशब्दाच्च नज्ञानमितरप्रपत्तिवत् ।।९।।

सा मुख्येतरापेक्षितत्वात् ।।१०।।

मनुष्य है एक द्वंद्व। प्रकाश और अंधकार का; प्रेम और घृणा का। यह द्वंद्व अनेक सतहों पर प्रकट होता है। यह द्वंद्व मनुष्य के कण-कण में छिपा है। राम और रावण प्रतिपल संघर्ष में रत हैं। प्रत्येक व्यक्ति कुरुक्षेत्र में ही खड़ा है। महाभारत कभी हुआ और समाप्त हो गया, ऐसा नहीं, जारी है। हर नए बच्चे के साथ फिर पैदा होता है।

इसलिए कुरुक्षेत्र को गीता में धर्मक्षेत्र कहा है, क्योंकि वहां निर्णय होना है धर्म और अधर्म का। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर निर्णय होना है धर्म और अधर्म का। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर निर्णायक घटना घटने को है। इसीलिए तो इतनी चिंता है। इसीलिए तो आदमी बेचैन है। इसलिए आदमी को कहीं राहत नहीं। कुछ भी करे, राहत नहीं। क्योंकि भीतर कुछ उबल रहा है। भीतर सेनाएं बंटी खड़ी हैं। क्या होगा परिणाम, क्या होगी निष्पत्ति, इससे चिंता होती है।

और चिंता के बड़े कारण हैं। क्योंकि घृणा के पक्ष में बड़ी फौजें हैं। घृणा के पक्ष में बड़ी शक्तियां हैं। महाभारत में भी कृष्ण की सारी फौजें कौरवों के साथ थीं। केवल कृष्ण, निहत्थे कृष्ण पांडवों के साथ थे। वह बात बड़ी सूचक है। ऐसी ही हालत है। संसार की सारी शक्तियां अंधेरे के पक्ष में हैं। संसार की शक्तियां यानी परमात्मा की फौजें। परमात्मा भर तुम्हारे पक्ष में है, निहत्था। भरोसा नहीं आता कि जीत अपनी हो सकेगी। विश्वास नहीं बैठता कि निहत्थे परमात्मा के साथ विजय हो सकेगी।

कृष्ण ही अर्जुन के सारथी थे, ऐसा नहीं, तुम्हारे रथ पर भी जो सारथी बनकर बैठा है, वह कृष्ण ही हैं। प्रत्येक के भीतर परमात्मा ही रथ को सम्हाल रहा है। लेकिन सामने विरोध में दिखायी पड़ती हैं बड़ी सेनाएं, बड़ा विराट आयोजन। अर्जुन घबड़ा गया था। हाथ-पैर थरथरा गए थे। गांडीव छूट गया था। पसीना-पसीना हो गया था। अगर तुम भी जीवन के युद्ध में पसीना-पसीना हो जाते हो, तो आश्चर्य नहीं। हार निश्चित मालूम पड़ती है, जीत असंभव आशा।

इस द्वंद्व में ठीक-ठीक पहचान लेना जरूरी है—कौन तुम्हारा मित्र है और कौन तुम्हारा शत्रु है। यही महाभारत की प्रथम घड़ी में अर्जुन ने कृष्ण से कहा था—मेरे रथ को युद्ध के बीच में ले चलो; ताकि मैं देख लूं कौन मेरे साथ लड़ने आया है कौन मेरे विपरीत लड़ने को खड़ा है? किससे मुझे लड़ना है? साफ-साफ समझ लूं कि कौन साथी-संगी है, कौन शत्रु है?

और युद्ध के मैदान पर जितनी आसान बात थी यह जान लेना, जीवन के मैदान पर इतनी आसान नहीं। वहां शत्रु-मित्र सम्मिलित खड़े हैं। वहां जहां प्रेम है, वहीं घृणा भी दबी हुई पड़ी है। जहां करुणा है, उसी के साथ क्रोध भी खड़ा है। सब

मिश्रित है। कुरुक्षेत्र के उस युद्ध में तो चीजें साफ थीं, सेनाएं बंट गयी थीं, बीच में रेखा थी—एक तरफ अपने लोग थे, दूसरी तरफ विरोधी लोग थे, बात साफ थी किसको मारना है, किसको बचाना है। लेकिन जीवन के युद्ध में बात इतनी साफ नहीं है, ज्यादा उलझन की है। तुम जिसको प्रेम करते हो, उसी को घृणा भी करते हो। जिसको चाहते हो और सोचते हो कि जरूरत पड़े तो जान दे दूं, किसी दिन उसी की जान लेने का मन भी होने लगता है। जिस पर करुणा बरसाते हो, कभी उसी पर क्रोध भी उबल पड़ता है। सब उलझा है। धागे एक-दूसरे में गुंथ गए हैं। जन्मों-जन्मों की गुत्थियां हैं। इस बात को ठीक से समझकर आज के सूत्र समझे जा सकेंगे।

तुम्हारे भीतर अंधकार को अलग छांटना होगा, प्रकाश को अलग। वह जो उपनिषद के ऋषि ने परमात्मा से प्रार्थना की है: हे प्रभु, मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल—तमसो मा ज्योतिर्गमय—उसीसे शुरुआत होती है साधना की, कि मैं ठीक-ठीक जान लूं, कौन अपना, कौन अपना नहीं। किसकी जड़ों में पानी देना है और किसकी जड़ें उखाड़कर फेंक देनी हैं।

बहुत बार भूल हो जाती है। तुम शत्रु को पोषण देते रहते हो। मित्र को जहर दे देते हो। कई बार मित्र शत्रु जैसा मालूम पड़ता है—क्योंकि कई बार मित्र सच और कठोर बातें कह देता है; और कई बार शत्रु चालबाजी कर जाता है, मीठी खुशामद करता है और मित्र जैसा लगता है।

ठीक स्पष्ट विभाजन हो जाए, तो यात्रा का बहुत काम सुगम हो जाता है। इस तरह विभाजन करो—

प्रेम परमात्मा है, यही भक्ति का सार है। तो अगर परमात्मा को खोजना है, तो जो-जो तुम्हारे भीतर प्रेमपूर्ण है, उससे मैत्री करो। और जो-जो तुम्हारे भीतर द्वेषपूर्ण है, उससे अमैत्री करो।

खयाल रखना, मैं कह रहा हूं—अ-मैत्री। जानकर, सोचकर। अ-मैत्री का अर्थ शत्रुता मत समझ लेना। इसलिए अ-मैत्री कह रहा हूं, नहीं तो शत्रुता ही कहता। क्योंकि जिससे तुमने शत्रुता बनायी, उससे भी एक तरह की मैत्री बन जाती है, संबंध बन जाता है। शत्रुता संबंध है। उससे नाता-रिश्ता हो जाता है। उसके तुम्हारे बीच धागे जुड़ जाते हैं। इसलिए जानकर अ-मैत्री शब्द का उपयोग कर रहा हूं। अमैत्री का अर्थ इतना ही है—उसकी उपेक्षा करो। उस पर ध्यान मत दो। पड़ा रहने दो एक कोने में रहे तो, उसमें रस न लो।

रस लो प्रेम में। उंडेलो अपनी सारी जीवन-ऊर्जा प्रेम के पौधे पर। प्रेम का बिरवा ही तुम्हारी तुलसी हो। उसी पर चढ़ाओ दीप। उसी पर समर्पित करो अपना जीवन। उसी की जड़ों को पुष्ट करो। इतना सा भी ध्यान मत दो घृणा पर, द्वेष पर, क्रोध पर—देखो भी मत, क्योंकि देखने में भी ऊर्जा प्रवाहित होती है।

तुमने खयाल किया, ध्यान ऊर्जा है। तुम जिस पर ध्यान देते हो, उसी को ऊर्जा मिलने लगती है। इसलिए तो छोटे बच्चे तुम्हारे ध्यान के लिए इतनी आकांक्षा करते हैं। तुमने कह रखा है बच्चों को कि घर में मेहमान आ रहे हैं, शोरगुल मत

करना, शांत बैठना, एक कोने में बैठकर खेलते रहना। मेहमान नहीं आए थे तो बच्चे एक कोने में खेल ही रहे थे, तुमने क्या कह दिया कि मेहमान आ गए हैं, अब बच्चे कोने में नहीं खेल सकते! बीच-बीच में खड़े हो जाते हैं आकर, बताने कि मां, यह देखो कि पिता, यह देखो। क्या कारण होगा? शोरगुल मचाने लगते हैं। ध्यान चाहते हैं। तुम्हारा सारा ध्यान मेहमान पर जा रहा है। स्वभावतः बच्चों को इस में ईर्ष्या होती है। ध्यान भोजन है।

अब तो मनोवैज्ञानिक इस सत्य को स्वीकार करते हैं कि मां अगर बच्चे को दूध दे दे और ध्यान न दे—सिर्फ दूध दे दे उपेक्षा से—सुला दे, उठा दे, निपटा दे काम, जैसे नर्स निपटा देती है, तो बच्चे की आत्मा पंगु रह जाती है, सिकुड़ जाती है। ध्यान चाहिए। इसलिए जब तुम्हें कोई ध्यान देता है, तुम पर ध्यान देता है, तुम प्रफुल्लित होते हो, आनंदित होते हो। इसीलिए तो तुम लोगों के मंतव्यों का इतना विचार करते हो कि लोग मेरे संबंध में क्या सोचते हैं। और क्या कारण होगा? क्या पड़ी है तुम्हें कि लोग क्या सोचते हैं? सोचते रहें! लेकिन डर है कि कहीं ऐसा न हो कि ध्यान देना बंद कर दें। मैं राह से निकलूं और कोई जयरामजी भी न करे! तो मर जाऊंगा। तो भूखा रह जाऊंगा। कहीं किसी तल पर कोई कमी रह जाएगी। राह से निकलूं तो कम से कम लोग जयरामजी करें; लोग पहचानें कि मैं कौन हूं, कितनी पीड़ा होती है तुम्हें जब तुम्हें कोई भी नहीं पहचानता कि तुम कौन हो! तब कितना तुम बता देना चाहते हो, बैंडबाजा बजाकर कि मुझे पहचानो कि मैं कौन हूं—कि मैं भी यहां हूं।

उपेक्षा बड़ा कष्ट देती है। तुम चकित होओगे—यद्यपि चकित होना नहीं चाहिए—अगर जीवन का निरीक्षण करोगे तो तुम उस आदमी को माफ कर सकते हो जिसने तुम्हें घृणा की, लेकिन उस आदमी को माफ नहीं कर सकते जिसने तुम्हारी उपेक्षा की। दुश्मन माफ किया जा सकता है, क्योंकि दुश्मन ने चाहे घृणा भला की हो लेकिन ध्यान तो दिया ही, तुम्हारा चिंतन तो किया ही, तुम्हारे बाबत विचार की तरंगें तो उठीं ही।। लेकिन उपेक्षा! तुम गुजरे और किसीने इस तरह देखा जैसे कोई गुजरा ही नहीं, तुम कभी माफ न कर पाओगे।

ध्यान भोजन है। ध्यान से चीजें परिपुष्ट होती हैं। इसलिए मैं कह रहा हूं—शत्रुता नहीं, अ-मैत्री। सिर्फ मित्रता तोड़ लो, बस इतना काफी है। मित्रता तोड़कर शत्रुता न बना लेना, नहीं तो यह फिर नए ढंग से मित्रता हो गयी—शीर्षासन करती हुई मित्रता—मगर यह मित्रता ही है।

और अक्सर ऐसा हो जाता है कि तुम शत्रु के संबंध में ज्यादा सोचते हो—मित्र के संबंध में कौन सोचता है! मित्र तो मित्र है ही, सोचना क्या है? शत्रु के संबंध में सोचते हो।

प्रेम से मैत्री, द्वेष से अ-मैत्री। सारी ऊर्जा को प्रेम के बिरवे पर डाल दो। बढ़ने दो उसे, खिलने दो उसे, फूल आने दो। वही बिरवा भक्ति का प्रारंभ है। उसमें ही तुमने पूरी जीवन ऊर्जा डाली, तो एक दिन भक्ति बनेगी। और जहां भक्ति है, वहां भगवान है।

सत्य की खोज में निकले व्यक्ति को अक्सर द्वेष पकड़ लेता है। तुमने अक्सर लोग देखे होंगे—तुम देख सकते हो मंदिरों में, गुफाओं में, आश्रमों में बैठे हुए—उनके जीवन का मूल आधार परमात्मा का प्रेम नहीं है, संसार की घृणा है। परमात्मा को पाने के लिए ऐसी आतुरता नहीं है, जितनी आतुरता संसार छोड़ने की है। गलती हो गयी। शुरू से ही गलत कदम उठ गया, गलत दिशा में उठ गया। प्रभु को पाने से संसार छूट जाता है। संसार छोड़ना भी नहीं पड़ता, बीच बाजार में खड़े-खड़े छूट जाता है। आदमी कमलवत हो जाता है। जल में होता है और जल छूता नहीं। वह और बात।

लेकिन एक आदमी इसी चिंता में पड़ा रहता है कि धन से कैसे छुटकारा हो, पद से कैसे छुटकारा हो, पत्नी-बच्चों से कैसे छुटकारा हो, माया-मोह से कैसे हटूं, इस आदमी ने अनजाने द्वेष का ही पोषण किया। यह संसार का द्वेष है। हालांकि यह कहेगा कि मैं परमात्मा का खोजी हूं, लेकिन इसकी जीवन गति की आधार शिलाद्वेष पर रखी है। यह संसार का द्वेषी है। संसार के द्वेष को ही यह परमात्मा का प्रेम कह रहा है; यह बात गलत है, यह बात सच नहीं है।

ऐसा समझो कि तुम एक कमरे में बैठे हो, उस कमरे से तुम्हें द्वेष है; तुम उस कमरे से मुक्त होना चाहते हो, तुम ऊब गए हो, तुम परेशान हो गए हो; तुमने बड़ा विषाद झेला उस कमरे में, बड़े उदास क्षण देखे, बड़े नर्क अनुभव किए; उस कमरे ने तुम्हें सिवाय दुःस्वप्नों के कुछ नहीं दिया है, वहां की एक-एक चीज रत्ती-रत्ती तुम्हारे अतीत की दुर्घटनाओं की स्मृति से भरी है; जिस तरफ आंख उठाते हो, वहीं पीड़ा छूती है; जो चीज छूते हो, उसीके साथ कुछ पुरानी ग्रंथियां बंधी हैं; वहां का सब विषाक्त हो गया है; तुम उस कमरे के प्रति घृणा से भरे हो, तुम कहते हो मुझे बाहर जाना है; लेकिन तुम्हें बाहर जो धूप है उससे कोई प्रेम नहीं; और बाहर जो फूल खिले हैं सतरंगे उनमें तुम्हें कुछ रस नहीं है; और बाहर वृक्षों पर जो पक्षियों ने गीत गाए, उनसे तुम्हें कुछ लेना-देना नहीं है; न तुम्हारे जीवन में धूप के काव्य का कोई अर्थ है, और न फूलों का, और न पक्षियों का, तुम इस घर से मुक्त होना चाहते हो, क्या इसको तुम धूप का प्रेम कहोगे? खुले आकाश का प्रेम कहोगे? हरे वृक्षों का लगाव कहोगे? इसको सौंदर्य की कोई अनुभूति कहोगे? यह आदमी अगर किसी क्षण, किसी तरह—जो कि बहुत असंभव है—इस कमरे से छूट जाए—असंभव इसलिए कहता हूं कि जिसका इतना घृणा का संबंध जुड़ा है इस कमरे से, वह छूट न पाएगा। घृणा जंजीर है बुरी तरह बांधती है, छूट न पाएगा।जो कमरे से इतना डरा है, वह छूट कैसे पाएगा! भयभीत कभी नहीं छूट पाता।

और समझ लो, संयोगवशात, छूट जाए, निकल भागे, तो भी यह कमरा इसका पीछा करेगा। यह जहां बैठेगा, आंख बंद करेगा, कमरे की ही याद आएगी। क्योंकि उस कमरे के साथ इतना न्यस्त-भाव जुड़ गया है। यह तो कमरे से निकल जा सकता है लेकिन कमरा इससे नहीं निकलेगा। जहां बैठेगा, किसी और कमरे में बैठेगा, उसकी दीवाल भी इसी कमरे की दिवाल की याद दिलाएगी। न तो इसे धूप

दिखायी पड़ेगी, न धूप में उड़ते हुए बादल दिखायी पड़ेंगे। यह उनके लिए आया ही नहीं है। इसकी आने की प्रेरणा ही गलत है।

फिर एक दूसरा आदमी है, जिसको इस कमरे से न कुछ विरोध है, न कोई लगाव है, उपेक्षा है। लगाव हो, तब तो छोड़ ही नहीं सकता इस कमरे को। द्वेष हो, तब भी नहीं छोड़ सकता, क्योंकि द्वेष भी लगाव ही है—विकृत हो गया लगाव, फट गया लगाव। जैसे दूध फट जाता है। है तो दूध ही, लेकिन स्वाद खट्टा हो गया, पीने योग्य न रहा। है तो दूध ही, फट गया। लगाव फट जाता है तो उसे हम द्वेष कहते हैं।

जिस आदमी का न तो लगाव है इस कमरे से, न द्वेष है इस कमरे से, अ-लगाव है, अ-मैत्री है—रहे तो कोई हर्जा नहीं, इसी कमरे में सोया रहे तो कोई हर्जा नहीं, इस कमरे का विचार नंहीं उठता, चला जाए तो कोई खास...इस कमरे से चले जाने में ही कोई मोक्ष नहीं मिल जाने वाला है।

यह आदमी धूप के प्रेम से भरा है। यह फूलों की गंध इसे पुकार रही है, इसे खुला आकाश निमंत्रण दे रहा है। इसकी प्रीति है खुले से, स्वतंत्र से, मुक्त से, जहां बाधा नहीं दीवालों की, जहां असीम है। यह विराट में उत्सुक है।

यह दोनों आदमी इस कमरे से बाहर निकलेंगे, और अगर तुम इन दोनों को निकलते देखो तो तुम्हें कुछ भेद दिखायी न पड़ेगा। लेकिन बड़ा भेद है, महा भेद है। पहला, कमरे से निकल रहा है, लेकिन कमरा उसके भीतर रहेगा। दूसरा, कमरे में कभी था ही नहीं—अ-मैत्री थी। शत्रुता भी नहीं थी, मित्रता भी नहीं थी। मित्रता-शत्रुता दोनों का अभाव था। विरक्ति थी, वैराग्य था। यह आदमी निकल रहा है। यह दोनों आकर धूप में खड़े हो जाएंगे, पहला आदमी जो कमरे से द्वेष के कारण निकल आया है, अब भी कमरे की ही याद से भरा होगा, उसकी आंखों पर एक पर्दा पड़ा होगा, धूप उसे दिखायी न पड़ेगी। उसकी आंखों में अभी भी अंधेरा होगा। कमरा उसे घेरे है। कमरा एक मनोवैज्ञानिक स्थिति है। यह जो आदमी कमरे के प्रति कोई लगाव नहीं रखता, विरोध भी नहीं रखता, इसकी आंखें खुली हैं, कोई पर्दा नहीं; इसे सूरज मोह लेगा, यह नाचेगा धूप में। यह आनंदमग्न होगा। इसके जीवन में रसधार बहेगी।

तो पहली बात साफ-साफ समझ लेना जरूरी है कि जो भी तुम्हारे भीतर प्रेम का तत्व है, वही परमात्मा की पहली किरण है। तुम्हारे भीतर जो भी द्वेष का तत्व है, वही बाधा है। द्वेष से अ-मैत्री साधो, प्रेम से मैत्री साधो।

द्वेष का अर्थ होता है—घृणा, क्रोध नकारात्मक वृत्तियां। विरोध, निषेध, नकार, विध्वंस, विनाश। द्वेष मिटाना चाहता है। और मिटाने वाली किसी भी प्रवृत्ति से बहुत ज्यादा आंदोलित हो जाना खतरनाक है। क्योंकि जब तुम मिटाते हो, तो तुम भी मिटते हो। बिना मिटे मिटा नहीं सकते हो। जो हत्या करता है, वह आत्महत्या भी कर रहा है। जो दूसरे को दुख पहुंचाता है, वह अपने दुख के बीज बो रहा है। जो दूसरों को नरक में ढकेल रहा है, वह स्वयं भी नरक की सीढ़ियां उतर रहा है। उसे पता हो, पता न हो यह और बात। लेकिन दुनिया में विध्वंस करके कोई सृजन को उपलब्ध नहीं होता। मिटाने वाला खुद मिट जाता है। जो दूसरों के लिए गड्ढे खोदता

है, एक दिन अचानक पाता है उन्हीं गड्ढों में खुद गिर गया है।

सृजन सृजनात्मक है। दोहरे अर्थों में। जब तुम एक गीत रचते हो, तो एक तरफ तो गीत रचा जाता है, दूसरी तरफ गीतकार रचा जाता है। गीत के रचने में ही तो गीतकार का जन्म है। जब एक मां से एक बच्चा पैदा होता है, तो तुम यह सोचते हो—बच्चा पैदा हुआ, बस इतना ही सोचते हो? मां पैदा हुई, ऐसा नहीं सोचते? तो तुम भूल गए। तुमने बात पूरी नहीं देखी। यह बच्चा पैदा होना एक पहलू है, दूसरी तरफ यह स्त्री कल तक मां नहीं थी, आज से मां है, यह दूसरा पहलू है। और ध्यान रखना, एक स्त्री में और एक मां में बड़ा फर्क है। स्त्री स्त्री है, सिर्फ संभावना है बीज है। बीज और वृक्ष में फर्क करोगे या नहीं करोगे? ऐसे ही स्त्री और मां का फर्क है।

मां है—स्त्री में फूल आ गए, फल आ गए। स्त्री फलवती हुई। जब तक स्त्री मां नहीं है, तब तक कुछ खाली-खाली होता है। तब तक कुछ भराव हुआ नहीं। तब तक पात्र रिक्त है। उसका गर्भ रिक्त है, तो पात्र रिक्त है। जब स्त्री गर्भवती होती है तो उसमें एक अनूठा सौंदर्य और प्रसाद झलकने लगता है। गर्भवती स्त्री को चलते देखा? गर्भवती स्त्री के चेहरे पर गरिमा देखी? गर्भवती स्त्री के चेहरे से झलकती आभा देखी? वही आभा, जो वृक्ष फलवान होकर प्रकट करता है। ऐसे ही कोई जब गीत लिखता है, एक तरफ गीत रचा जाता है, दूसरी तरफ गीतकार रचा जाता है। जब कोई मूर्ति रचता है, इधर मूर्ति बनती है, उधर मूर्तिकार बनता है। जब कोई वीणा पर संगीत को जन्म देता है, इधर संगीत का जन्म होता है, उधर वीणावादक का जन्म होता है।

सृजन दोहरा है, जैसा विध्वंस दोहरा है। प्रेम सृजनात्मक ऊर्जा है। द्वेष विध्वंसक ऊर्जा है। द्वेष की प्रतीक प्रतिमाएं, जैसे अडोल्फ हिटलर। प्रेम की प्रतीक प्रतिमाएं जैसे कृष्ण, जैसे बुद्ध, जिनके जीवन में करुणा और प्रेम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं; वे अपने परम फल को उपलब्ध हो गए हैं। उन्होंने परम संपदा पा ली।

हिटलर का जीवन रिक्त है। हिटलर एक खंडहर है। मिटाने में कोई और हो भी नहीं सकता, खंडहर ही होगा। कुछ और हो भी नहीं सकता।

तो खयाल रखो, द्वेष सूत्र है तुम्हारे भीतर नकारात्मकता का। नरक का द्वार है द्वेष। फिर तुम किससे द्वेष करते हो, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। तुम संसार से द्वेष करो तो भी वह द्वेष है। और जो संसार से द्वेष करता है, वह परमात्मा को कभी पा न सकेगा, क्योंकि परमात्मा परम विधायकता का नाम है। नकार से तुम कैसे विधायक पर पहुंचोगे? नहीं कहकर तुम कैसे हां को पाओगे? यह असंभव है। नहीं की ईंटों को रखते-रखते तुम हां का मंदिर न बना पाओगे। न की ईंटों को रख-रखकर तुम नरक ही निर्मित करोगे।

इसलिए द्वेष से आंदोलित मत होना। आंदोलित प्रेम से होना। और फिर मैं तुमसे कह दूं—संसार के प्रेम में पड़ा हुआ आदमी भी बेहतर है उस आदमी से जो संसार के द्वेष में पड़ गया है। माना कि संसार का प्रेम क्षुद्र का प्रेम है, क्षणभंगुर का प्रेम है, बहुत दुख लगाएगा, लेकिन कम से कम प्रेम तो है। क्षणभंगुर ही सही, लेकिन विधायक तो है। और जो आदमी संसार के द्वेष में पड़ गया है, यह आदमी

और भी उपद्रव में पड़ गया है। द्वेष इसे घेर लेगा। धीरे-धीरे द्वेष का अंधकार इसे पकड़ लेगा। यह कितनी ही प्रार्थनाएं करे और पूजाएं करे, इसकी सब प्रार्थनाएं व्यर्थ हैं, और इसकी सब पूजाएं व्यर्थ है। क्योंकी द्वेष से प्रार्थना उठती ही नहीं। द्वेष में प्रार्थना का अंकुर आता ही नहीं।

भक्त कहता है—संसार से द्वेष नहीं, परमात्मा से राग। यह भक्ति की आधारशिला है। तथाकथित ज्ञानी और तपस्वी कहता है—संसार से द्वेष। फर्क दोनों की भाषा का है। ज्ञानी और तपस्वी कहता है—विराग, संसार से विराग; भक्त कहता है—प्रभु से राग। भक्त विधायक है।

भक्ति ने मनुष्य के मनोविज्ञान को बहुत गहराई से पकड़ा है। द्वेष करने वाले बहुत मिल जाएंगे, क्योंकि द्वेष सस्ता है। भगोड़े बहुत मिल जाएंगे, संसार को घृणा करने वाले बहुत मिल जाएंगे, क्योंकि घृणा ही करना लोग जानते हैं। लेकिन संसार की घृणा से परमात्मा के प्रेम की सुगंध नहीं उठी कभी, नहीं उठेगी कभी। संसार के प्रति तुम्हारा जो प्रेम है, उस प्रेम को परमात्मा की तरफ मोड़ो जरूर, मगर संसार के प्रति घृणा का संबंध मत बना लेना, नहीं तो चूक गए—चले भी और चले भी नहीं।

एक पैर उठाया और दूसरे पैर में जंजीर बांध ली।

दूसरा शब्द राग समझ लेना चाहिए, फिर सूत्र में उतरना आसान हो जाएगा। राग का अर्थ होता है—प्रीति। शुद्ध प्रीति। प्रेम। राग शब्द बड़ा अनूठा है। चाहत, अभीप्सा। राग का अर्थ होता है—जिसके बिना रहने में कोई अर्थ नहीं। जिसके साथ मरना भी हो जाए, तो भी सार्थकता है। और जिसके बिना जीना पड़े, तो जीना भी व्यर्थ है। जिसके बिना तुम अपने जीवन को व्यर्थ पाते हो, अर्थहीन पाते हो, उससे तुम्हारा राग है।

किसी का धन से राग है, वह सोचता है—धन के बिना सब व्यर्थ है। हालांकि उसका राग गलत विषय से लगा है। क्योंकि जिस दिन धन कमा लेगा, उस दिन पाएगा कि कुछ कमाया नहीं, जीवन गंवाया। धन तो हाथ आ गया, निर्धनता नहीं मिटी।

धन के तो ढेर लग गए और भीतर निर्धनता के गड्ढे और बड़े हो गए।

किसी का पद से राग है। तो सोचता है जब तक प्रधानमंत्री न हो जाऊं, कि राष्ट्रपति न हो जाऊं, तब तक, तब तक जीवन असार है; प्रधानमंत्री होकर ही मरना है। प्रधानमंत्री होकर पता चलेगा कि जीवन व्यर्थ गया। बड़ी कुर्सी पर बैठकर तुम बड़े न हो जाओगे। सच तो यह है कि जितनी बड़ी कुर्सी हो, उतने ही तुम्हारे छोटेपन को प्रकट करेगी। बड़ी कुर्सी पृष्ठभूमि बन जाएगी। बड़ी लकीर बन जाएगी। उसके सामने तुम छोटी लकीर हो जाओगे।

इसलिए पद पर पहुंचकर लोग जितने छोटे सिद्ध होते हैं, उतने और किसी तरह से सिद्ध नहीं होते। जहां शक्ति होती है, वहां पता चलता है। शक्ति निश्चित रूप से लोगों के भीतर जो भी भ्रष्ट था उसे प्रकट करने का कारण बन जाती है। क्योंकि मौका मिल गया। इच्छाएं तो सदा से थीं, लेकिन पूरा करने की सुविधा नहीं थी। सुविधा नहीं थी, तो दुनिया को हम यही दिखाते थे कि इच्छाएं ही नहीं हैं। क्योंकि

सुविधा नहीं है, यह कहने में तो पीड़ा होती है। इच्छाएं ही नहीं हैं। जब सुविधा मिलती है, तब असलियत प्रकट होती है, सब इच्छाएं दबी पड़ी थीं, प्रकट होने लगती हैं। जैसे वर्षा आ गयी, और सब बीज जो जमीन में पड़े थे, अंकुरित हो गए। सब तरफ घास-पात ऊगने लगा। ऐसे ही जब शक्ति की वर्षा होती है, तो तुम्हारे भीतर सारी इच्छाएं, दमित इच्छाओं का अंकुरण शुरू हो जाता है। तब आदमी बड़ा क्षुद्र मालूम होता है। और बड़े से बड़े पद पर पहुंचकर भी यह पक्का पता चल जाता है—पक्का पता तभी चलता है—कि हाथ तो कुछ लगा नहीं! और जिंदगी पूरी गंवा बैठे! जिंदगी हाथ से निकल गयी और यह कचरा कमाया! इसका कोई मूल्य नहीं है।

लेकिन राग का अर्थ है—जिससे जीवन में अर्थ आएगा; उस संबंध का नाम राग है। गलत राग होते हैं सही, राग होते हैं। द्वेष सदा गलत होता है, राग सही भी होते हैं, गलत भी होते हैं। धन से राग है तो गलत है। ध्यान से जुड़ जाए तो सही है। पद से राग है तो गलत है, प्रभु से जुड़ जाए तो सही है। मैं इसे फिर दोहरा दूं—द्वेष सदा गलत होते हैं, क्योंकि द्वेष ही गलत है; राग सदा सही नहीं होते, और न सदा गलत होते हैं। इसलिए मैंने तुमसे कहा कि राग के बहुत रूप हैं। स्नेह—अपने से छोटे के प्रति हो; समान के प्रति हो तो प्रेम; अपने से बड़े के प्रति हो तो श्रद्धा; और सब सीमाओं से मुक्त हो जाए, किसी विशेष के प्रति न हो, इस समस्त अस्तित्व के प्रति हो, तो भक्ति।

राग प्यारा शब्द है, इसके बहुत अर्थ होते हैं। एक अर्थ रंग भी होता है। जहां राग है, वहां रंग भी है। इसलिए तो राग-रंग शब्द है। रंग यानी उत्सव। जहां राग है, वहां फूल भी खिलेंगे। जहां राग है, वहां इंद्रधनुष भी उठेंगे। जहां राग है, वहां गीत भी होगा, गान भी होगा नृत्य भी होगा। जहां राग है, वहां मरुस्थल नहीं होंगे, मरूद्यान होंगे। जहां राग है, वहां हरियाली होगी।

इसलिए भक्त के जीवन में हरियाली होती है, ज्ञानी के जीवन में रूखा-सूखापन होता है। ज्ञानी का जीवन मरुस्थल जैसा होता है। कहीं कोई हरियाली नहीं, कोई फूल नहीं, कोई सरिता नहीं, कोई झील नहीं। भटक जाओ तो जल के कण को तड़फ जाओ। सब सूखा-सूखा। ज्ञानी के जीवन में काव्य नहीं होता। रंग ही नहीं उठते। ज्ञान बेरौनक है। बे-रंग-भक्ति में बड़े रंग उठते हैं, बड़ी तरंगें उठती हैं। इसीलिए तो मीरा के शब्दों में जो रस है, वह कुंदकुंद के शब्दों में नहीं हो सकता। और कुंदकुंद भी पहुंच गए। लेकिन पहुंचे हैं मरुस्थल से। उन्हें फूलों का पता ही नहीं—फूल उनके मार्ग में आए ही नहीं।

भक्त की वाणी में तो कभी-कभी इतना रस होता है कि लोग समझने की भूल कर देते हैं। उमर खैयाम के साथ ऐसा हुआ। उमर खैयाल भक्त है; सूफी-भक्त, पहुंचा हुआ फकीर। लेकिन बड़ी भूल हो गयी उसके संबंध में, सारी दुनिया की भूल हो गयी। क्योंकि वह स्त्रियों के गीत गाता है, और मधुशाला के, और मधुबाला के। लोगों ने समझा कि यह तो शराब का ही गुणगान कर रहा है। वह समाधि की बात कर रहा है—समाधि को उसने नाम दिया शराब। क्योंकि समाधि में शराब है! और ऐसी

शराब कि एक दफा पी तो पी, फिर कभी नशा उतरता नहीं, टूटता नहीं; चढ़ा तो चढ़ा, उतरना नहीं जानता। और जब वह प्रेयसी की आंखों की बात कर रहा है, तो भूल मत करना। सूफी फकीर परमात्मा को प्रेयसी की तरह देखते हैं। वह परमात्मा की चर्चा है। वे आंखें स्त्री की नहीं हैं, वे परम परमात्मा की हैं। लेकिन सूफियों की धारणा परमात्मा के संबंध में स्त्री की है। जैसे हिंदुओं की धारणा परमात्मा के संबंध में पुरुष की है। तो हिंदू कहते हैं—परमात्मा पुरुष, और हम सब तो उसकी गोपियां हैं।

मीरा गयी वृंदावन। कृष्ण के मंदिर में जाना चाहती थी, दरवाजे पर रोकने का आयोजन था, क्योंकि उस मंदिर में कोई स्त्री को प्रवेश नहीं दिया जाता था। अब यह भी हद हो गयी! दुनिया में बड़ी मूढ़ताएं होती हैं! कृष्ण का मंदिर और स्त्री को प्रवेश नहीं! महावीर के मंदिर में न हो तो बात में कुछ तर्क भी हो सकता है, लेकिन कृष्ण के मंदिर में स्त्री को प्रवेश न हो! मगर कारण यह था कि जो पुजारी था, उसने व्रत ले रखा था ब्रह्मचर्य का, वह स्त्रियों को देखता नहीं था। कृष्ण के कारण नहीं था बंधन, बंधन पुजारी के कारण था। पुजारियों के कारण कृष्ण तक मुसीबत में पड़ जाते हैं!

उसने वर्षों से स्त्री नहीं देखी थी। खबर आयी कि मीरा आती है और कृष्ण के मंदिर में जरूर आएगी। तो वह डर गया होगा। द्वारपाल खड़े कर रखे थे। लेकिन जब मीरा आयी मस्ती में नाचती, तो उसकी मस्ती ऐसी थी कि द्वारपाल भूल गए। वह तो नाचती भीतर प्रवेश कर गयी। उसकी मस्ती ऐसी थी कि रोकने की हिम्मत न पड़ी। उस मस्ती को रोकता भी तो कोई कैसे रोकता! द्वारपाल किंकर्तव्यविमूढ़ खड़े रह गए। मीरा तो आयी हवा की तरह और चली भी गयी भीतर। जब चली गयी तब उन्हें होश आया कि यह तो मामला गड़बड़ हो गया। लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी, मीरा तो जाकर मंदिर में पहुंच गयी थी। पुजारी का थाल हाथ से गिर पड़ा। कृष्ण की पूजा कर रहा था...सच तो यह है किमीरा उसको दिखायी नहीं पड़नी चाहिए। जब पूजा में कोई जुड़ा हो तब कौन किसको देखता है! मगर वह पूजा सब उसकी थी जिनको संसार से द्वेष है। धूप से प्रेम नहीं, घर के भीतर रहने में क्रोध है।...हाथ से थाल छूट गया, वह तो बहुत क्रुद्ध हो गया। द्वारपाल भी जिसकी मस्ती से छा गए थे, उसकी मस्ती से वह पुजारी अछूता ही रह गया। बिलकुल सूख गया होगा।

एक सीमा होती है। वृक्ष की जड़ें जिंदा हों, पत्ते गिर गए हों, शाखाएं सूख गयी हों और वर्षा आ जाए तो फिर अंकुर हो जाते हैं। लेकिन अगर जड़ें ही सूख गयी हों, तो फिर वर्षा के आने पर भी कुछ नहीं होता, ठूंठ-ठूंठ की तरह रह जाता है। वह पुजारी ठूंठ रहा होगा। वह तो बड़ा क्रुद्ध हो गया। उसने कहा कि यह कैसे तुमने प्रवेश किया? मैं स्त्रियों को देखता ही नहीं।

मीरा हंसी, और मीरा ने बड़ी अदभुत बात कही। मीरा ने कहा—मैंने तो सोचा था कि इतने दिन तुम्हें कृष्ण की भक्ति करते हो गए, अब तक एक बात समझ में आ गयी होगी कि पुरुष तो एक ही है, कृष्ण, और तो सब स्त्रियां हैं। तुम भी स्त्री हो, मैं भी स्त्री हूं, अगर कृष्ण को समझे हो तो। मुझे तो कोई दूसरा पुरुष दिखायी नहीं पड़ता। तुम्हें दूसरा पुरुष भी दिखायी पड़ता है?

परमात्मा को या तो पुरुष की तरह सोचो, या स्त्री की तरह सोचो। इससे भेद नहीं पड़ता। लेकिन दोनों हालत में प्रेम का सेतु बने।

उमर खैयाम स्त्री की तरह सोचता है। इसलिए उमर खैयाम की वाणी में और भी लालित्य है; और भी मदिरा है; और भी नशा है। मीरा से भी ज्यादा। मीरा में तो रस है, लेकिन मीरा का भगवान तो पुरुष है। तो पुरुष तो पुरुष होगा ही। कृष्ण भी हों और कितना ही मोर-मुकुट बांधकर खड़े हों, तो भी होंगे तो कृष्ण ही! कब धनुष-बाण लेंगे हाथ में, क्या पता! वचन भी दे दिया था युद्ध में कि शस्त्र हाथ में नहीं लेंगे, लेकिन ले लिया, भूल गए। पुरुष आखिर पुरुष है। आक्रमण उसकी भीतर छिपी हुई वृत्ति है।

तो जो लालित्य उमर खैयाम में है, क्योंकि उसका परमात्मा स्त्री है, जो कमनीयता उमर खैयाम में है, वह मीरा में नहीं है। खूब रस है, मगर थोड़ा सोचो, परमात्मा अगर स्त्री हो, तो फिर तुम जितना कमनीय चाहो, जितना सुंदर चाहो, फिर कोई सीमा नहीं है।

उमर खैयाम बहुत गलत समझा गया। गलत समझा गया है इसीलिए कि उसने ज्ञान की भाषा नहीं बोली, राग की भाषा बोली। उसने द्वेष की भाषा नहीं बोली, उसने प्रेम की भाषा बोली। प्रेम इस जगत में मुश्किल से समझा जाता है। क्योंकि लोग इतने अप्रेम से भरे हैं, अप्रेम तो समझ लेते हैं। तुम्हारे लिए भी समझ में आ जाता है कि संसार व्यर्थ है, छोड़ो; तुम्हारे भीतर भी संसार के प्रति घृणा पैदा करना आसान है—क्योंकि घृणा से तो तुम सुबग रहे हो, उबल रहे हो—लेकिन तुम्हारे भीतर प्रेम की एक किरण पैदा करनी बहुत कठिन है। क्योंकि प्रेम से तो तुम्हारा परिचय ही नहीं हुआ।

राग का एक अर्थ है—रंग। रंग यानी इंद्रधनुष। रंग यानी फूल। रंग यानी तितलियां। रंग यानी रूप। रंग यानी सौंदर्य। भक्त का मार्ग सौंदर्य का, रूप का, रस का मार्ग है।

राग का एक अर्थ—गीत, गान, लय लयबद्धता भी है। वह भी बड़ा प्यारा अर्थ है। क्योंकि जहां भक्ति है, जहां प्रेम है, वहां गान है, गीत है; वहां वीणा बजेगी, वहां कोई पैर में घुंघर बांधकर नाचेगा—पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे—वहां कोई तार छेड़ेगा। वहां सन्नाटा नहीं होगा, वहां संगीत होगा। वहां चुप्पी नहीं होगी, वहां चुप्पी में भी राग होगा, अनाहत होगा, ओंकार होगा। इसीलिए तो शांडिल्य ने इन सूत्रों का प्रारंभ किया—ॐ अथातोभक्तिजिज्ञासा—नाद से शुरू किया।

राग यानी नाद। जहां राग है, वहां उत्सव है। जहां राग है, वहां स्वीकार है। जहां राग है, वहां धन्यवाद का भाव है, अनुग्रह का भाव है। जहां राग है, वहां रस है—रसो वै सः। वह परमात्मा रसरूप है। रस का अर्थ होता है—जैसे वृक्षों में हरा जीवन् रस बहता। वही तो खिलता फूलों में। रस का अर्थ है। जैसे तुम्हारे भीतर श्वास में प्राण बहता। वही तो जिलाता तुम्हें, जगाता तुम्हें। रस का अर्थ होता है—जिसके बिनां जीवन नहीं, जिसके बिना खिलावट नहीं; जो जीवन का पोषक है।

परमात्मा इस जीवन का रस है।

जो संसार से विरस हो गया, जरूरी नहीं कि परमात्मा के रस को पा ले। लेकिन जो परमात्मा के रस में डूब गया, संसार उस के लिए बचता ही नहीं। उसे यहां फिर संसार दिखायी ही नहीं पड़ता, परमात्मा ही दिखायी पड़ता है—उसके ही रस की विभिन्न भाव-भंगिमाएं, उसके ही रस के अलग-अलग रूप, उसके ही रस के अलग-अलग ढंग। वही स्त्री में, वही पुरुष में, वही वृक्ष में, वही पशु में, पक्षी में, वही चांद-तारों में।

पहला सूत्र—

द्वेषप्रतिपक्षभावाद्रसशब्दाच्च रागः।

द्वेष का प्रतिकूल और रस शब्द का प्रतिपादक होने के कारण ही भक्ति का नाम अनुराग है

'द्वेष का प्रतिकूल'। जरा-सी भी द्वेष की गुंजाइश नहीं है भक्ति में। किसी तरह के द्वेष की गुंजाइश नहीं है। द्वेषप्रतिपक्षभावाद्र। शांडिल्य के सूत्र बड़े अदभुत हैं; छोटे-छोटे सूत्र, मगर सब कह दिया जो कहने योग्य है, या जो कहा जा सकता है। या जिसे कहने की जरूरत है। 'द्वेष का प्रतिकूल'। हो गयी परिभाषा भक्ति की! और रस शब्द का जो अनुकूल है। द्वेष के प्रतिकूल और रस के अनुकूल, वही भक्ति।

रसस्वी बनो, रसिक बनो, रसाल बनो। रस में डूबो और रस में डुबाओ। इसी रस को उमर खैयाम ने मदिरा कहा है, शराब कहा है। और भक्त एक मद्यप है। भक्त एक पियक्कड़ है। खुद भी ढालता, औरों को भी ढालता। वहां रूखा-सूखापन नहीं है। वहां गणित और तर्क नहीं है। वहां जीवन को पकड़ने के लिए बुद्धि के ढांचों से कम नहीं लिया जाता, वहां हृदय खोला गया है। वहां हृदय की उन्मत्तता है।

द्वेष का जो प्रतिकूल है और रस शब्द का जो प्रतिपादक़ है, उसका नाम ही भक्ति है, इसीलिए भक्ति को अनुराग कहा है।

नक्रियाकृत्यनपेक्षणाज्ज्ञानवत्।

'वह ज्ञान की भांति अनुष्ठानकर्ता के आधीन नहीं है।'

यह सूत्र आधारभूत सूत्रों में एक है। खूब गहराई से समझना—

'वह ज्ञान की भांति अनुष्ठानकर्ता के आधीन नहीं है।' ज्ञान तो तुम्हारे हाथ में है जितना चाहो अर्जित कर लो। जाओ विश्वविद्यालय, रहो काशी में, पंडितों के पास बैठो, शास्त्रों का अध्ययन-मनन करो, तोता बन जाओ, खूब ज्ञान इकट्ठा हो जाएगा—ज्ञान इकट्ठा करना तुम्हारे हाथ में है। इसलिए ज्ञान तुमसे बड़ा तो हो ही नहीं सकता। ज्ञान तुमसे सदा छोटा होगा। और जरूरत है कुछ तुमसे बड़े की। ज्ञान के ऊपर तुम्हारा हस्ताक्षर होगा। तो ज्ञान कूड़ा-कर्कट होगा। जिसको तुम इकट्ठा कर लिए, जिसको तुम इकट्ठा कर पाए, उसमें विराट की गंध नहीं हो सकती।

इसलिए शांडिल्य कहते हैं—नक्रियाकृत्यनपेक्षणाज्ज्ञानवत्। भक्ति तुम्हारे हाथ के बाहर है। भक्ति परमात्मा का प्रसाद है, मनुष्य का प्रयास नहीं।

इन दो शब्दों में सारा भेद है—प्रयास और प्रसाद। तुम भक्ति इकट्ठी नहीं कर

सकते—कहां इकट्ठी करोगे? भक्ति सीख भी नहीं सकते—कहां सीखोगे? सीखी गयी भक्ति झूठी होगी। ऐसे किसी को डोलते देखकर तुम डोलने लगोगे तो मीरा नहीं हो जाओगे। और किसी को नाचते देखकर तुम नाचने लगोगे तो चैतन्य नहीं हो जाओगे। और किसी को लड़खड़ाते चलते देखकर तुम लड़खड़ाकर चलने लगोगे तो उमर खैयाम नहीं हो जाओगे। भीतर तो तुम जानोगे कि मैं बनकर चल रहा हूं। रस तो बहेगा ही नहीं। डांवाडोल चलोगे तो भी सम्हले रहोगे। और सामने से कार आ जाएगी तो सब भूल जाओगे। उचक कर किनारे पर खड़े हो जाओगे। सब रसविमुग्धता चली जाएगी। या एक रुपयों की एक थैली पास में पड़ी दिखायी पड़ जाएगी, नाच रुक जाएगा। तुम्हारा नाच उधार होगा, बासा होगा, अनुकरण होगा, कार्बन कापी होगी।

ज्ञान तो आदमी इकट्ठा कर सकता है, क्योंकि ज्ञान है ही उधार। लेकिन भक्ति कोई इकट्ठी नहीं कर सकता, संगृहीत नहीं कर सकता। भक्ति आती है। तुम बुला सकते हो भक्ति को, निमंत्रण भेज सकते हो, पाती लिख सकते हो, द्वार खोलकर खड़े हो सकते हो, अपनी झोली फैला सकते हो, मगर जब आएगी तब आएगी, तुम्हारे वश में नहीं है। जैसे सूरज निकलता है, तुम अपना द्वार खोलकर रखो, जब सूरज निकलेगा तो उसकी रोशनी तुम्हारे घर को भर देगी। बस द्वार बंद न रहे, इतना ही कर सकते हो। तुम सूरज को गठरियों में बांधकर घर के भीतर नहीं ला सकते। तुम्हारे हाथ के बाहर है सूरज तुम सूरज को आज्ञा नहीं दे सकते कि मुझे अभी रोशनी की जरूरत है, निकलो, अब सुबह होनी चाहिए। सूरज जब निकलेगा, तब निकलेगा। हां, तुम जब सूरज निकला हो तब अपना द्वार बंद रखकर सूरज को रोक सकते हो।

इस फर्क को समझ लेना—

भक्ति को कोई चाहे तो रोक सकता है, लेकिन ला नहीं सकता। नकारात्मक दृष्टि से तुम क्षमताशाली हो। सूरज निकला रहे, तुम आंख बंद किए रहो तो क्या करेगा सूरज? तुम अंधेरे में रहे आओगे। लेकिन सूरज न निकला हो, तो तुम कितनी ही आंखें फाड़-फाड़कर देखो, तो भी कुछ न होगा। भक्ति आती है, भक्ति भगवान से आती है। तुम सिर्फ पात्र बनो। तुम ग्राहक बनो। तुम स्त्रैण बनो। कर्तृत्व का भाव भक्ति में काम नहीं देगा, बाधा बन जाएगा। भक्ति संकल्प नहीं है, समर्पण है। तुम झुको, प्रतीक्षा करो; पुकारो, रोओ, और राह देखो; जब होगा, तब होगा। होता निश्चित है। जब भी तुम्हारा रुदन पूरा हो जाता है, और तुम्हारे आंसू हार्दिक हो जाते हैं, और जब तुम्हारी पुकार वास्तविक हो उठती है, जब तुम्हारा रोआं-रोआं आंदोलित हो उठता है; जब तुम्हारे प्राण के कोने-कोने में प्रतीक्षा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता, जब तुम सब द्वार खोल देते, सब खिड़कियां खोल देते, कपाट खोल देते और तुम कहते, आओ। पुकारते हो, प्रार्थना करते हो और सब प्रतीक्षा करते हो—अनंत धैर्य चाहिए भक्त को, क्योंकि कौन जाने कब परमात्मा द्वार पर आए! आधी रात आए, तो भक्त को जागा होना चाहिए। कब द्वार पर दस्तक दे दे, तो भक्त को प्रतीक्षारत होना चाहिए।

जैसे प्रेमी की तुम राह देखते—तुम्हारा प्रेमी आ रहा, या तुम्हारी प्रेयसी आ रही, या मित्र आ रहा, तो तुम सो नहीं पाते। राह पर पत्ता भी खड़क जाता है, तुम उठकर बिस्तर पर बैठ जाते हो, बिजली जला लेते, दरवाजा खोलते, शायद जिसकी राह थी, आ गया। जब तुम प्रतीक्षा में रत होते हो तो कोई दूसरा गुजरता है तो तुम बाहर दौड़कर पहुंच जाते हो कि शायद...!

जीसस ने बार-बार अपने शिष्यों से कहा है—चौबीस घंटे राह देखना; क्योंकि कब प्रभु आएगा, वह कौन सी घड़ी चुनेगा, कुछ हमें पता नहीं। वह किस क्षण पर तुम्हारे द्वार पर आकर खड़ा हो जाएगा, किस रूप में, कुछ हमें पता नहीं। आता है जरूर, आता ही रहा है। जब तुम प्रतीक्षा नहीं कर रहे हो, तब भी आता है। और जब तुम गहरी नींद में सोते हो और घुर्राते हो, तब भी द्वार पर दस्तक देता है। जब तुम सपनों में दबे पड़े रहते हो, तब भी तुम्हारे पास आकर खड़ा होता है। जब तुम आंख बंद किए रहते, तब भी उसकी रोशनी तुम्हारी बंद पलकों पर गिरती रहती। जब तुम्हारी आंखों में कोई आंसू और कोई प्रार्थना नहीं है, तब भी वह निकट खड़ा है। उसके बिना तुम जीओगे कैसे? एक क्षण न जी सकोगे। तुम उसे याद करो या न करो, वह तुम्हारी याद कर ही रहा है। एक क्षण को भी उसकी याद तुम्हारे संबंध में टूट जाए, कि तुम्हारी श्वास टूट जाएगी। तुम्हारी श्वास उसकी याद की खबर है कि उसने अभी तुम्हें भुला नहीं दिया है।

तुम थोड़े ही श्वास ले रहे हो, वह तुम्हारे भीतर श्वास ले रहा है। तुम्हारे हाथ में थोड़े ही है श्वास लेना। जिस दिन श्वास बंद हो जाएगी, उस दिन तुम ले सकोगे? जिस दिन वह नहीं लेगा, उस दिन तुम न ले सकोगे। वही तुम्हारे भीतर श्वास फूंक रहा है, वही तुम्हारे हृदय की धुक-धुक है। वही तुम्हारे शरीर में खून का दौड़ना है। वही तुम्हारा होश है, तुम्हारा चैतन्य है। आया ही हुआ है, मगर तुम बेहोश पड़े हो।

शांडिल्य कहते हैं—अक्रियाकृत्यनपेक्षणाज्ज्ञानवत्। ज्ञान की भांति नहीं है भक्ति कि क्रिया से पा ली, अनुष्ठान से पा ली, कुछ कृत्य कर लिया और पा लिया—सीख लिया, अभ्यास कर लिया। नहीं, आदमी के हाथ के बाहर है। यही तो भक्ति का अपूर्व रूप है। भक्ति पर आदमी के हाथ की कालिख नहीं है। भक्ति पर आदमी का हस्ताक्षर नहीं होता। भक्ति आदमी का कृत्य नहीं है। भक्ति उतरती पार से। अलोक से आती लोक में। समयातीत से स्थित से उतरती समय में। जैसे दूर से सूरज की किरण आती, ऐसी भक्ति आती है, भक्ति परमात्मा की किरण है। भगवान का आशीष है। तुम्हारा कृत्य नहीं, तुम्हारे कृत्य का फल नहीं। सिर्फ तुम्हारी ग्राहकता चाहिए। तुम तैयार होओ उसे अंगीकार करने को।

इसलिए भक्त को स्त्रैण हो जाना होता है; आक्रमक नहीं; खोज में नहीं, प्रार्थना में। यहूदी भक्तों ने ठीक बात कही है कि कभी कोई आदमी भगवान को थोड़े ही खोज पाता है। जब आदमी तैयार होता है, भगवान आदमी को खोजता है। यह बात प्रीतिकर है। यह बात बड़ी अर्थपूर्ण है। भगवान आदमी को खोजता है। मगर तुम पात्रता अर्जित करो; वह तुम्हें खोजे, इस योग्य अपने को निखारो; उसका अमृत तुम्हारे पात्र में

गिरेगा, तुम पात्र को शुद्ध तो कर लो; तुम इसे विष से मुक्त तो कर लो।

'वह ज्ञान की भांति अनुष्ठानकर्ता के आधीन नहीं है।' इस छोटे से वचन में सारा रसायन भरा है भक्ति का।

अत एव फलानन्त्यम्।

'इस कारण भक्ति का फल आनंत्य है।' जो तुम्हारे कृत्य से पैदा होगा, उसकी सीमा होगी, उसका अंत आ जाएगा। तुमने एक पत्थर फेंका आकाश में, थोड़ी दूर जाएगा—सौ फीट, दो सौ फीट, तीन सौ फीट, फिर गिरेगा। तुमने जितनी ऊर्जा उस पत्थर में रखी थी, उतनी दूर तक चला जाएगा। फिर गिरेगा, ऊर्जा खतम हो गयी। अनंत तक नहीं चलता जा सकता। तुमने एक दीया जलाया, तेल भरा जितनी देर तक तेल है उतनी देर तक जलेगा; तेल चुक जाएगा, दीया बुझ जाएगा। आदमी जो भी करेगा, उसकी सीमा होगी। इसलिए तुम जो कुछ अपने से पैदा कर लोगे, वह एक दिन मरेगा। तुम जो बनाओगे, वह मिटेगा। तुम्हारा बनाया हुआ शाश्वत नहीं हो सकता।

इसलिए शांडिल्य कहते हैं—अत एव फलानन्त्यम्। इस कारण भक्ति का फल अनंत काल तक चलने वाला है। क्यों? क्योंकि तुम्हारी उस पर छाप ही नहीं है। उसमें परमात्मा का तेल है, तुम्हारा तेल नहीं। उसके पीछे अनंत का हाथ है, तो अनंत तक चलेगा। तुम्हारा स-अंत का हाथ होता, तो उसकी सीमा होती।

हमारी सीमा है। हम जो कहें, हम जो करें, उस सब की सीमा है। हम कितने ही मजबूत किले बनाएं, वे भी धूल-धूसरित हो जाएंगे। चले जाएंगे हजारों साल तक, लेकिन क्या मूल्य है हजारों साल का इस अनंत में! क्षण भर भी तो नहीं। लेकिन जिस चीज के पीछे परमात्मा है, उसका फिर कोई अंत नहीं है।

शांडिल्य यह कह रहे हैं—ज्ञान की सीमा है, भक्ति की सीमा नहीं। भक्ति असीम है। सीमित को क्या खोजते हो? खोज में ही लगे हो तो असीम को खोजो। सीमित को क्या इकट्ठा करना? जो चुक जाएगा, उस दीए पर क्या भरोसा? जो न चुके, जो कुछ ऐसा हो—बिना बाती बिन तेल—जिसकी रोशनी सदा रहे।

खयाल लेना। कुछ ऐसा खोजो जो तुम्हारा निर्मित न हो। तुम्हारे द्वारा निर्मित न हो।

तद्वतःप्रयत्तिशब्दाच्च नज्ञानमितरप्रपत्तिवत्।

'ज्ञानीगण भी शरणागति होते हैं, और ज्ञानहीन को भी भक्ति की प्राप्ति हो जाती है।'

शांडिल्य कहते हैं—और इस चिंता में भी मत पड़ना कि ज्ञानी को ही भक्ति की उपलब्धि होती है। ज्ञान से कुछ लेना-देना नहीं है। अज्ञानी को भी उपलब्धि हो जाती है, ज्ञानी को भी उपलब्धि हो जाती है, पुकार चाहिए। अज्ञानी भी पुकार सकता है। अज्ञानी भी रो तो सकता है न, हृदय भरकर। सच तो यह है कि अज्ञानी ही रो सकता है! ज्ञानी को तो थोड़ी अकड़ रहती है तो रो नहीं सकता। ज्ञानी को तो थोड़ा खयाल रहता है कि मैं जानता हूं।

जितना खयाल होता है कि मैं जानता हूं, उतने ही आंसू रुक जाते हैं। ज्ञानी

प्रार्थना नहीं कर सकता। ज्ञान ही बाधा बन जाता है। ज्ञानी झुक नहीं सकता। मैं जानता हूं, यह अकड़ अहंकार को मजबूत करती है। शांडिल्य कहते हैं—इस फिकर में मत पड़ना कि तुम अज्ञानी हो तो कैसे भगवान तुम्हारे पास आएगा? भगवान ने शर्त नहीं रखी है कि ज्ञानियों के पास आऊंगा, कि जिनके पास विश्वविद्यालय का प्रमाणपत्र होगा, उनके पास आऊंगा। कोई शर्त नहीं, भगवान बेशर्त आता है। बस तुम स्वीकार करने को राजी होओ।

सच तो यह है—अज्ञानी ज्यादा सरल होता है। ज्यादा निष्कपट होता है। गांव के ग्रामीण इसीलिए ज्यादा सरल ज्यादा निष्कपट, ज्यादा निर्दोष हैं। शहर का पढ़ा-लिखा आदमी ज्यादा चालबाज है, ज्यादा चालाक है। अगर वह कभी-कभी भोला-भालापन भी दिखलाता है तो वह भी उसकी चाल होती है। उसके भोले-भालेपन में भी पूरा गणित होता है। और गांव का ग्रामीण आदमी अगर कभी भोला-भाला भी नहीं मालूम होता, तो भी उसके भोले-भालेपन के कारण। कभी बिलकुल ही कठोर मालूम हो सकता है गांव का ग्रामीण, मगर वह भी उसके भोले-भालेपन का ही हिस्सा है। वह बच्चों की भांति है।

शांडिल्य कहते हैं—इस चिंता में पड़ना ही मत, ज्ञानीगण भी शरणागत होते और ज्ञानहीन को भी भक्ति की प्राप्ति हो सकती है। भक्ति का कोई लेना-देना नहीं है ज्ञानी या अज्ञानी से।

और इतना भी खयाल रखना कि अंततः ज्ञानी को भी शरणागत होना ही पड़ता है। जब शरणागत होना ही है, तो यह ज्ञान को बोझ इतने दिन तक और क्यों ढोना! यह गठरी क्यों सिर पर! ज्ञानी को भी अंततः समर्पण करना होता है, संकल्पवान को भी अंततः समर्पण करना होता है। कितने ही दूर तक तप तुम्हें ले जाए, ज्ञान तुम्हें ले जाए, एक अंतिम घड़ी आती है जब तुम्हें तप भी छोड़ना पड़ता है, क्योंकि तप का ही सूक्ष्म अहंकार बाधा बनने लगता है। एक घड़ी आती है, तब तुम्हें निष्कपट भाव से झुक जाना पड़ता है और तुम्हें कहना पड़ता है—मैं कुछ भी नहीं जानता। मैं ही नहीं हूं तो जानूंगा कैसे? मैं हूं कौन जो जान सकूंगा, तेरा रहस्य अपरंपरा है! वही है ज्ञानी वस्तुतः जो एक दिन ज्ञान को भी छोड़ दे। क्योंकि ज्ञान को छोड़े बिना इस जगत के रहस्य से संबंध न हो पाएगा।

जानने का कहां संभव है? इतना अपरंपार है रहस्य! विस्मय इतना गहन है! यह ज्ञान तो ऐसे ही है जैसे कोई चम्मच लेकर और सागरों को खाली करने में लगा है। वह हमारा ज्ञान तो ऐसे ही है जैसे हमने मुट्ठी में सागर की थोड़ी-सी रेत भर ली, और सोचते हैं सारी रेत हाथ में आ गयी। थोड़े-से शंख-सीप बीन लिए हैं। सागर के तट पर, वही हमारे शास्त्र हैं। शंख-सीप! अनंत शेष है। जितना जानो उतना ही पता चलता है कि कितना काम जानते हैं! जिस दिन आदमी वस्तुतः जानता है, उस दिन एकदम अज्ञानी हो जाता है।

सुकरात ने यही कहा है कि जब मैं जवान था, तो सोचता था—सब मैं जानता हूं। जब मैं प्रौढ़ हुआ, तब मुझे यह अकल आयी कि सब मैं नहीं जानता, थोड़ा-सा

जानता हूं, बहुत जानने को शेष है। और जब मैं बूढ़ा हुआ, तो मुझे यह अकल आयी कि जानता ही क्या हूं! महा अज्ञानी हूं। मुझ से बड़ा अज्ञानी कौन! इतना ही जानता हूं कि मुझ से बड़ा अज्ञानी कौन! और जिस दिन सुकरात ने यह कहा कि मुझ से बड़ा अज्ञानी कौन, उस दिन देल्फी के देवता ने घोषणा की कि सुकरात महाज्ञानी हो गया। जो लोग सुनने गए थे, उन्होंने लौट कर सुकरात को कहा कि देल्फी के देवता ने घोषणा की है मंदिर में कि सुकरात महाज्ञानी हो गया है। सुकरात ने कहा—यह भी हद हो गयी। जिंदगी भर मैं चाहता था कि देल्ही का देवता घोषणा करे कि सुकरात महाज्ञानी है, तब तो की नहीं, और अब जब मुझे पता चल गया कि मैं कुछ भी नहीं जानता, तब यह घोषणा! तब सुकरात को लगा कि शायद इसलिए यह घोषणा की गयी है, क्योंकि अब मैं जानता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता। यह ज्ञानी का लक्षण है।

'ज्ञानीगण भी शरणागत होते और ज्ञानहीन को भी भक्ति की प्राप्ति हो सकती है'।

'सा मुख्येतरापेक्षितत्वात्।

वह भक्ति ही मुख्य है, क्योंकि और-और साधनों में इसकी सहायता लेनी पड़ती है।'

शास्त्रों में एक वचन है, कहते हैं नारद ने विष्णु से पूछा—प्रभु, आप तो सर्वव्यापक हैं, पर फिर भी विशेष कर के कहीं रहते होंगे। विशेष कर के कहां रहते हैं, किस जगह रहते हैं? विष्णु ने कहा—-'नाहं तिष्ठामि वैकुंठे योगिनां हृदयेपि च, मद्भक्ताः यत्र गायंत्रि तत्र तिष्ठामि नारद!' मैं जैसा भक्त के हृदय में प्रीति से रहता हूं, आनंदमग्न होकर, जैसा रसलीन होकर भक्त के हृदय में रहता हूं, वैसा में योगियों के हृदय में नहीं रहता, और वैकुंठ में भी नहीं। मरो वैकुंठ भक्त का हृदय है। मद्भक्ताः यत्र गायंत्रि तत्र तिष्ठामि नारद। जहां मेरे भक्त आनंदित हैं, आह्लाद से भरे हैं; जहां मेरे भक्त नाचते और गाते, जहां मेरे भक्त लीन होते, वहां रहता हूं। वहां विशेषकर रहता हूं। ऐसा मैं योगी के हृदय में नहीं रहता। क्यों? क्योंकि योगी के हृदय में थोड़ा योगी भी रहता है। भक्त के हृदय में कोई भी नहीं, सन्नाटा है, शून्य है। वहां रहने की खूब जगह है।

योगी के हृदय में तो भगवान को थोड़ी-सी जगह है—योगी खुद भी तो रहेगा न! योगी की अकड़ कि मैंने इतने साधन किए, इतने अनुष्ठान किए, इतने विधि-विधान किए; इतना योग, इतना आसन, प्राणायाम, व्यायाम, न-मालूम क्या-क्या कर रहा हूं, यह सब भी तो वहां रहेगा न! यह गोरखधंधा भी तो वहां चलेगा न! और अकड़ ज्ञान की, और अकड़ साधना की, अहंकार भी तो जगह रोकेगा न! एकाध कोने में कहीं भगवान को भी जगह देता होगा योगी, लेकिन ज्यादा जगह तो खुद ही घेर लेता है। उस सिंहासन पर भगवान को बैठने की जगह कहां है!

लेकिन भक्त के हृदय में? न कोई साधन है भक्ति में, न कोई विधि है भक्ति में न कोई ज्ञान है भक्ति में, तो अकड़ पैदा होने का उपाय नहीं भक्ति में। भक्त तो विसर्जित हो गया। भक्त तो बचा नहीं। भक्त का हृदय तो कोरा आकाश है। वहां

भगवान रहें, पूरी तरह से रहें। असल मग उस कोरेपन का नाम ही भगवत्ता है। भगवान कुछ अलग नहीं है उस कौरेपन से। वह कोरापन ही भगवत्ता है। तुम्हारे हृदय में जितनी खाली जगह है, उतना ही भगवान का वास है। खाली जगह भगवान है। जो भरी जगह है, वह तुम हो। भरी जगह संसार है, खाली जगह भगवान है। जब तुम्हारा हृदय परिपूर्ण खाली है, इतना खाली कि यह भी कहने को कोई नहीं है कि मैं हूं, मैं का भाव गया, उसी क्षण—मद्‌भक्ताः यत्र गायंत्रि तत्र तिष्ठामि नारद।

वह भक्ति मुख्य है, शांडिल्य कहते हैं, क्योंकि और साधनों में इसकी सहायता लेनी पड़ती है। ज्ञानी भी एक दिन अंततः भक्ति की सहायता लेनी पड़ती है। क्योंकि तुम्हारे प्रयास से जो मिल सकता है, वही मिल सकता है। जो नहीं मिल सकता, नहीं मिल सकता। जो प्रयास की सीमा के बाहर है, वह प्रयास से नहीं मिलेगा। लाख उपाय करो, नहीं मिलेगा। लेकिन एक दिन जब थक जाओगे उपाय कर-कर के, टूट जाओगे उपाय कर-करके, गिर पड़ोगे उपाय कर-करके, तब तुम्हें यह बोध आएगा—कि हे प्रभु, अब तू संभाल! मैं जो कर सकता था, कर लिया। मुझ से जो हो सकता था, हो गया। अब तू संभाल! अब मेरे बस के बाहर है, इससे आगे मैं नहीं जा सकता। अब तू मेरा हाथ गह ले।

जिस दिन, योगी, तपस्वी इस घड़ी में आता है—और यह घड़ी आती ही है, क्योंकि आदमी की बिसात कितनी! थोड़ी-सी। दस-पांच कदम चल ले सकता है, लेकिन फिर? अनंत की यात्रा पर आदमी चुक जाएगा। जहां आदमी चुक जाता है, वहीं समर्पण।

तो शांडिल्य कहते हैं—जब समर्पण ही करना है, तो पहले कदम पर ही क्यों नहीं? जब अंतिम कदम पर गिर ही जाना होगा, तो भक्त कहता है हम पहले कदम पर ही गिरे जाते हैं इतनी झंझट और क्यों लेनी! प्रयास करें ही क्यों, अगर प्रसाद से होता है? अगर झोली से मिलता है भगवान, तो हम और अनुष्ठान-आयोजन करें ही क्यों? झोली फैला देंगे।

तुम कहोगे, अगर इतना सरल है तो फिर सभी लोग झोली क्यों नहीं फैलाते? झोली फैलाना बहुत कठिन है। अहंकार कहता है—झोली, और तुम? फैलाने दो दूसरों को, मैं सिद्ध करके रहूंगा, मैं पाकर रहूंगा, मैं अपने से ही पाकर रहूंगा। अहंकार की यही तो भावदशा है। झोली नहीं फैला सकता। समर्पण नहीं कर सकता। मैं और भीख मांगूं—भगवान से ही सही, मगर मैं और भीख मांगूं!! हम भगवान को भी विजय करने चले हैं। अहंकार सब जग विजय की भाषा में सोचता है।

ज्ञानी भी एक दिन ज्ञान से थक जाता है। थक कर ज्ञान को छोड़ देता है और अज्ञानी हो जाता है। और संकल्प भी एक दिन संकल्प से थक जाता है और समर्पण हो जाता है। कर्म भी एक दिन ऊब जाता कर्म से; थक कर बैठ जाता है, वहीं, वहीं असली क्रांति घटती है।

बुद्ध ने छः वर्षों तक कठोर तपश्चर्या की—कठोर, जितनी आदमी कर सकता है! क्षत्रिय थे, जिद्दी थे, हठी थे, सम्राट थे, अहंकारी थे, सब दांव पर लगा

दिया छः वर्षों में। लेकिन आदमी जहां तक प्रयास से जा सकता है, उससे आगे नहीं जा सके। सीमा आ गयी। एक दिन सीमा आ गयी। और चूंकि पूरी ताकत लगायी थी इसलिए छः साल में आ गयी, अगर ऐसे ही धीरे-धीरे लगायी होती तो शायद छः जन्मों में नहीं आती। और भी पूरी लगायी होती तो शायद छः महीने में आ जाती। अगर कोई समग्र-रूपेण शक्ति लगा दे तो एक क्षण में भी आ जाती है सीमा। कितनी त्वरा से तुम जाते हो, उतनी ही जल्दी सीमा आ जाती है। धीरे-धीरे जाओ तो देर लगती है आने में।

सीमा छः वर्षों में आ गयी, बुद्ध थककर गिर पड़े। और जिस रात थक कर गिर पड़ और सो गए बोधिवृक्ष के नीचे—साम्राज्य पहले छोड़ दिया, उस दिन साधना भी छोड़ दी; उस दिन साधना को छोड़कर सो रहे कि अब नहीं होता, अब अपने बस के बारह है, बात खतम हो गयी—उसी रात घट गयी। सुबह आंखें खुलीं और वह जो आदमी खोजने निकला था, था ही नहीं भीतर; अब तो वह आदमी था जिसको मिल चुका। सुबह का आखिरी तारा डूबता था और बुद्ध ने उस आखिरी तारे को आकाश में डूबते देखा, उसीके साथ उनका भी आखिरी अहंकार डूब गया। उसी क्षण क्रांति घट गयी, उसी क्षण रूपांतरण हो गया।

यही शांडिल्य कह रहे हैं। जिस दिन थक कर गिर जाओगे, जिस दिन थक कर पुकारोगे, जिस दिन छोटे बच्चे की तरह पुकारोगे, उस दिन वह आता है।

चार तिनके उठा के जंगल से
एक बाली अनाज की लेकर
चंद कतरे-से बासी अश्कों के
चंद फाके बुझे हुए लब पर
मुट्ठी भर अपनी कब्र की मिट्टी
मुट्ठी भर आरजूओं का गारा
एक तामीर की लिए हसरत
तेरा खानाबदोश बेचारा
शहर में दर-ब-दर भटकते है
तेरा धंधा मिले तो सर टेकूं
हर एक ऐसे ही भटक रहा है—
तेरा कंधा मिले तो सर टेकूं

और कंधा पास है। अगर सर तुम्हारा अकड़ा हुआ है। तुम जब चाहो टकना, तब टेक लो। परमात्मा तकिया बनने को प्रतिक्षण को मौजूद है। मगर तुम पहले अपने से थको और हारो। हारे को हरिनाम।

आज इतना ही।

चौथा प्रवचन

प्रीति-स्नेह-प्रेम-श्रद्धा-भक्ति

④

क्या प्रीति स्नेह, प्रेम, श्रद्धा से गुजरकर

स्वभावतः ही भक्ति में रूपांतरित होती है?

★

वर्णनातीत को कहकर क्यों कोई शांडिल्य

मनुष्यता के सामने एक पत्थर धर देता है?

★

क्या परमात्मा का अनुभव प्रत्येक का

अलग-अलग तरह का है?

★

क्या प्रार्थनाएं प्रभु तक पहुंचती हैं?

पहला प्रश्न : क्या प्रीति स्नेह, प्रेम, श्रद्धा से गुजरकर स्वभावतः ही भक्ति में रूपांतरित होती है?

स्वभावतः और अनिवार्यतः। जैसे बीज बोया, सम्यक ऋतु हो, ठीक भूमि हो, जल मिले, सूर्य की किरण मिले, तो स्वभावतः और अनिवार्यतः अंकुरित होगा। बाधाएं हों तो कठिनाई होगी। भूमि ठीक न हो, पथरीली हो; सूरज उपलब्ध न हो, जल न मिले, तो बीज अंकुरित नहीं होगा। पूरी क्षमता थी, लेकिन मार्ग में चट्टानें पड़ गयीं।

बीज अंकुरित हो, तो स्वभावतः और अनिवार्यतः वृक्ष बनेगा। लेकिन बाधाएं हो सकती हैं, दुर्घटनाएं हो सकती हैं। कोई पशु आए और चर जाए, कोई बागुड़ न लगाए, रक्षा न करे, कोई बच्चा खेल-खेल में तोड़ जाए। तो बागुड़ चाहिए होगी। थोड़े दिन रक्षा करनी होगी। जल्दी ही घड़ी आ जाएगी। जब वृक्ष अपने ही बल पर खड़ा हो सकेगा; फिर कोई बागुड़ की जरूरत न होगी; किसी माली की भी जरूरत न होगी।

और जब वृक्ष हो और सम्यक पोषण मिले, एक न एक दिन फूल भी खिलेंगे और फल भी लगेंगे। यह सब सहज ही होता है।

प्रीति की ऊर्जा बननी ही चाहिए भक्ति। प्रीति भक्ति बनने को ही पैदा हुई है। दूसरे शब्दों में कहें तो मनुष्य भगवान होने को पैदा हुआ है। मनुष्यता भगवत्ता में रूपांतरित होनी ही चाहिए। वह उसका अंतर्निहित स्वभाव है।

ऐसा कौन आदमी है जो प्रभुता न पाना चाहता हो। भला गलत ढंग से पाना चाहता हो—धन पाकर प्रभुता पाना चाहता हो। नहीं मिलती धन पाकर, लेकिन आकांक्षा तो सच है। पद पाकर प्रभुता पाना चाहता हो। नहीं मिलती पद पाकर, दिशा गलत है, लेकिन प्रेरणा तो सच है।

प्रत्येक व्यक्ति प्रभु होना चाहता है। प्रभु हुए बिना चैन नहीं। इसलिए जहां-जहां तुम्हारी प्रभुता को चोट पड़ती है, वहीं संताप होता है। जहां तुम्हें कोई दीन-हीन कर देता है, वहीं पीड़ा होती है, वहीं कांटा चुभता है। तुम परम प्रभुता चाहते हो। तुम परम स्वातंत्र्य चाहते हो। तुम अपने ऊपर कोई बाधा नहीं चाहते। यही तो धर्म की खोज है।

तो इसे हम ऐसा कहें कि मनुष्य परमात्मा होना चाहता है, या हम ऐसा कहें कि प्रीति की ऊर्जा भक्ति होना चाहती है, एक ही बात है। प्रीति जब भक्ति बनती है, तभी व्यक्ति समष्टि बनता है।

लेकिन मार्ग में बाधाएं बहुत हैं। असली सवाल बाधाओं का है। स्नेह, प्रेम और श्रद्धा से गुजर ही नहीं पाते तुम। तुम्हारा स्नेह भी दूषित होता है, इसलिए अटक

जाता है। तुम्हारे स्नेह में शुद्धता नहीं होती कि उड़ जाए आकाश की तरफ। तुम्हारे स्नेह में पंख नहीं होते, पत्थर बंधे हैं। तुम स्नेह भी करते हो तो बड़ी कंजूसी से करते हो, वही कंजूसी खा जाती है, वही कृपणता खा जाती है। जितना कृपण स्नेह होगा, उतनी ही संभावना कम है कि वह प्रेम बन सके।

फिर प्रेम में भी तुम्हारे बड़ी ईर्ष्याएं हैं। बड़ी घृणाएं हैं। तुम्हारा प्रेम भी पवित्र नहीं। तुम्हारे प्रेम में भी पावनता नहीं। तुम्हारे प्रेम की अग्नि में बहुत धुआं है। ज्योति शुद्ध नहीं इसलिए वहां अटक जाते हो। फिर वहीं उलझ जाते हो। फिर प्रेम की उस तथाकथित भंवर में ही डोलते रहते हो। वहीं नष्ट हो जाते हो। श्रद्धा का जन्म नहीं हो पाता। स्नेह शुद्ध हो तो प्रेम बने, प्रेम शुद्ध हो तो श्रद्धा बने और श्रद्धा शुद्ध हो तो भक्ति।

शुद्धि के सूत्र को सम्हालना होगा। तुम्हें अपने बेटे से प्रेम है, अपने के कारण प्रेम किया तो अशुद्ध हो गया। फिर तो बेटे से न हुआ प्रेम, अपने अहंकार से ही हुआ—मेरा बेटा है। यह तो मैं को ही प्रेम किया प्रकरांतर से। बेटे के माध्यम से अपने अहंकार की ही पूजा की। कल तुम्हें पता चल जाए, पुरानी किताबें उलटते-पलटते कोई पत्र मिल जाए और पत्र से पता चले कि तुम्हारी पत्नी किसी के प्रेम में थी जब यह बेटा पैदा हुआ, संदेह उमग आए, उसी क्षण स्नेह तिरोहित हो गया। यह कोई स्नेह था? इस बेटे से संबंध ही न था। अब अहंकार की तृप्ति नहीं होती, बात खतम हो गयी।

तुम्हें अपनी पत्नी से प्रेम है। यह मेरी है इसलिए है? जहां मेरा बहुत वजनी हो जाता है, वहीं बीज के मार्ग में चट्टान आ जाती है। अहंकार बड़ी से बड़ी चट्टान है, जब तक न टूटे, तब तक कोई बीज अंकुरित नहीं होगा। अंकुरित हो जाए तो भी वृक्ष न बनेगा। वृक्ष बन जाए तो फूल न आएंगे। फूल लग जाएं तो फल न आएंगे। हजार तलों पर अहंकार बाधा देता है। और उसके अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है।

जिस स्त्री को तुमने प्रेम किया है, इसको दो ढंग से प्रेम किया जा सकता है। एक ढंग तो कि मेरी है इसलिए। और एक ढंग कि परमात्मा का सौंदर्य प्रकट हुआ है, परमात्मा की है। वही झलका है। तुम्हारे घर बेटा पैदा हुआ है, वह परमात्मा का ही आगमन हुआ है। परमात्मा मेहमान बना है तुम्हारे घर, स्वागत करो, सम्मान करो। मोह-ममता के बंधन मत डालो। बेटे को मुक्त रखो। और जब तक बाप बेटे का सम्मान न करे, तब तक यह आकांक्षा आज नहीं कल बड़ा दुख देगी कि बेटा मेरा सम्मान करे। सम्मान के उत्तर में सम्मान आता है।

इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता कि तुम्हारी उम्र ज्यादा है। बेटा अभी-अभी परमात्मा के घर से आया है, ताजा है। अभी-अभी परमात्मा का स्पर्श उस पर है। अभी-अभी परमात्मा की गंध भी कुछ उस पर है। इसीलिए तो सभी बच्चे सुंदर होते हैं—कुरूप बच्चा खोजना कठिन है। अभी डूबे हैं। अभी आ गये हैं लेकिन पूरे नहीं आ पाए हैं संसार में; समय लगेगा। संसार की भाषा सीखेंगे, गणित-चालबाजियां सीखेंगे, धोखाधड़ी सीखेंगे, समय लगेगा। अभी कोरे कागज हैं। सम्मान दो, सत्कार

दो, स्नेह दो। लेकिन मेरे हैं, इसलिए नहीं। इसलिए कि परमात्मा ने फिर पृथ्वी पर अवतरण किया।

अगर तुम अपने बच्चे में परमात्मा को देख सको तो किसी कृष्ण की पूजा करने, किसी बालगोपाल की पूजा करने जाना पड़ेगा? बालगोपाल रोज तुम्हारे घर आते हैं और तुम्हें सूरदास की शरण लेनी पड़ती है बोलगोपाल की भक्ति करने के लिए थोथे हो तुम, सूरदास का भजन जब तुम पढ़ते हो कि पैर में पैजनिया बांधकर कृष्ण ठुमक-ठुमककर चलते हैं, तब तुम आह्लादित होते हो, और तुम्हारे घर कृष्ण पैर में पैजनिया बांधकर ठुमक-ठुमक अभी चल रहे हैं—गीत नहीं सचाई में; सपने में नहीं, किसी कवि की कविता में नहीं, यथार्थ में—मगर वहां तुम्हें कुछ नहीं दिखायी पड़ता, वहां मेरे का पत्थर पड़ा है। वहां मेरे के कारण पांव में बंधी पैजनिया नहीं सुनायी पड़ती। तुम्हारे कान बहरे हो गये हैं। तुम दीवाल की तरह हो। तुम्हारा दर्पण कुछ भी प्रतिफलित नहीं करता।

सूरदास के वचन सुनकर तुम आंदोलित होते हो, और कितने बालगोपाल चारों तरफ खेल रहे हैं, उन बोलगोपाल को देखकर तुम सिर्फ नाराज होते हो। कि शोरगुल न करो, भाग जाओ यहां से! अभी मैं अखबार पढ़ता हूं, अभी यहां पास न आओ! अभी मैं गणित का हिसाब करता हूं, अभी मैं खाताबही लिखता हूं। अभी मैं पूजा-पाठ कर रहा हूं! अभी बच्चों का आगमन यहां निषिद्ध है।

तुम क्या पूजा-पाठ करोगे! तुम्हारे पास आंखें पत्थर की हैं। तुम्हें कुछ दिखायी नहीं पड़ रहा है। हर बच्चे में कृष्ण उतना ही है जितना कृष्ण में था, देखने की आंख चाहिए। हर पत्थर में मूर्ति छिपी है, खोजने की आंख चाहिए। कण-कण में वह विराजमान है।

जिस क्षण तुम छोटे से बच्चे में कृष्ण को देख सकोगे, कि राम को, कि क्राइस्ट को, उसी क्षण स्नेह शुद्ध हुआ। स्नेह को पंख लगे। अब स्नेह को पृथ्वी पर नहीं रोका जा सकता, बीज फूटा, अंकुर बना, उठने लगा ऊपर।

देखते हो रूपांतरण? जब तक बीज बीज था तो ऊपर नहीं उठ सकता था; नीचे गिर सकता था, ऊपर नहीं उठ सकता था, ऊर्ध्वगमन नहीं था। नीचे तो जा सकता था, कितने ही गहरे गड्ढे में उतर सकता था, लेकिन एक इंच भी ऊपर नहीं उठ सकता था। क्रांति देखते हो? बीज टूटकर अंकुरित हो गया, क्रांति घट गयी, अब अंकुर ऊपर उठने लगा, चमत्कार हो गया।

तुमने कहानी सुनी है, जिस व्यक्ति ने गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत खोजा, न्यूटन ने, वह एक बगीचे में बैठा है और एक सेव का फल वृक्ष पर पक गया और गिरा। उस वृक्ष से गिरते फल को देखकर उसके मन में जिज्ञासा उठी कि हर चीज नीचे की तरफ ही क्यों गिरती है? पत्थर को ऊपर फेंकते हैं, वह भी नीचे लौट आता है। छलांग लगाओ, छलांग पूरी भी नहीं हो पाती कि वापस जमीन पर आ जाते हो। हर चीज जमीन पर लौट आती है। इससे उसने गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत निकाला कि जमीन खींचती है चीजों को अपनी तरफ।

यह अधूरा सिद्धांत है।

अगर मेरा कहीं न्यूटन से मिलना हो जाए तो उससे मैं कहूं कि तूने यह प्रश्न तो पूछा, लेकिन इससे भी गहरा प्रश्न यह था कि फल यह ऊपर पहुंचा कैसे? हमने तो बीज बोया था जमीन में; हमने तो गड्ढे में डाला था बीज, फल लगा आकाश में! यह फल चढ़ा कैसे? फल टूटकर गिरता है तो जमीन पर गिरता है, यह सच है। तो इससे एक सिद्धांत तय होता है कि जमीन खींचती है। मगर कोई ताकत होनी चाहिए जो ऊपर की तरफ भी खींचती है; नहीं तो वृक्ष उठेगा ही कैसे?

चमत्कार है वृक्ष का उठना! होना नहीं चाहिए, नियम के अनुकूल नहीं है। और ऊपर की फुनगी तक भी पानी की धार पहुंचती है। कोई पंप भी नहीं लगा हुआ है। ऊपर की आखिरी फुनगी तक जलधार उठती है—उठना पड़ता है; गुरुत्वाकर्षण के नियम को तोड़कर उठती है।

कोई नीचे की तरफ खींच रहा है, कोई ऊपर की तरफ भी खींच रहा है, तुम कहां खिंचोगे, तुम पर निर्भर है। बीज अगर टूटे न, तो नीचे की तरफ जाएगा, बीज अगर टूट जाए तो ऊपर की तरफ जाएगा। अहंकार अगर टूटे न, तो नीचे की तरफ ले जाता है, नर्क की यात्रा करवाएगा; अहंकार अगर टूट जाए, तो सारा स्वर्ग तुम्हारा है, तुम्हारे लिए प्रतीक्षा कर रहा है—ऊपर की तरफ ले जाएगा। अहंकार टूटे न तो पत्थर है, छाती में लटकी चट्टान है—उड़ोगे कैसे? अहंकार टूट जाए तो पंख। फिर खूब उड़ान हो सकती है।

तो स्नेह से अहंकार को हटा लो, ममत्व को विदा कर दो और तुमने जहर छांट दिया। फिर स्नेह प्रेम में बदलेगा। फिर ध्यान रखना कि प्रेम में कहीं छिपा हुआ पीछे से अहंकार न आ जाए। नहीं तो सारे प्रेम का आनंद विषाक्त हो जाता है।

तुम देखते हो प्रेमियों को, सुख तो कम दुख ज्यादा पाते मालूम पड़ते हैं। प्रेम के नाम पर सुख तो कभी कभार मिलता है, दुख रोज मिलता है। प्रेम में जितना दुख मिलता है और कहीं भी नहीं मिलता। इसलिए बहुत समझदारों ने तो तय कर लिया है कि प्रेम की झंझट में ही न पड़ेंगे। कभी सौ में एक मौके पर तो सुख और निन्यानबे मौकों पर दुख। कभी एक फूल खिलता है, निन्यानबे तो कांटे ही चुभते हैं। छाती क्षार-क्षार हो जाती है। प्रेमियों को तुम रोते पाओगे—हंसते कभी प्रेमियों को पाते! द्वेष चलता, ईर्ष्या जगती, वैमनस्य पैदा होता—मालकियत अड़चन लाती। मेरी पत्नी! अब तुम्हें फिकर करनी पड़ती कि मेरी पत्नी, इसके चारों तरफ एक दीवाल उठा दो। इस पर किसी की नजर न लग जाए। इसके चारों तरफ ऐसी दीवाल उठा दूं कि कोई इसे देख न पाए—यह भी किसी और को न देख पाए! बड़ा भय तुम्हारे भीतर पैदा हो गया है कि आज है तुम्हारी, कल कहीं किसी और की न हो जाए! कौन किसका है यहां? सब अजनबी हैं। राह पर दो घड़ी साथ हो लिये हैं, नदी-नाव-संयोग है। कौन किसका हो सकता है! यह मालकियत का दावा! इसी दावे में अहंकार आ गया।

जब तुमने कहा—मेरी पत्नी, मेरा पति, तभी अहंकार आ गया। और अहंकार आया कि पंख कटे। अहंकार आया कि नर्क की तरफ यात्रा शुरू हुई। अब

चिंता आएगी, अब फिकर लगेगी, भय पैदा होगा; दफ्तर में बैठे रहोगे, घर की सोचोगे—पत्नी न मालूम किसीके साथ हंसती-बोलती न हो! अब हजार दुश्चिंताएं तुम्हें घेरेंगी। और तुम चौबीस घंटे पहरेदार की तरह खड़े रहोगे।

पति-पत्नी एक-दूसरे पर पहरा देते रहते हैं। काम ही उनका यह हो जाता है—मुफ्त के पहरेदार! उनका धंधा ही यह हो जाता है। पति को घड़ी देर हो गयी आने में घर कि बस पत्नी आग-बबूला है; तैयार बैठी है; टूट ही पड़ेगी पति पर। पति रास्ते में चला आ रहा है, हजार तरह की कहानियां गढ़ रहा है—क्या कहूंगा, कैसे बचूंगा? दफ्तर में ज्यादा काम आ गया था, कि कहीं मजबूरी में रुक जाना पड़ा, कि किसी मित्र से मिलना हो गया? हजार बहाने खोज रहा है। यह प्रेम है? इसमें भरोसा ही नहीं है, यह कैसा प्रेम? इम्में जरा सा भी, अंशमात्र भी एक-दूसरे के प्रति सम्मान नहीं है, अपमान है। इसमें दूसरे की बड़ी गहरी निंदा है। दूसरे की क्षुद्रता की तलाश है। तो फिर अटक गये। फिर भक्ति तक न पहुंच पाओगे। और भक्ति तक न पहुंचे तो भगवान कहां? फिर लाख तर्क करो, लाख सोच करो, लाख शास्त्र पढ़ो, सब व्यर्थ है।

प्रेम को शुद्ध होने दो। अहंकार से प्रेम को मुक्त होने दो। बीच में मेरे-तेरे का भाव न आए। मालकियत का प्रश्न न उठे देखते हैं, पति को हम स्वामी कहते हैं, स्वामी का मतलब मालिक। हालांकि पत्नी अपने को 'दासी' कहती है, मगर मानता कौन है! मानती कौन पत्नी अपने को दासी! कहने की बात है। दासी होने में भी उसका ढंग है मालिक होने का। वह स्त्रैण ढंग है मालिक होने का। पुरुष गर्दन पकड़ता है गर्दन पकड़नी हो, स्त्री पैर पकड़ती है अगर गर्दन पकड़नी हो। अलग-अलग ढंग हैं। उनके अलग मनोविज्ञान हैं।

पुरुष क्रोध में आ जाए तो स्त्री को मारता है। स्त्री क्रोध में आ जाए तो खुद को मारती है। उनके अलग मनोविज्ञान हैं। मगर खुद को मारकर वह पुरुष को ही मार रही है। तुमने देखा, जब कोई स्त्री अपने बच्चे को मारने लगती है, तो वह पड़ोसी के बच्चे को मार रही है, अपने बच्चे को नहीं मार रही है। अगर पड़ोसी ने शिकायत की है, तो वह टूट पड़ती है अपने बच्चे पर। मगर, अगर गौर से देखो उसे तो वह पड़ोसी के बच्चे को मार रही है। मगर पड़ोसी के बच्चे को तो मारा नहीं जा सकता, इसलिए अपने को ही मार रही है। पति पर तो हाथ उठाया नहीं जा सकता है, इसलिए स्त्रियां अपने को पीट लेती हैं। अपने बाल नोच लेती हैं। पति जब भी सोचता है क्रोध में तो सोचता है—इस पत्नी को मार ही डालूं। पत्नी जब भी सोचती है क्रोध में, सोचती है आत्महत्या ही कर लूं। यह उनकी भाषाओं के भेद हैं। मगर हिंसा, क्रोध, वैमनस्य, सब पूरा का पूरा खड़ा है।

नहीं, प्रेम अगर ऐसे उलझ गया अहंकार में, तो उठ न पाएगा। मुक्त करो प्रेम को, मालकियत तजो। किसी तरह की काराएं मत खड़ी करो एक-दूसरे के ऊपर। पिंजड़े मत बनाओ। पक्षी सुंदर हैं जब वे आकाश में उड़ते हैं—और इसीलिए तो तुम मोहित हो गये थे उस आकाश में उड़ते पक्षी का सौंदर्य देखकर। फिर उस पक्षी को तुमने पिंजड़े में बंद कर लिया, और माना कि तुमने बड़ा प्रेम दिखलाया और पिंजड़ा

सोने का बनवाया, और माना कि तुमने बड़ा प्रेम दिखलाया और पिंजड़े पर तुमने हीरे-जवाहरात जड़े, मगर पिंजड़ा पिंजड़ा है, आकाश नहीं।

फिर तुम पाओगे कि यह पक्षी जो पिंजड़े में बैठ गया उदास हो गया है, तो तुम बेचैन होते हो। और तुम बड़े सोचते हो अनेक बार कि क्या हुआ, अब वैसा सौंदर्य नहीं! यह स्त्री अब वैसी सुंदर नहीं मालूम होती जैसी तब मालूम होती थी! लेकिन तब यह खुला हुआ पक्षी थी आकाश में, अब यह तुम्हारे पिंजड़े में बंद पत्नी है। तब यह स्त्री थी, अब यह पत्नी है। स्त्री में एक सौंदर्य है, पत्नी में सौंदर्य नहीं रह जाता। तब यह पुरुष था, पुरुष में एक सौंदर्य है क्योंकि स्वतंत्र था, अब यह पति है! पति में कहां सौंदर्य!

कहते हैं, कितना ही बड़ा हो पति और कितना ही महान हो पति, अपनी पत्नी के सामने बड़ा और महान नहीं होता। वहां तो सिकंदर भी दब्बू हो जाते हैं। अगर असलियत जाननी हो पति की तो पत्नी से पूछना। कोई पत्नी अपने पति को सम्मान नहीं करती। कर ही नहीं सकती। और पति कितनी ही पत्नी के सौंदर्य की प्रशंसा करे, सब थोथी है, औपचारिक है, झूठी है। उसे सौंदर्य अब दिखायी नहीं पड़ता। कभी दिखा था। अब तो यही मन में खयाल उठता है—यह स्त्री धोखा दे गयी! क्या सिर्फ सौंदर्य सजावट का था? इतने सुंदर वस्त्र पहने थे, प्रसाधन किया था, इसलिए सुंदर लगी थी? क्योंकि अब यह सुंदर नहीं लगती। किस पति को अपनी पत्नी सुंदर लगती है? कई बार तो ऐसा हो जाता है कि राह चलती कोई साधारण स्त्री भी ज्यादा सुंदर लगती है, अपनी सुंदरतम पत्नी से भी। क्यों? स्वतंत्रता है वहां। तुम्हारी पत्नी तुम्हारी मुट्ठी में है। जो तुम्हारी मुट्ठी में है, दो कौड़ी का हो गया। जो खुले आकाश में उड़ रहा है... ।एक तोता तुम्हारे पिंजड़े में बंद है और एक तोता एक आम से दूसरे आम पर जा रहा है, इन दोनों में कुछ भेद है? कुछ फर्क दिखायी पड़ता है? यह जो स्वतंत्रता है, यही भेद है।

प्रेम स्वतंत्र करता है। और जब प्रेम स्वतंत्र करता है, तो प्रेम में पंख होते हैं। और जब प्रेम स्वतंत्र करता है तो आज नहीं कल श्रद्धा में रूपांतरित होगा। और अगर प्रेम परतंत्रता बनता है, तो फिर श्रद्धा तक नहीं जा सकेगा।

तो प्रेम को स्वतंत्रता दो। जिसे तुमने चाहा है, उसे मुक्त करो, उसे मुक्ति दो। और तुम जितनी मुक्ति अपने प्रेमपात्र को दे सकोगे, उतनी ही मुक्ति तुम्हारा प्रेमपात्र भी तुम्हें दे सकेगा। तुम जितना परतंत्र अपने प्रेमपात्र को करोगे, उतने ही परतंत्र तुम भी हो जाओगे। ध्यान रखना, किसी को गुलाम बनाते वक्त हमेशा याद रखना, तुम भी गुलाम बन रहे हो। गुलामी इकतरफा नहीं होती है, दोहरी होती है। बनाओ किसी को गुलाम और तुम गुलाम के भी गुलाम बन गये। मुक्त करो किसी को, उसी मुक्ति में तुम्हारी मुक्ति भी है। तब श्रद्धा का तत्व जन्मता है।

श्रद्धा का अर्थ है—इस संसार के भीतर प्रीति का बिरवा जितना ऊंचा आ सकता था, आ गया। पौधे ने अपनी पूरी ऊंचाई पा ली। अब इससे ऊपर जाने की कोई जगह नहीं है। जब पौधा अपनी पूरी ऊंचाई पा लेता है, तो उसके भीतर जो

रस-स्रोत अब तक ऊंचाई पाने में लगे थे, वे ही रस-स्रोत अब फूल बनते हैं, फल बनते हैं। जब तक पौधा ऊंचाई पाने में लगा है, तब तक उसकी सारी ऊर्जा ऊंचाई पाने में लग जाती है। तब तक फूल और फल नहीं निर्मित हो सकते। फूल और फल निर्मित होते हैं अत्याधिक्य से, आधिक्य से। जब इतना ज्यादा है अब और उसका कोई उपयोग भी नहीं रहा है, जितना बढ़ना था बढ़ लिये, जो होना था हो लिये, अब इस ऊर्जा का कोई उपयोग नहीं, यही ऊर्जा भर-भर कर फलों में वापस पृथ्वी पर गिरने लगती है।

जब श्रद्धा आ गयी, तो प्रीति का बिरवा अपनी पूरी ऊंचाई पर आ गया। अब इसी में भक्ति के फूल, भक्ति के फल लगेंगे। तुम मंदिर फूल ले जाते हो न, वे प्रतीक हैं सिर्फ; वे असली फूल नहीं हैं, असली फूल तो भक्ति है, वह श्रद्धा के वृक्ष में लगेगा। वृक्षों से तोड़कर तुम जो फूल मंदिर में चढ़ा आते हो, वे तो प्रतीक हैं, संकेत हैं। अपने वृक्ष को बढ़ने दो और अपने फूल किसी दिन चढ़ाओ, ऐसी आशा रखो, ऐसा संकल्प जगाओ; किसी दिन मैं अपने फूल चढ़ा सकूं, उसी दिन प्रार्थना पूरी होगी।

श्रद्धा के बाद भक्ति का जन्म है। और यह सब अनिवार्यतः स्वभावतः होता है। तुम्हारे किये नहीं होता, लेकिन तुम बाधा जरूर डाल सकते हो; तुम्हारे किये एक ही काम हो सकता है इस दुनिया में, वह है बाधा। तुम बाधा जरूर डाल सकते हो, और तुम्हारी कोई जरूरत नहीं है, बाधा भर न डालो तो सब चीजें अपने से हो रही हैं। और जब तुम अपने को पाओ कि कोई बाधा डाल रहे हो, तब हट जाओ, बाधा को हटा लो।

तन-मन का मधु सब रीत चुका, अब मधु केवल मधुसूदन में
सब दिन जी भर ममता बांटी, तन्मय होकर, मन्मय होकर
प्राणों का सार लुटा डाला, अंतस के जल में धो-धोकर
भीतर इतना रस उमड़ा था, कुछ ओर न था कुछ छोर न था
लगता था भर दूं सबका घट, लगता था भर दूं सबका घर
अवशेष हुई रस की चर्चा, अब रसे केवल रस-नंदन में
मत मीत करो मधु की बातें, अब मधु केवल मधुसूदन में
इस छवि को छूकर सिक्त हुई सपनों की चंचल दाहकता
इस रूप-जयी के जादू, में जकड़ी है मेरी चेतनता
निर्बाध निरंतर जब जिसने देखा है इस लीलाधन को
कुछ और न देखा फिर उसने, कैवल्य बनी उसकी जड़ता
साकार हुआ लालित्य स्वयं, इस ज्योति रमण सम्मोहन में
गीतों में मधु अवशिष्ट कहां, अब मधु केवल मधुसूदन में
अब प्रीति उसी रसवर्षी में, जीवनधर्मी चिरनूतन में
अवशेष नहीं मधु की गाथा, अब मधु केवल मधुसूदन में

लेकिन लंबी यात्रा है। तीर्थयात्रा कहें। स्नेह से लेकर भक्ति तक। यह सब बीच के पड़ाव हैं। प्रेम और श्रद्धा, इन पड़ावों को मंजिल मत समझ लेना. कहीं

रुकना नहीं है, जब तक कि मधुसूदन तक पहुंचना न हो जाए। तन-मन का मधु सब रीत चुका, अब मधु केवल मधुसूदन में। लुटा दो सब—स्नेह में, प्रेम में, श्रद्धा में। बांट दो सब, बचाना मत। बचाया तो सड़ जाएगा, बांटा तो बच जाएगा। उलीच दो, दोनों हाथों से उलीच दो।

अगर तुमने स्नेह पूरा उलीचा, तुम पाओगे प्रेम पका। तुमने अगर प्रेम पूरा उलीचा, तुम पाओगे श्रद्धा पकी। तुमने अगर श्रद्धा पूरी उलीची तो तुम पाओगे भक्ति पक गयी। जिसने स्नेह में कंजूसी की, वह स्नेह पर अटक गया। जिसने प्रेम में कंजूसी की, वह प्रेम पर अटक गया। जहां कंजूसी की, वहीं अटके। कंजूसी भर मत करना, मैं इसे ही संन्यास कहता हूं, कंजूसी भर मत करना, कृपणता भर मत करना। जैसा प्रभु ने तुम्हें दिया है, बेशर्त, वैसा ही तुम दे डालो। जो तुम्हें मिला है, उसे बांट दो। यहां से कुछ ले जाने का भाव न हो, यहां सब दे जाने का भाव हो। फिर तुम्हें कोई भी रोक न सकेगा, आज नहीं कल तुम उसी घड़ी में आ जाओगे जहां कह सकोगे—

अब प्रीति उसी रस बर्षी में, जीवनधर्मी चिरनूतन में
अवशेष नहीं मधु की गाथा, अब मधु केवल मधुसूदन में

एक दिन परमात्मा में ही एकमात्र रस रह जाता है। क्योंकि सब रसों में उसी की झलक मिलती है। स्नेह में भी उसीको देखा था, सात पर्दों के पार से। प्रेम में भी उसीको देखा था, पर्दे कुछ और कम हो गये थे। श्रद्धा में भी उसे देखा था; एक ही पर्दा रह गया था। इसीलिए तो गुरु भगवान जैसा कहा शास्त्रों ने, गुरुर्ब्रह्मा। क्यों कहा? इसीलिए कहा कि श्रद्धा और भक्ति में एक ही पर्दा है। गुरु और ब्रह्मा में एक ही कदम का फासला है। झीना सा पर्दा है। इसलिए गुरु में थोड़ी-थोड़ी भगवान की झलक मिलने लगती है। पारदर्शी पर्दा है। जैसे स्वच्छ कांच हो।

लेकिन अशेष भाव से लुटा डालना प्रक्रिया है। इसे यज्ञ कहो, तप कहो, भक्ति कहो, नाम के भेद हैं। सब समर्पित कर देना, इतना सूत्र आ जाए तो तुम्हें कहीं कोई रुकावट न पड़ेगी। जहां तुम कृपण होते हो, वहीं रुक जाते हो। अकृपणता में प्रवाह है। और प्रवाह एक दिन निश्चित मधुसूदन तक पहुंच जाता है।

दूसरा प्रश्न: जो वर्णनातीत है, उसे कहकर क्यों कोई शांडिल्य मनुष्यता के सामने एक पत्थर धर देता है?

शांडिल्य ने न कहा हो कि वर्णनातित है, तो तुम्हें यह भी पता न चलेगा कि वर्णनातीत है। शांडिल्य ने न कहा हो कि शब्दों में नहीं कहा जा सकता, तो तुम्हें यह भी पता नहीं चलेगा कि शब्दों में नहीं कहा जा सकता।

शब्दों में नहीं कहा जा सकता, यह सच है, लेकिन इशारे किये जा सकते हैं। शब्द में सत्य नहीं है। लेकिन शब्द में इशारे हैं। इशारे पकड़ो। अगर शब्द पकड़े तो पत्थर रास्ते में पड़ जाएंगे। फिर तुम हिंदू हो जाओगे, मुसलमान हो जाओगे, ईसाई हो जाओगे, जैन हो जाओगे, फिर तुम्हारे रास्ते में बहुत पत्थर आ गये। अगर शब्द न

पकड़े, इशारा पकड़ा...भेद बड़ा है, *मील के पत्थर लगे हैं न रास्ते पर, मील के* पत्थरों को पकड़कर तुम बैठ नहीं जाते। कोई मील का पत्थर पकड़कर बैठने के लिए नहीं है, उस पर तीर लगा है कि आगे चलो।

झेन फकीर रिंझाई से किसीने पूछा—इस जगत में सबसे महत्वपूर्ण बात सीखने योग्य क्या है? रिंझाई ने कहा—वॉक ऑन, आगे बढ़ो। वह थोड़ा चौंका—आगे बढ़ो। यह आदमी मुझ पर नाराज है, मुझसे आगे बढ़ो यह कह रहा है, या कि इसने कहा संसार में सीखने योग्य एक ही बात है—आगे बढ़ो! उसको थोड़ा चिंतामग्न देखकर रिंझाई ने कहा कि देखो, तुमने यह भी पकड़ लिया। तुम इससे भी आगे न बढ़ सके।

संसार में कुछ पकड़ो मत, बढ़ते जाओ। एक दिन वह जगह आ जाती है जिसको परमात्मा कहें। यह संसार यात्रापथ है। इस पर बहुत मील के पत्थर हैं। लेकिन लोगों ने मील के पत्थर पकड़ लिये हैं। जब पहली दफा अंग्रेजों ने भारत में मील के पत्थर लगाए तो बड़ी अड़चन हुई। क्योंकि गांव-देहात के लोग लाल रंगा हुआ पत्थर देखकर समझें—हनुमान जी! फूल चढ़ाकर, टीका लगाकर उन्होंने पूजा शुरू कर दी। वह जो तीर-मीर बना जाएं, लिख जाएं इतने मील दूरी, फलां-ढिकां, वह सब बेकार कर दी उन्होंने, वे उस पर और सिंदूर वगैरह पोतकर हनुमान जी बना दें। कहते हैं कई वर्षों तक अंग्रेजों को यह झंझट करनी पड़ी कि भई यह मील का पत्थर है, हनुमान जी नहीं हैं! पूजा की ऐसी अंधी वृत्ति!

शांडिल्य ने कुछ कहा है, उसे पकड़ोगे तो पत्थर हो जाएगा; उसे समझोगे तो मुक्ति। तुम पर निर्भर है, शांडिल्य ने तुम्हारे रास्ते में पत्थर नहीं रखे हैं। अगर रखे भी हों तो पत्थर इसलिए रखे हैं कि तुम सीढ़ियां बना लो। और जब तुम सीढ़ी बना लेते हो किसी पत्थर को तो वह पत्थर नहीं रह जाता, उस पत्थर के कारण तुम ऊंचे उठ जाते हो। तुम्हारी दृष्टि व्यापक हो जाती है।

शास्त्रों पर चढ़ो, शास्त्रों को सिर पर मत ढोओ। शास्त्रों को सीढ़ियां बनाओ, ताकि तुम ऊंचे उठ सको, ताकि तुम्हारी दृष्टि बड़ी हो जाए, ताकि विराट तुम्हें दिखायी पड़ सके। शास्त्रों का उपयोग करो, पूजा नहीं। पूजा की तो पत्थर हो गये। लोग पत्थर की पूजा थोड़े ही करते हैं, मैं तुमसे कहता हूं—तुम जिसकी पूजा करोगे वही पत्थर हो जाता है। पूजा करने में ही पत्थर हो जाता है। पूजा करने के क्षण में ही तुमने सब नष्ट कर दिया।

शांडिल्य ने जो कहा है, उसे समझ लो और भूल जाओ। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, आप कहते हैं जब कुछ तो समझ में आता है, लेकिन फिर हम भूल जाते हैं। तो मैंने उनसे कहा कि फिर याद रखने की जरूरत ही नहीं; समझ में आ गया, बात खतम हो गयी। याद रखने की जरूरत क्या है? कंजूस मन, कृपण मन, वह हर चीज को याद रख लेना चाहता है। समझने की उतनी चिंता नहीं है, जितनी याद रखने की चिंता है। समझ गये, आत्मसात हो गया, तुम्हारे खून में मिल गया, तुम्हारी मज्जा में सम्मिलित हो गया। तुम्हारा हिस्सा हो गया, जब जरूरत पड़ेगी, काम

आएगा। कल जब कोई गाली देगा, तब उसी तरह क्रोध पैदा न होगा जैसे पहले हुआ था—यह काम आया। कल दुख आएगा और फिर भी तुम अनुद्विग्न रह सकोगे—यह काम आया। मैंने जो कहा उसको शब्दशः याद रख लिया, कोई परीक्षा थोड़े ही देनी है। कोई विश्वविद्यालय की परीक्षा में थोड़े ही बैठना है कि वहां जाकर वमन कर दिया, जो-जो शब्द कंठस्थ कर लिये थे उनकी उल्टी कर दी, फैला दिया कागजों पर, सर्टिफिकेट ले लिया।

विश्वविद्यालय में जो परीक्षा है, वह वमन है। सिर्फ उल्टी है। इसलिए विश्वविद्यालय से कोई समझदार होकर थोड़े ही लौटता है—लोग समझदार जाते हैं और नासमझ होकर लौट आते हैं। जब गये थे तब थोड़ी बहुत बुद्धि भी थी, जब आते हैं तो बिलकुल बुद्धू होते हैं। बहुत मुश्किल से कोई आदमी विश्वविद्यालय से अपनी बुद्धि बचाकर लौट पाता है।

यह कोई विश्वविद्यालय थोड़े ही है? यहां कोई शिक्षा थोड़े ही दी जा रही है? बोध दिया जा रहा है, ज्ञान नहीं। सुरति दी जा रही है, स्मृति नहीं। संकेत दिये जा रहे हैं, अॅलॉर्म बजाया जा रहा है कि जागो। समझो फर्क को।

तुम सुबह-सुबह पड़े हो—सर्दी की प्यारी सुबह, कंबल में दुबके हो—अॅलॉर्म बज रहा है, अब तुम गिनती कर रहे कितनी घंटी बज रही है—एक, दो, तीन, चार, पांच, छह, सात, आठ, नौ, दस; सब घंटियां गिन लीं, याद रख लिया कि पचास घंटी बजी थीं और करवट ली और सो गये। यह याद तो रख लिया, लेकिन इशारा खो गया। वे घंटियां इसलिए नहीं बज रही थीं कि गिनो। वे घंटियां इसलिए बज रही थीं कि जगो।

मैं जो तुमसे कह रहा हूं, वह तुमने अगर शब्दशः याद रख लिया, नोट ले लिया मस्तिष्क में, और कोई पूछे तुमसे तो तुमने सब उत्तर दे डाले, वह किसी काम का नहीं आया। जागो। तुम्हारी जीवन-प्रक्रिया में प्रवेश हो जाएगा। तुम पाओगे कि तुम और ढंग से संवेदना करने लगे। अब कोई गाली देता है, तो वैसी चोट नहीं लगती जैसे पहले लगती थी—यह बात समझ में आयी। अब तुम स्नेह करते हो, मेरे का भाव क्षीण हो रहा है; यह बात समझ में आयी। तुम्हें याद भी रहा कि नहीं कि मैंने कहा था कि मेरा-भाव क्षीण हो जाना चाहिए, वह बात कोई मूल्य की नहीं है। लेकिन मेरा-भाव क्षीण होने लगा। समझ तत्क्षण रूपांतरण करती है। स्मृति रूपांतरण नहीं करती। स्मृति तो रिकार्ड है, क्या सुना, तुम दोहरा सकते हो। समझ जीवन है, क्या सुना तुम जीने लगते हो।

मैंने अंगुली बतायी चांद की तरफ, तुमने अंगुली याद रखी, अंगुली के फोटो ले लिये सब तरफ से और चित्र बना लिये और उनकी पूजा शुरू कर दी और चांद की तरफ तुम्हारी आंख भी न उठी, यह स्मृति। और मैंने अंगुली उठायी और तुमने मेरी अंगुली का इशारा देखा और चांद देखा—और अंगुली को तो भूल ही गये; चांद देखोगे तो अंगुली को कैसे देखोगे, दोनों एक साथ तो देख नहीं सकते; चांद देखा तो अंगुली की क्या जरूरत रही, बात समाप्त हो गयी, अंगुली ने काम कर दिया। अब

अगर कल तुमसे कोई पूछे कि अंगुली गोरी थी कि काली थी, कि बूढ़ी थी कि जवान थी, तुम कहोगे—कुछ याद नहीं। चांद देखा था, चांद प्यारा था। चांद अदभुत था! खूब चांदनी में नहा लिये, चांदनी ही चांदनी भर गयी प्राणों में, रोआं-रोआं आनंदित हुआ था, नाचे थे; अंगुली की तो याद नहीं! अंगुली की याद तो कोई मूढ़ रखेगा; ज्ञानी चांद को देखता है।

अब तुम कहते हो—जो वर्णनातीत है, उसे कहकर क्यों कोई शांडिल्य मनुष्यता के सामने एक पत्थर धर देता है? शांडिल्य ने तो सीढ़ियां बनायीं, इशारे किये, तुम पकड़ लो जोर से तो पत्थर हो जाएंगे। तुम वहीं रुक जाओ तो पत्थर हो गये—ध्यान रखना, लेकिन दोष तुम्हारा है, शांडिल्य का नहीं।

मगर प्रश्न में एक और बात भी छिपी है—कि जब कहा नहीं जा सकता तो कहा क्यों? इसीलिए कहा कि तुम्हें यह याद रहे कि ऐसा भी जीवन में कुछ है जो जाना जा सकता है और कहा नहीं जा सकता। इसीलिए कहा कि तुम्हें भूल न जाए कि कहे हुए पर ही सब समाप्त नहीं है, अनकहे की खोज जारी रखना। जो शब्दों में बंध जाता है, उसे ही जीवन की इति मत समझ लेना। जो शब्दों में बंध जाता है, उसमें तो याद रखना—नेति-नेति, यह भी नहीं, यह भी नहीं। यह तो शब्द में बंध गया, तो यह नहीं हो सकता। यह भी शब्द में बंध गया, तो यह भी नहीं हो सकता। स्मरण रहे तुम्हें, तुम्हारे भीतर एक खोज जारी रहे, अन्वेषण बना रहे, एक जिज्ञासा जगती रहे, एक दीया जलता रहे कि एक दिन उसे जानना है जो शब्दों में नहीं बंधता। वही सत्य है।

और जब तुम जानोगे, तब तुम भी कहोगे—कहना ही पड़ेगा। और कह न सकोगे, तुतलाओगे; सभी ज्ञानी तुतलाए हैं—जितना बड़ा ज्ञानी, उतना ही ज्यादा तुतलाता है। अज्ञानी को तुतलाने की जरूरत नहीं, वह जो जानता है सब कहा जा सकता है, सिर्फ ज्ञानी अड़चन में पड़ता है। उसने ऐसा कुछ जाना है, जिसे भाषा में नहीं लाया जा सकता। इतना बड़ा है कि शब्दों में समाता नहीं, शब्द बड़े छोटे संकरे हैं। इतना विराट है कि शब्द में कहो तो अन्याय हो जाता है। और इतना विरोधाभासी है कि जब भी शब्द में कहो तो आधा ही आता है। और आधा यानी अन्याय।

समझो—

किसी ने कहा—ईश्वर प्रकाश है। यह आधी बात है। और किसी ने कहा—ईश्वर अंधकार है। यह भी आधी बात है। ईश्वर दोनों है। जिसने जाना, उसने ईश्वर के दोनों अंग जाने, दोनों पहलू जाने। मगर अब भाषा में कहो तो यही उपाय हैं, या तो कहो प्रकाश है, तो तुमने आधे ईश्वर को इनकार कर दिया, अन्याय हुआ। या कहो कि अंधकार है, तब भी आधे को इनकार कर दिया, अन्याय हुआ। या कहो कि प्रकाश-अंधकार दोनों है, तब तुमने तर्कहीन बात कही, क्योंकि तुमने द्वंद्व एक साथ उपस्थित कर दिया, विरोधी बात कही। तो कोई भी पूछेगा कि प्रकाश और अंधकार, दोनों कैसे हो सकता है? फिर तुम तर्क की झंझट में पड़ोगे। कोई कहेगा—तो फिर ऐसा करें, इस कमरे में आप प्रकाश और अंधकार, दोनों एक साथ करके दिखला दें। यह तो हो ही नहीं सकता। या तो प्रकाश होगा, या अंधकार होगा। अब तुम कैसे

सिद्ध करोगे कि प्रकाश और अंधकार दोनों है।

या चौथा रास्ता है कि तुम कहो—न प्रकाश है, न अंधकार। तो पूछने वाला पूछेगा—फिर क्या है? क्योंकि दो में से कोई एक होना ही चाहिए। दो का ही हमारा अनुभव है, दो में से एक होना ही चाहिए। अगर दोनों में से नहीं है, तो 'फिर कहने की कोशिश क्या कर रहे हो? न प्रेम है न घृणा है, न पदार्थ है न चेतना है, न प्रकाश है न अंधकार है, न जीवन है न मृत्यु है, तो फिर है क्या? फिर पहेलियां क्यों बूझा रहे हो? क्या ऐसी भी कोई चीज हो सकती है जो जीवन भी न हो और मृत्यु भी न हो या तो जीवन होगी, या मृत्यु होगी। जो कुछ भी कहो, यह चार हर उपाय हैं कहने के, यह चतुर्भंगिया हैं, यह चार ढंग है कहने के—पर जिस ढंग से भी कहो, वही ढंग गलत हो जाता है। और बेचैनी मालूम होती है। न कहो, चुप रह जाओ, तो मनुष्यता के साथ तुमने बड़ी कठोरता की, करुणा नहीं दिखायी

बुद्ध चुप हो गये थे; जब उन्हें ज्ञान हुआ, सात दिन चुप रह गये। देवता विह्वल हो गये। देवता आए और उन्होंने कहा, आप बोलें। क्योंकि सदियों में कोई बुद्धित्व को उपलब्ध होता है, सदियों में कोई भगवत्ता पाता है, और करोड़ो-करोड़ों लोग जो अंधेरे में राह टटोल रहे हैं, आपके थोड़े से शब्द भी उनके लिए दिशासूचक होंगे। उपर पर करुणा करें।

अब फर्क झमझना। अगर बुद्ध सत्य की तरफ देखते हैं तो लगता है, जो भी कहूंगा वह अधूरा होगा, गलत होगा, अन्यायपूर्ण होगा। अगर मनुष्यता की तरफ देखते हैं, पीछे चले आनेवाले लोगों की तरफ देखते हैं, जिनके बीच वह भी जीए हैं, तो लगता है इनके साथ कठोरता होगी अगर कुछ न कहूं। ये प्रतीक्षातुर हैं, ये राह देख रहे हैं कि कुछ कहो। अब तुम पहुंच गये मंजिल पर, हम अंधे हैं, हमें पुकारों, हमें जगाओ। हम भटके रहे हैं, हम खोज रहे हैं और तुम पहुंच गये, अपना बोध थोड़ा ही सही, हम तक पहुंचाओ। एक धागा भी हमारे हाथ में आ जाएगा तो हम उसीके सहारे सरकते-सरकते मंजिल को पा लेंगे। एक किरण भी हमें मिल जाएगी। तो हम सूरज को खोज लेंगे। मगर किरण तो कम से कम दे दो। सूरज नहीं दिया जा सकता, छोड़ो सूरज हम मांगते भी नहीं, सूरज के पाने की हमारी पात्रता भी नहीं। लेकिन एक किरण ही हम पर बरसाओ। सागर न सही, एक बूंद हमारे कंठ में आ जाने दो, स्वाद तो लग जाएगा। भरोसा तो आ जाएगा कि पानी होता है, कि अगर खोज जारी रखी तो मिलेगा। अगर बूंद मिल सकती है तो सागर भी मिल सकेगा। बूंद है तो सागर भी होता होगा। बूंद से आस्था आएगी, श्रद्धा आएगी। खोज में त्वरा आएगी; खोज में प्राण आ जाएंगे, बल आ जाएगा, आत्मविश्वास जगेगा। हम यूं ही नहीं भटक रहे हैं। हम किसी व्यर्थ सपने के पीछे नहीं पड़े हैं। लोग पहुंचते हैं, मंजिल है, देर-अबेर हम भी पहुंच जाएगे। पैर जो थकने लगे थे, पैर जो डगमगाने लगे थे, पैर जो सोचने लगे थे अब रुक जाएं फिर गतिमान हो जाएगे। फिर चैतन्य का प्रवाह जगेगा।

तो देवताओं ने बुद्ध से कहा, आप कहते हैं ठीक कि सत्य कहा नहीं जा सकता लेकिन आप सत्य की तरफ ही देख रहे हैं, जो अंधेरे में भटक रहे हैं इनकी

तरफ नहीं देख रहे। उनकी तरफ भी देखें, और हो जाने दें सत्य के साथ थोड़ा अन्याय—सत्य को इससे कोई पीड़ा नहीं होगी—हो जाने दें परमात्मा के साथ थोड़ा अन्याय—इससे परमात्मा को कोई हानि नहीं हो जाएगी—यह अन्याय करने जैसा है। और अगर परमात्मा और इन भटकते हुए लोगों के बीच चुनाव करना है, इनके साथ अन्याय न हो, इन भटकते लोगों के साथ अन्याय न हो, इसलिए शांडिल्य बोलते हैं। इसलिए बुद्ध को बोलना पड़ा।

यह उनकी महाकरुणा है। तुम्हारे मार्ग में पत्थर नहीं रखे हैं, तुम्हारे मार्ग में जो पत्थर पड़े हैं, उनको कैसे तुम सीढ़ियां बना लो इसके सूत्र दिये हैं। और कम से कम शांडिल्य के साथ तो तुम इस तरह की बात कहकर अन्याय मत करो। क्योंकि शांडिल्य तो तुम से नहीं कह रहे हैं कि स्नेह छोड़ दो? कह रहे हैं स्नेह को शुद्ध कर लो, पत्थर है सीढ़ी बन जाएगा। शांडिल्य तो नहीं कह रहे हैं कि प्रेम छोड़ दो? शांडिल्य कह रहे हैं प्रेम सीढ़ी बन सकता है, शुद्ध कर लो श्रद्धा बन जाएगा, ऊपर चढ़ जाओगे। शांडिल्य तो नहीं कह रहे हैं संसार छोड़ दो? शांडिल्य तो कह रहे हैं द्वेष करो ही मत संसार से, अन्यथा वही बाधा हो जाएगी। शांडिल्य तो विराग का, वैराग्य का, तप का, तपश्चर्या का कोई उपदेश नहीं दे रहे हैं? शांडिल्य तो द्वार खोल रहे हैं प्रेम के मंदिर के, और तुम कहते हो मार्ग में पत्थर...!

नहीं, तुम्हारी अड़चन मैं समझता हूं, कुछ और है, शायद तुम्हें भी साफ नहीं। शांडिल्य के सूत्र तुम्हें बेचैन करते हैं। बेचैन करते इस कारण, क्योंकि उनके कारण तुम्हें याद आनी शुरू होती है कि तुम जो कर रहे हो, वह सब दो कौड़ी का है। असली करने योग्य बात तुमने अभी की नहीं। खोजने योग्य चीज खोजी नहीं। तुम्हारे भीतर नाराजगी पैदा होती है। इसलिए तो जीसस को लोगों ने सूली चढ़ा दिया, सुकरात को जहर दिया। जिन्होंने जाना है, उनके साथ हमने हमेशा बड़ी कठोरता बरती, क्यों? उनकी मौजूदगी हमें अड़चन देती है। उनकी मौजूदगी हमें पीड़ा देती है। जब क्राइस्ट तुम्हारे पास से गुजरते हैं तो तुमको लगता है—मेरा जीवन बेकार गया। इस आदमी ने पा लिया, मैं क्या कर रहा हूं? मैं दुकान पर ही बैठा हुआ हूं? यह चांदी के ठीकरे इकट्ठे कर रहा हूं? इन्हीं को जोड़ते-जोड़ते मर जाऊंगा? ऐसे ही मर जाऊंगा, बिना एक किरण पाए परमात्मा की, बिना एक दीया जलाए समाधि का—और इस आदमी के भीतर ज्योति ही ज्योति! यह बरदाश्त नहीं होता। या तो अपने को बदलो, या इसको खतम करो, इसको हटाओ; यह न रहे तो बेचैनी मिट जाती है। इसलिए जीसस को सूली लगायी। उससे बेचैनी मिटती है। तुम्हें भरोसा आ जाता है।

तुमने कभी देखा, अखबार पढ़ते तुम्हें कितना सुख मिलता है। वह सुख क्या है? वह वही सुख है, उसका ही दूसरा पहलू। क्राइस्ट को, बुद्ध को, शांडिल्य को देखकर तुम्हें दुख मिलता है—मिलना तो नहीं चाहिए, मगर मिलता है—अखबार, पढ़कर सुख मिलता है। सुबह से तुम अखबार न पढ़ लो तो बेचैनी बनी रहती है, क्यों? कितनी जगह डाका पड़ा, कितनी जगह हत्या हुई, कितनी जगह चोरियां हुई, सब पढ़-पढ़ा कर तुम्हारे मन में एक भाव उठता है—इससे तो हमीं भले। तो हम कोई खास

बुरे नहीं हैं! अखबार तुम्हें बड़ा आश्वासन देता है। अखबार कहता है कि तुम्हीं भले। तुम्हारी चिंता मिट जाती है। भीतर तुम्हारे जो अंतःकरण में कचोट होती है वह मिट जाती है। तुमने कल जरा चोरी की थी—कौन नहीं कर रहा? तुमने कल किसी से झूठ बोला था—कौन नहीं बोल रहा? तुमने कुल किसी की जेब काटी थी—कौन नहीं काट रहा? तुमने जरा सी बेईमानी की थी—कौन नहीं कर रहा? तुमने रिश्वत खिलायी थी, तुमने किसी की खुशामद की थी, यह सब तुम्हारे ऊपर भारी है, अखबार पढ़कर सब निर्भार हो जाता है। तुम कहते हो—हम कोई खास नहीं कर रहे हैं। यहां भारी उपद्रव चल रहे हैं। छोटे से लेकर बड़े तक, चपरासी से लेकर राष्ट्रपति तक सब बेईमान हैं—चित्त का भार उतर जाता है, छाती से पत्थर हट जाता है।

सुबह का अखबार बड़ी जरूरत है। पढ़ लिया, दिनभर के लिए निश्चिंत हो गये। करो चोरी खूब, करो बेईमानी खूब, अंतःकरण में चोट नहीं लगती। सारी दुनिया कर रही, कोई तुम्हीं थोड़े ही कर रहे हो। आदमी मात्र कर रहा है, करना ही पड़ता है, यहां बिना किये चल ही नहीं सकता, करना ही एकमात्र उपाय है।

लेकिन बुद्ध जब पास से गुजरते हैं, या शांडिल्य की बात कानों में पड़ती है, तब बेचैनी होती है। तब यह लगता है, तो हम जो कर रहे हैं, वह करने योग्य नहीं है। करने योग्य कुछ और है, जो हम चूके जा रहे हैं। शांडिल्य ने कर लिया। इस आदमी पर नाराजगी आती है कि हम चूक गये और तुमने कर लिया! यह नहीं होने देंगे! मानेंगे ही नहीं हम। इसीलिए तो दुनिया में इतने लोग अश्रद्धा करते हैं, वे कहते हैं यह कुछ बातें होतीं नहीं, बातें ही बातें हैं। यह समाधि, यह भक्ति, यह भाव, यह सब बातें ही बातें हैं। ये होती नहीं।

तुमने देखा, फ्रायड का दुनिया में इतना प्रभाव पड़ा। इस सदी में जिस आदमी का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है दुनिया पर, वह सिग्मंड फ्रायड है। क्यों पड़ा उस आदमी का इतना प्रभाव? क्योंकि उसने आदमी की निम्नतम बातों को स्वीकृति दी, श्रेष्ठतम बातों को अस्वीकार कर दिया। उसने कह दिया, न कोई परमात्मा है, न कोई आत्मा है, न कोई समाधि है, यह सब बकवास है। असली बात तो कामवासना है। करोड़ों लोगों ने राहत की सांस ली। थक गये थे सुनते-सुनते समाधि, निश्चिंत होकर अपने बिस्तरों पर लेट गये और उन्होंने कहा—सब बकवास है। हम जो कर रहे हैं, वही ठीक है। नाहक भटकाया बुद्धों ने, नाहक उलझाया। चैन ही नहीं लेने देते। धन कमाओ तो बीच में खड़े हो जाते हैं, स्त्री के पीछे दौड़ो तो बीच में खड़े हो जाते हैं, पद की यात्रा करो तो बीच में खड़े हो जाते हैं, जीना दुश्वार कर दिया बुद्धों ने। फ्रायड आया त्राता कि तरह—तरण-तारण! उसने एकदम मन हलका कर दिया, उसने कहा यही आदमी कर रहा है, सदा से कर रहा है। और जो नहीं कर रहा है वह या तो पागल है, या धोखेबाज है, या खुद धोखे में है। भारी बोझ उतर आया। पत्थर, जो तुम कह रहे हो न शांडिल्य ने पत्थर रख दिये, वे फ्रायड ने हटा दिये। फ्रायड ने कहा—करो खूब जो तुम कर रहे हो। फ्रायड—त्राता, मसीहा!

लेकिन उसका परिणाम देखते हो क्या हुआ? आदमी इतना नीचा कभी नहीं

गिरा था जितना फ्रायड के बाद गिरा। ऊंचे उठने की बात ही झूठी हो गयी। जब ऊंचे उठने की बात ही झूठी हो गयी, कोई क्यों प्रयास करे? जब एवरेस्ट है ही नहीं, तो कोई क्यों पहाड़ चढ़े? हो, तो चुनौती है। जब है ही नहीं, चुनौती समाप्त हो गयी। जब हीरे की खदानें होती ही नहीं, तो कोई क्यों गड्ढे खोदता फिरे? तो अपना-अपना कूड़ा-कर्कट जो भी है, वही सम्हालो। हीरे की खदानें तो होती नहीं। और हीरे की खदानें ही खदानें हैं।

फ्रायड के बाद मनुष्य जाति के चैतन्य में एक अपूर्व पतन आया। ऐसा कभी नहीं हुआ था। दो आदमियों के ऊपर मनुष्य जाति का पतन लाने का जुम्मा है—फ्रायड और मार्क्स। एक ने कहा—कामवासना सब है, दूसरे ने कहा—अर्थ-वासना, धन-वासना सब है। दोनों ने तुम्हें मुक्त कर दिया। दोनों ने तुम्हें शांडिल्य और नारद बुद्ध और महावीर और कृष्ण से मुक्त कर दिया। दोनों ने तुम्हें धर्म से मुक्त कर दिया। दोनों ने कहा—बस, दो चीजें करने योग्य हैं—काम की तृप्ति करो और धन, बस यह दो चीजें मूल्यवान हैं; इनके अतिरिक्त न कोई लक्ष्य है, न कोई सत्य है। स्वभावतः आदमी पागल होकर दोनों के पीछे पड़ गया। वैसे ही आदमी डूबा था गर्त में, अब कोई उपाय ही न रहा मुक्ति का।

शांडिल्य की बातों से इसलिए तुम्हें लगेगा कि क्यों यह पत्थर, क्यों अड़चन पैदा करते हो? क्यों चुनौती देते हो? कहां है पहाड़? क्यों व्यर्थ हमें पहाड़ों पर चढ़ाने के लिए बुलाते हो? हमें गड्ढों में उतरने में रस है। गड्ढे में उतरने में एक सुविधा है—कुछ करना नहीं पड़ता। उतार में कुछ करना ही नहीं पड़ता। पहाड़ से उतरे हो कभी? कुछ श्रम नहीं करना पड़ता, उतरते जाओ, भागे चले जाओ, लुढ़को तो भी लुढ़क सकते हो। चढ़ने में अड़चन है, चढ़ाव में अड़चन है।

तुमने जो पत्थर शब्द प्रयोग किया, वह यही बता रहा है कि शांडिल्य को समझो तो चढ़ाव दिखायी पड़ने लगता है। शिखर समाने खड़े हो जाते हैं। फिर उनको न चढ़ो, तो बेचैनी होती है और चढ़ो तो कठिनाई। उलझन खड़ी कर दी।

मगर मैं तुमसे कहता हूं: महाकरुणा है शांडिल्य जैसे व्यक्तियों की। तो ही तुम्हारे लिए थोड़ी आशा है। कभी शायद तुम्हारे कान में कोई बात पड़ जाए, कोई बीज तुम्हारे हृदय में उतर जाए और तुम उसकी खोज पर निकल पड़ो। जिसे बुद्धि से पाया नहीं जा सकता, शब्दों में बांधा नहीं जा सकता; जो अनिर्वचनीय है, अव्याख्य है, वर्णन के अतीत है। उसकी खोज ही जीवन है।

तीसरा प्रश्नः क्या परमात्मा का अनुभव भी प्रत्येक का अलग-अलग होता है?

अनुभव तो अलग-अलग नहीं होता, अभिव्यक्ति अलग-अलग होती है।

अनुभव तो अलग-अलग हो ही नहीं सकता! क्योंकि परमात्मा एक है, दो नहीं, तीन नहीं। फिर, जब कोई व्यक्ति परमात्मा के अनुभव की घड़ी में आता है, तो व्यक्तित्व के जितने भेद हैं, सब विलीन हो जाते हैं, जिनके कारण भेद पड़ सकता

था। समझो कि तुम सब ने अलग-अलग रंग के चश्मे लगा रखे हैं, इस बगीचे में तुम आओ, तो तुम्हें अलग-अलग रंग के फूल दिखायी पड़ें, तुम्हारे चश्मों के कारण। मन यानी चश्मा, मन यानी विचार, मन यानी पर्दे। परमात्मा का अनुभव तो तभी होता है जब मन समाप्त हो गया। सब चश्मे उतर गये, सब मंतव्य हट गये, सब शास्त्र विदा हो गये, सब शब्द तिरोहित हो गये, शून्य रह गया। शून्य दो तरह के नहीं होते। मन तो अलग-अलग तरह के होते हैं, मन तो तरह-तरह के होते हैं। दो मन एक जैसे नहीं होते।

तुमने रंग की बात की
मन को बांधते हैं रंग
और रूप भी
मगर ध्वनियां
ज्यादा पकड़ती हैं मुझको
जैसे लहरों पर टूटती हुई ध्वनि
तट की
या हवा से पैदा हुई ध्वनि
अकेले एक पीपल के
वट की
या बांस की
या उस दिन की
मेरी-तुम्हारी तेज सांस की
तुमने रंग की बात की
मन को बांधते हैं रंग
और रूप
मगर ज्यादा पकड़ती हैं
ध्वनियां मुझको

भिन्न-भिन्न लोग हैं। किसी को ध्वनि पकड़ती है, किसी को रूप पकड़ता है, किसी को रंग पकड़ता है। जिसको ध्वनि पकड़ती है, वह संगीतज्ञ हो जाएगा। उसके पास कान अनूठे होते हैं। उसके पास कान ही होते हैं। उसके पास आंखें वैसी नहीं होतीं...। इसलिए तुमने देखा, अंधे आदमी संगीत में प्रवीण हो जाते हैं। अंधे आदमी की ध्वनि पर पकड़ गहरी हो जाती है। क्योंकि जो ऊर्जा आंख से बहती थी, वह आंख से नहीं बहती, उसको भी कान से बहना पड़ता है। कान बलशाली हो जाते हैं। अंधा आदमी जैसा सुनता है, तुमने कभी नहीं सुना। और बहरा आदमी जैसा देखता है, वैसा तुमने कभी नहीं देखा। बहरा आदमी तुम्हारे ओंठ के कंपन को भी देखता है। तुम्हारे आंख के इशारे को भी देखता है। तुम्हारी भाव-भंगिमा को देखता है। क्योंकि वही उसको पकड़ में आता है, और तो उसकी पकड़ में कुछ आ नहीं सकता। उसके सारे कान आंख में उंडल जाते हैं।

किसी को ध्वनि प्यारी लगती है तो संगीतज्ञ हो जाता है। अगर संगीतज्ञ परमात्मा को जानेगा, संगीतज्ञ की तरह, तो परमात्मा का अनुभव नाद का होगा—ओंकार। चित्रकार रूप का प्रेमी होता, उसे रंग दिखायी पड़ते हैं। उसे रंग में बड़ी गहराइयां दिखायी पड़ती हैं, जो तुम्हें नहीं दिखायी पड़तीं। अगर चित्रकार की तरह कोई परमात्मा तक पहुंचेगा, तो परमात्मा की मन मोहनी सूरत पकड़ में आएगी। उसका प्यारा लावण्य पकड़ में आएगा। लेकिन वहां तक पहुंचते-पहुंचते न तो तुम चित्रकार रह जाते हो, न तुम संगीतज्ञ रह जाते हो, न कवि रह जाते हो, न दुकानदार रह जाते हो, क्योंकि यह सब तो मन की ही भावदशाएं हैं। वहां पहुंचते-पहुंचते तो एक चीज बचती है, तुम शून्य हो जाते हो। शून्य जो हो जाता है, वही वहां पहुंचता है। तो शून्य में कैसा भेद?

परमात्मा एक है, उसमें तो कोई भेद है नहीं। और जो पहुंचा है, वह शून्य होकर पहुंचा है। शून्य में और पूर्ण में जब मेल होता है, मिलन होता है—वही तो परमात्मा का मिलन है, वही तो परमात्म-साक्षात्कार है; तुम शून्य हो गये और वह पूर्ण है, पूर्ण शून्य में उतरा। अनुभव अलग-अलग नहीं हो सकते। सच तो यह है, यह कहना कि अनुभव होता है परमात्मा का, ठीक नहीं है। क्योंकि अनुभव होने के लिए तो अनुभोक्ता चाहिए। अनुभव होने के लिए तो मन चाहिए। अनुभव करने वाला ही नहीं बचता, तब अनुभव होता है, तो इसको अनुभव कैसे कहोगे? इसलिए हमारे पास दो शब्द हैं—अनुभव और अनुभूति। दूसरा शब्द इसीलिए बनाया। दुनिया की किसी भाषा में अनुभव के लिए दो शब्द नहीं हैं। जैसे अंग्रेजी में एक्सपीरियंस एक शब्द है। काम एक से हो जाता है, अब दूसरे शब्द की क्या जरूरत है? कृष्णमूर्ति चूंकि अंग्रेजी में ही बोलते हैं, उन्हें एक शब्द गढ़ना पड़ा है—अनुभूति के लिए—वह उसको कहते हैं—एक्सपीरियंसिंग। वह भाषा के लिहाज से ठीक नहीं है, मगर एक्सपीरियंस से, अनुभव से अलग कुछ कहना पड़ेगा।

हमारे पास दो शब्द हैं—अनुभव और अनुभूति। अनुभव का अर्थ है—तुम मौजूद हो और अनुभव हो रहा है। किसी ने वीणा बजायी और तुम आह्लादित हुए और तुमने कहा—बड़ी आनंदपूर्ण थी, बड़ी रसपूर्ण थी—यह अनुभव। लेकिन किसी ने वीणा बजायी और तुम डूब गये उसमें, तुम बचे ही नहीं, अनुभव करने वाला अनुभोक्ता बचा ही नहीं, शून्य हो गया, तुम लौटकर क्या कहोगे? तुम अवाक खड़े रह जाओगे। तुम कुछ न कह पाओगे। तुम्हारी वाणी अवरुद्ध हो जाएगी। शायद आंख से आंसू बहें, शायद ओठों पर मुस्कुराहट हो, मगर कहोगे क्या? कहने वाला था ही नहीं वहां, पकड़ने वाला था ही नहीं, तुम मिट गये थे—यह अनुभूति।

अनुभवँ में तुम रहते हो, लेखा-जोखा करने वाला मौजूद रहता है, अनुभूति में तुम नहीं रहते, शून्य रहता है।

तो परमात्मा के अनुभव को अनुभष भी नहीं कहा जा सकता। शून्य को क्या अनुभव होगा? और शून्य को ही अनुभव होता है, इसलिए अनुभूति कहें। अलग-अलग तो हो ही नहीं सकती, क्योंकि अलग-अलग तो करता था मन, मन तो

गया। ऐसा समझो, तुमने एक मकान बनाया है। पड़ोसी का एक और मकान है। कितने मकान हैं, मकान ही मकान हैं! हर मकान एक ही आकाश में बना है। लेकिन हर मकान का स्थापत्य अलग-अलग है। किसी ने गोल कमरे बनाए हैं, किसी ने चौकोर कमरे बनाए हैं, किसी ने कुछ और किया, किसी ने कुछ और किया। ऐसी दशा है मन की। शून्य सबके भीतर है; लेकिन किसीके भीतर चौकोन, किसी के भीतर तिकोन, किसी के भीतर अष्टकोन।

समाधि का अर्थ होता है :मन हट गया। तुमने मकान गिरा दिया, तुमने दीवालें हटा दीं। तुम जब मकान गिरा देते हो तो तुम्हारे मकान के भीतर जो शून्य था, वह नहीं मिट जाता। सिर्फ दीवालें हट जाती हैं; बाहर के शून्य से भीतर के शून्य का मिलन हो जाता है, आकाश बाहर भी था, आकाश भीतर भी था, तुमने बीच में दीवालें खड़ी कर रखी थीं, दीवालें हट गयीं, आकाश का आकाश से मिलन हो गया। मन हमारा स्थापत्य है। तुमने एक ढंग का मन बनाया है, पड़ोसी ने और ढंग का मन बनाया है, मन हमारा घर है, आवास है। किसी को गोल कमरे पसंद हैं, किसी को चौकोन कमरे पसंद हैं; किसी को ऊंचा छप्पर पसंद है, किसी को नीचा छप्पर पसंद है, यह पसंदगियां हैं। लेकिन तुम न तो ऊंचे छप्पर में रहते हो, न नीचे छप्पर में रहते हो, रहते तो तुम मकान के भीतर के खालीपन में हो। न तुम गोल दीवाल में रहते हो, न चौकोन दीवाल में रहते हो, रहते तो तुम दीवालों के बीच में जो आकाश है उसमें रहते हो। वह जो अवकाश है मकान के भीतर उसमें रहते हो। मगर फिर भी मकान अलग-अलग हैं, मन अलग-अलग हैं।

समाधि तो एक है। सब मकान गिर गये, स्थापत्य गया, दीवालें गयीं। तुम ऐसा समझो कि तुम अपने कमरे में बैठे हो। तब तुम कमरे में बैठे थे तो चारों तरफ गोल कमरा था। तुम वहीं बैठे हो और गोल कमरे की दीवालें हटा ली गयीं—कुछ और नहीं बदला गया, तुम जैसे बैठे हो वैसे ही बैठे हो, चारों तरफ से दीवालें हटा ली गयीं समझो तंबू था, खींच लिया, तुम जहां बैठे हो वैसे ही बैठे हो, लेकिन तंबू के हटते ही सारा आकाश तुम्हारे छोटे से आकाश में मिल गया। सब चांद-तारे तुम्हारे भीतर आ गये। पहले बाहर थे तंबू के, अब तंबू के भीतर आ गये, अब सारा आकाश तुम्हारा तंबू हो गया। इस घड़ी में कोई भेद नहीं रह जाएंगे।

परमात्मा का अनुभव तो एक है, लेकिन अभिव्यक्ति जरूर भिन्न-भिन्न हैं। क्योंकि अभिव्यक्ति का मतलब हुआ तुम्हें फिर मन का उपयोग करना पड़ेगा। बुद्ध जानकर लौटे, शांडिल्य जानकर लौटे, जीसस जानकर लौटे, मोहम्मद जानकर लौटे। फिर आए तुम्हारे बीच बाजार में, तुमसे कहने आए। अब जब कहना है तो फिर मन का उपयोग करना पड़ेगा। बोलना है, तो फिर भाषा को बीच में लाना पड़ेगा—यह भाषा अलग-अलग होगी। मोहम्मद की अपनी भाषा है; उस भाषा में, महावीर की भाषा में बड़ा भेद है। मगर अनुभव में जरा भी भेद नहीं है।

ऐसा ही समझो कि इस बगीचे से तुम गए घर, और किसी ने तुमसे कहा—तुम्हारे बच्चों ने कहा कि हमें भी तो कुछ बताओ कि बगीचा कैसा था? जो

चित्रकार होगा, वह शायद चित्र बनाकर बता देगा कि ऐसा था। जो कवि होगा, वह एक कविता लिखेगा—वृक्षों की, वृक्षों के बीच से गुजरती हवाओं की, वृक्षों के बीच-बीच से छनती सूरज की किरणों की, वह कविता लिखेगा। अब एक कविता में और एक चित्र में बड़ा फर्क है। या हो सकता है, कोई संगीतज्ञ हो, वह कविता भी नहीं लिखेगा, वह अपनी वीणा उठा लेगा। क्यों लिखे कविता? हवाएं गुजरती थीं वृक्षों से और आवाज होती थी और नाद पैदा होता था, वह वीणा पर वही नाद पैदा कर देगा। रंग थे वृक्षों में, रंगों को वह ध्वनियों में बदल देगा। धूप-छांव थी, वह धूप-छांव को संगीत में उतार देगा। वह अपनी वीणा पर बजाएगा बगीचे को। कोई कविता में लिखेगा, कोई कागज पर उतारेगा। तीनों की अभिव्यक्तियां अलग हो जाएंगी। और अगर तीनों की अभिव्यक्तियां तुम देखो, तो उन्हीं को देखकर तुम यह न कह सकोगे—यह एक ही जगह की बात कर रहे हैं। कैसे कहोगे? कोई वीणा बजा रहा है, किसी ने कविता लिखी है, किसी ने चित्र बनाया है। और हो सकता है कोई गणितज्ञ हो, तो वह कुछ अनुपात बनाएगा, वह गणित में कुछ बात रखेगा। हो सकता है इस बगीचे में आकर उसेको सिमेट्री, समतुलता दिखायी पड़ी हो, तो वह लिखे—दो बराबर दो, ऐसा था बगीचा। हर चीज समान थी, अनुपात में थी। या कोई ज्यामिति का जानकार हो, तो रेखाएं खींचेगा कागज पर ज्यामिति से बताएगा। भेद हो जाएंगे, बड़े भेद हो जाएंगे। हजार तरह के लोग हो सकते हैं। कोई मिठाई वाला आ गया हो...।एक मित्र अभी यहां हैं, कल ही उन्होंने संन्यास लिया, वह मिठाई की दुकान करते हैं—स्वामी विष्णु भारती—अब अगर तुम उनसे पूछोगे कि क्या पाया वहां, तो वह एक मिश्री का टुकड़ा तुम्हारे मुंह में रख देंगे कि तुम्हीं स्वाद ले लो; मीठा था, खूब मीठा था।

सभी ठीक कह रहे हैं। सभी एक की बात कर रहे हैं। फिर भी अनेक हो गयी बात। फिर भी भिन्न-भिन्न हो गयी बात। अभिव्यक्तियां भिन्न-भिन्न हैं, अनुभव एक है।

आखिरी प्रश्न : क्या प्रार्थनाएं प्रभु तक पहुंचती हैं?

प्रार्थना का प्रयोजन ही प्रभु तक पहुंचने में नहीं। प्रार्थना तुम्हारे हृदय का भाव है। फूल खिले, सुगंध किसी के नासापुटों तक पहुंचती है, यह बात प्रयोजन की नहीं है। पहुंचे तो ठीक, न पहुंचे तो ठीक। फूल को इससे भेद नहीं पड़ता।

प्रार्थना तुम्हारी फूल की गंध की तरह होनी चाहिए। तुमने निवेदन कर दिया, तुम्हारा आनंद निवेदन करने में ही होना चाहिए। इससे ज्यादा का मतलब है कि कुछ मांग छिपी है भीतर। तुम कुछ मांग रहे हो। इसलिए पहुंचती है कि नहीं? पहुंचे तो ही मांग पूरी होगी। पहुंचे ही न तो क्या सार है सिर मारने से! और प्रार्थना प्रार्थना ही नहीं है, जब उसमें कुछ मांग हो। जब तुमने मांगा, प्रार्थना को मार डाला, गला घोंट दिया। प्रार्थना तो प्रार्थना ही तभी है, जब उसमें कोई वासना नहीं है। वासना से मुक्त होने के कारण ही प्रार्थना है। वही तो उसकी पावनता है। तुमने अगर प्रार्थना में कुछ भी

वासना रख़ी—कुछ भी—परमात्मा को पाने की ही सही, उतनी भी वासना रखी तो, तुम्हारा अहंकार बोल रहा है। और अहंकार की बोली प्रार्थना नहीं है। अहंकार तो बोले ही नहीं, निरअहंकार डांवाडोल हो।

प्रार्थना आनंद है। कोयल ने कुहू-कुहू गीत गाया, मोर नाचा, नदी का कलकल नाद है, फूलों की गंध है, सूरज की किरणें हैं, कहीं कोई प्रयोजन नहीं है, आनंद की अभिव्यक्ति है, ऐसी तुम्हारी प्रार्थना हो। तुम्हें इतना दिया है परमात्मा ने, प्रार्थना तुम्हारा धन्यवाद होना चाहिए—तुम्हारी कृतज्ञता। लेकिन प्रार्थना तुम्हारी मांग होती है। तुम यह नहीं कहने जाते मंदिर कि हे प्रभु, इतना तूने दिया, धन्यवाद। कि मैं अपात्र, और मुझे इतना भर दिया! मेरी कोई योग्यता नहीं, और तू औघड़दानी, और तूने इतना दिया! मैंने कुछ भी अर्जित नहीं किया, और तू दिये चला जाता है, तेरे दान का अंत नहीं है। धन्यवाद देने जब तुम जाते हो मंदिर, तब प्रार्थना। पहुंची या नहीं पहुंची, यह सवाल नहीं है।

सूफी फकीर जलालुद्दीन रूमी ने कहा है—लोग प्रार्थनाएं करते हैं ताकि परमात्मा को बदल दें। पत्नी बीमार है—अगर उसकी आज्ञा से ही पत्ता हिलता है, तो उसकी आज्ञा से ही पत्नी बीमार होगी—आप गये प्रार्थना करने, जरा सुझाव देने कि बदलो यह इरादा, मेरी पत्नी बीमार नहीं होनी चाहिए, यह भूल-चूक सुधार लो—अल्टीमेटम देने चले गये, कि नहीं तो फिर दुबारा मुझसे बुरा कोई नहीं! कि मेरी श्रद्धा डगमगाने लगी है अब। या तो मेरी पत्नी ठीक हो, या फिर कभी भरोसा न कर सकूंगा कि तुम हो। अगर हो तो प्रमाण दो। कि घर पहुंचूं कि पत्नी ठीक हो जाए। कि मैं गरीब हूं, धन चाहिए। कि चुनाव में खड़ा हुआ हूं, इस बार तो जिता ही दो।

तुमने कुछ मांगा, तो उसका अर्थ हुआ कि तुम परमात्मा को बदलने गये। उसका इरादा मेरे अनुसार चलना चाहिए। यह प्रार्थना हुई? तुम परमात्मा से अपने को ज्यादा समझदार समझ रहे हो? तुम सलाह दे रहे हो? यह अपमान हुआ। यह नास्तिकता है, आस्तिकता नहीं है। आस्तिक तो कहता है—तेरी मर्जी, ठीक। तेरी मर्जी ही ठीक। मेरी मर्जी सुनना ही मत। मैं कमजोर हूं और कभी-कभी बात उठ आती है, मगर मेरी सुनना ही मत, क्योंकि मेरी सुनी तो सब भूल हो जाएगी। मैं समझता ही क्या हूं? तू अपनी किये चले जाना। तू जो करे, वह ठीक है। ठीक की और कोई परिभाषा नहीं है। तू जो करे वही ठीक है।

जलालुद्दीन रूमी ने कहा—लोग जाते हैं प्रार्थना करने ताकि परमात्मा को बदल दें। और उसने यह भी कहा कि असली प्रार्थना वह है जो तुम्हें बदलती है, परमात्मा को नहीं। यह बात समझने की है—असली प्रार्थना वह है जो तुम्हें बदलती है। प्रार्थना करने में तुम बदलते हो। परमात्मा सुनता है कि नहीं, यह फिकर नहीं, तुमने सुनी या नहीं? तुम्हारी प्रार्थना ही अगर तुम्हारे हृदय तक पहुंच जाए, सुनो लो तुम तो रूपांतरण हो जाता है।

प्रार्थना का जवाब नहीं मिलता
हवा को हमारे शब्द

शायद आसमान में
हिला जाते हैं
मगर हमें उनका उत्तर नहीं मिलता
बंद नहीं करते
तो भी हम प्रार्थना
मंद नहीं करते हम
अपने प्रणिपातों की गति
धीरे-धीरे
सुबह-शाम ही नहीं
प्रतिपल
प्रार्थना का भाव
हममें जागता रहे
ऐसी एक कृपा हमें मिल जाती है
खिल जाती है
शरीर की कंटीली झाड़ी
प्राण बदल जाते हैं
तब वे शब्दों का उच्चारण नहीं करते
तल्लीन कर देने वाले स्वर गाते हैं
इसलिए मैं प्रार्थना छोड़ता नहीं हूं
उसे किसी उत्तर से जोड़ता नहीं हूं

प्रार्थना तुम्हारा सहज आनंदभाव। प्रार्थना साधन नहीं, साध्य। प्रार्थना अपने में पर्याप्त, अपने में पूरी, परिपूर्ण।

नाचो, गाओ, आह्लाद प्रकट करो, उत्सव मनाओ। बस वही आनंद है। वही आनंद तुम्हें रूपांतरित करेगा। वही आनंद रसायन है। उसी आनंद में लिप्त होते-होते तुम पाओगे—अरे, परमात्मा तक पहुंची या नहीं, इससे क्या प्रयोजन है, मैं बदल गया, मैं नया हो आया! प्रार्थना स्नान है आत्मा का। उससे तुम शुद्ध होओगे, तुम निखरोगे। और एक दिन तुम पाओगे कि प्रार्थना निखारती गयी, निखारती गयी, निखारती गयी, एक दिन अचानक चौंककर पाओगे कि तुम ही परमात्मा हो। इतना निखार जाती है प्रार्थना कि एक दिन तुम पाते हो,

तुम ही परमात्मा हो।

और जब तक यह न जान लिया जाए कि मैं परमात्मा हूं, तब तक कुछ भी नहीं जाना—या जो जाना, सब असार है।

आज इतना ही।

पांचवां प्रवचन

भक्ति याने जीने का प्रारंभ

5

प्रकरणाच्च ॥११॥

दर्शनफलमितिचेन्न तेनव्यवधानात् ॥१२॥

दृष्टत्वाच्च ॥१३॥

अत एव तदभावाद्वल्लवीनाम् ॥१४॥

भक्त्या जानातीतिचेन्नभिज्ञप्तया साहाय्यात् ॥१५॥

कदम उसी मोड़ पर जमे हैं
नजर समेटे हुए खड़ा हूं
जुनूं यह मजबूर कर रहा है पलट के देखूं
खुदी यह कहती है मोड़ मुड़ जा
मगर मुहब्बत तकाजा करती है लौट जाऊं
अगर्चे एहसास कह रहा है
खुले दरीचे के पीछे दो आंखें झांकती हैं
अभी मेरे इंतजार में वह भी जागती हैं
कहीं तो उसके भी गोशा-ए-दिल में दर्द होगा
कसक भी होगी
उसे यह जिद है कि मैं पुकारूं
मुझे तकाजा है वह बुला ले
कदम उसी मोड़ पर जमे हैं
नजर समेटे हुए खड़ा हूं

स्नेह हो, या प्रेम, या श्रद्धा, या भक्ति—प्रीति का कोई भी रूप, प्रीति की कोई भी तरंग—बाधा एक है—अहंकार। क्षुद्रतम प्रेम से विराटतम प्रेम तक बाधाएं अलग-अलग नहीं हैं। एक ही बाधा है सदा—अस्मिता। मैं यदि बहुत मजबूत हो तो प्रेम नहीं फल सकेगा। मैं का अर्थ है, परमात्मा की तरफ पीठ करके खड़े होना; प्रेमी की तरफ पीठ करके खड़े होना। मैं का अर्थ है—अकड़।

परमात्मा तुमसे दूर नहीं है, सिर्फ तुम पीठ किए खड़े हो। परमात्मा तुमसे दूर नहीं है, हाथ बढ़ाओ तो मिल जाए। जरा गुनगुनाओ, तो आवाज उस तक पहुंच जाए। जरा मुड़कर देखो, तो दिखायी पड़ जाए। मगर अहंकार कहता है—मुड़कर देखना मत। अहंकार कहता है—पुकारना मत। अहंकार अटकाता है। और अहंकार के जाल बड़े सूक्ष्म हैं। मनुष्य और परमात्मा के बीच इसके अतिरिक्त और कोई व्यवधान नहीं है।

इसीलिए शांडिल्य ने बार-बार कहा कि ज्ञानी नहीं पहुंच पाता। क्यों नहीं पहुंच पाता? क्योंकि ज्ञान से अहंकार और भी मजबूत हो जाता है—मैं जानता हूं। जानना तो कुछ नहीं होता, मैं बहुत मजबूत हो जाता है। और जितना मैं मजबूत हो जाता है, उतनी ही जानने की संभावना कम हो जाती है। मैं के साथ कैसा जानना? मैं तो अंधापन है। मैं के साथ कैसी आंखें? मैं तो हृदय पर पड़ी चट्टान है। हृदय खिलेगा नहीं, कमल बनेगा नहीं। बीज फूटेगा नहीं, वृक्ष पनपेगा नहीं। इसी चट्टान के नीचे दबे-दबे करोड़ों लोग मर जाते हैं। इस चट्टान को हटाते ही क्रांति हो जाती है।

और मजा यह है कि इस चट्टान से कुछ भी नहीं मिलता। इससे ज्यादा व्यर्थ चीज संसार में दूसरी नहीं है। वायदे बहुत, हाथ कुछ भी नहीं आता। आश्वासन बहुत—अहंकार इतने आश्वासन देता है, इतने सब्जबाग दिखाता है, पर सब सपने। दौड़ाता बहुत है, पहुंचाता कभी नहीं। मगर बड़ा कुशल है फुसला लेने में। बड़ा कुशल है तुम्हें राजी कर लेने में। होगा ही, अन्यथा बार-बार धोखा खाकर भी भरोसा किए चल जाते हो!

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं—हम श्रद्धालु नहीं हैं। हमारे मन में बड़े संदेह की दशा है; बड़े शक हैं, बड़े प्रश्न उठते हैं। मैं उनसे कहता हूं—बड़े प्रश्न उठते हैं, बड़े संदेह, अहंकार पर प्रश्न उठाया है? अहंकार पर संदेह किया है? परमात्मा पर संदेह किया होगा। परमात्मा से तुम्हारा लेना-देना क्या? जिससे पहचान नहीं है, उस पर संदेह भी क्या खाक करोगे? जिससे मिलन नहीं हुआ, उस पर प्रश्न भी क्या उठाओगे? जो द्वार तुम्हारे लिए खुला ही नहीं कभी, उस द्वार के पीछे क्या है, इसकी जिज्ञासा! पहले द्वार तो खोलो।

सच्चा संदेहशील व्यक्ति वही है जो अहंकार पर संदेह उठा ले। और जो अहंकार पर संदेह उठा ले, उसे श्रद्धा उपलब्ध हो जाएगी। श्रद्धा के लिए श्रद्धा नहीं करनी होती, सिर्फ अहंकार पर संदेह करना होता है। और संदेह से तो तुम भरे हो। दोनों चीजें मौजूद हैं—संदेह भी है, अहंकार भी है—संदेह और अहंकार को जोड़ दो और तुम्हारे भीतर श्रद्धा की क्रांति हो जाएगी। संदेह को अहंकार पर मोड़ दो, संदेह के तीर को अहंकार में चुभ जाने दो, पूछो तो जिस अहंकार के साथ इतने दिन तक चले हो, अब भी चल रहे हो, आगे भी चलने के इरादे हैं, इस अहंकार ने कभी कुछे दिया है? यह कहीं थोथा तो नहीं? इसके आश्वासन झूठे तो नहीं?

मैंने सुना है, एक आदमी ने ईश्वर की बहुत-बहुत प्रार्थना की; ईश्वर प्रसन्न हुआ और ईश्वर ने उसे एक शंख भेंट कर दिया, और कहा—इससे जो तू मांगेगा, मिल जाएगा; जो तू मांगेगा, मिल जाएगा। वह आदमी क्षणभर में धनी हो गया। जो मांगा, मिलने लगा। जब मांगा, तब मिलने लगा। लाख रुपए कहे तो तत्क्षण छप्पर खुला और बरस गए।

अचानक उसके भाग्य में परिवर्तन देखकर दूर-दूर तक खबरें पहुंच गयीं कि कुछ चमत्कार हो रहा है। न वह घर से बाहर जाता है, न कोई श्रम करता है, न कोई व्यवसाय करता है और खजाने खुल गए हैं।

एक संन्यासी उसके घर में आकर मेहमान हुआ। संन्यासी सुबह पूजा कर रहा था। गृहस्थ ने उस संन्यासी को पूजा करते देखा। उस संन्यासी के पास एक बड़ा शंख था। और संन्यासी ने उस शंख से कहा कि मुझे लाख रुपए चाहिए। वह गृहस्थ पीछे खड़ा सुन रहा था। उसने सोचा—अरे, इसके पास भी वैसा ही शंख है! और मुझ से भी बड़ा है! शंख बोला—लाख से क्या होगा, दो लाख ले लो। गृहस्थ के मन में बड़ी लोभ की वृत्ति उठी कि शंख हो तो ऐसा हो! मेरे पास है, लाख मांगता हूं लाख दे देता है, जितना मांगों उतना दे देता है—यह भी कोई बात हुए! यह है शंख! लाख

कहो, दो लाख कह रहा है! मांगने वाला कहता है—लाख, शंख कहता है—दो लाख ले लो।

पैरों पर गिर पड़ा, संन्यासी के, कहा—आप संन्यासी हैं, आपके लिए ऐसे शंख की क्या जरूरत? मैं गृहस्थ हूं—फिर मेरे पास भी शंख है, वह आप ले लें; वह उतना ही देता है जितना मांगो। आपको वैसे ही जरूरत नहीं है।

संन्यासी राजी हो गया, शंख बदल लिए गए। संन्यासी उसी सुबह विदा भी हो गया। सांझ पूजा के बाद गृहस्थ ने शंख को कहा—लाख रुपया। शंख ने कहा—लाख में क्या होगा, दो लाख ले लो! गृहस्थ बड़ा प्रसन्न हुआ, कहा—धन्यवाद, तो दो ही लाख सही। शंख ने कहा—दो में क्या होगा, चार ले लो! बस, शंख ऐसा ही कहता चला गया। चार कहा तो कहा—आठ ले लो, और आठ कहा तो कहा— सोलह ले लो। थोड़ी देर में गृहस्थ की तो छाती कंप गयी। देने-लेने की तो कोई बात ही नहीं थी, सिर्फ संख्या दुगुनी हो जाती थी।

अहंकार महाशंख है। तुम मांगो, उससे कई गुना देने को तैयार है—देता कभी नहीं। हाथ कभी कुछ नहीं आता। अहंकार से बड़ा झूठ इस संसार में दूसरा नहीं है। सारी भ्रांतियों का स्रोत है। उससे ही उठती है सारी माया। उससे ही उठता है सारा संसार। संसार को छोड़कर मत भागना—क्योंकि कहां भागोगे, अहंकार तुम्हारे साथ रहेगा। जहां अहंकार रहेगा, वहां संसार रहेगा। छोड़ना हो कुछ तो अहंकार छोड़ दो। और मजा यह है कि छोड़ना कुछ भी नहीं पड़ता, अहंकार कुछ है ही नहीं, सिर्फ भाव है। सिर्फ मन में पड़ गयी एक गांठ है। धागे उलझ गए हैं और गांठ हो गयी है। धागे सुलझा लो और गांठ खो जाएगी। ऐसा नहीं है कि धागे सुलझाने पर गांठ भी बचेगी, कि जब धागे सुलझ जाएंगे तब गांठ भी हाथ आएगी—गांठ कुछ है ही नहीं।

इसलिए महावीर ने अहंकार को ग्रंथि कहा है, गांठ। और जो गांठ के पार हो गया, उसको निर्ग्रंथ कहा है। गांठ के पार हो गया। फिर गांठ नहीं बचती, सिर्फ सुलझाने हैं धागे। तुम्हारे विचार के धागे ही उलझ गए हैं। जितने ज्यादा उलझ गए हैं, उतनी बड़ी गांठ हो गयी है। उलझते ही चले जा रहे हैं, सुलझाव का कोई उपाय नहीं दिखता है। यही गांठ बाधा है। धागे चित्त के सुलझ जाएं, परमात्मा को तुमने कभी खोया नहीं था।

तुम न आयीं, आ गया मैं ही तुम्हारे द्वार पर
छोड़कर वनश्री हरित सौंदर्य की रेवातटी
शैलखंडों की सुनील, सुरम्य, मादक छविपटी
झील, निर्झर, बावली की फैलती छाहें घनी
छोड़कर आकाश की फैली विभा की दर्पणी
छोड़कर आकंठ उमड़ी स्नेह की अगणित डगर
छोड़कर शारद पवन की रोशनी जादूगरी
छोड़कर झंकृत प्रपातों की छलक सपनों भरी
छोड़कर जलपंखियों की पांत बादल से सटी

दिग्दिगंतों तक बिछी सुषमा फसल जैसे कटी
आ गया अपनत्व के आह्वान सारे छोड़कर
था तुम्हारी प्रीति का उन्माद इन सबसे बड़ा
छोड़कर घर द्वार मुझ को ही यहां आना पड़ा
जीत ली बाजी तुम्हीं ने आ गया मैं हार कर
तुम न आयीं, आ गया मैं ही तुम्हारे द्वार पर
आज विजयिनि! भाव का प्रतिकंप मेरा है मुखर
है बड़ा मेरे अहं से यह तुम्हारा पन प्रखर
बेखुदी छायी अभी तक है तुम्हारे स्वाद की
प्राण को दूरी असह थी प्राण के संवाद की
सिंधु पूरा था उमड़ पड़ता तुम्हारी याद में
आ गया मैं गूंजता तुम तक इसी जयनाद में
मैं तुम्हारी टेक की निर्मम कड़ी का मुग्ध स्वर
बीतने देना न मुझको तृप्ति के अवसाद में
तुम मुझे चुकने न देना पूर्ति के उल्लास में
अर्थ तुम बनने मुझे देना न बीती बात का
जागता तुमको रहूं हर नींद में मैं प्रात सा
तुम न आयीं, आ गया मैं ही तुम्हारे द्वार पर...
तुम न आयीं, आ गया मैं ही तुम्हारे द्वार पर
जीत ली बाजी तुम्हीं ने, आ गया मैं हार कर

एक दिन चाहे संसार का प्रेम हो, चाहे असांसारिक प्रेम हो, तुम्हें अपने मैं को छोड़कर प्रेमी की तलाश करनी पड़ती है। एक दिन तुम्हें अपने अहंकार से बड़ा अपने प्रेमी का अस्तित्व अंगीकार करना होता है। ज्ञानी नहीं कर पाएगा, धनी नहीं कर पाएगा, प्रतिष्ठित नहीं कर पाएगा, यशस्वी नहीं कर पाएगा। इसलिए तो जीसस ने कहा—धन्यभागी हैं वे जो दरिद्र हैं। इन सब अर्थों में जो दरिद्र हैं। आत्मा से जो दरिद्र हैं—न जिन के पास ज्ञान है, न पद है, न प्रतिष्ठा है, न नाम है, न यश है। जिनके अहंकार को भरने के लिए कुछ भी नहीं है। धन्यभागी हैं वे जो निर्धन हैं आत्मा से, क्योंकि प्रभु का राज्य उन्हीं का है।

और तुम देखोगे तो तुम निर्धन हो। न देखो तो ही तुम मान सकते हो कि तुम धनी हो। धन के भला ढेर लगे हों तुम्हारे पास, लेकिन तुम धनी कहां हो? और नाम तुम्हारा बहुतों को पता हो, लेकिन तुम्हें अपना नाम अभी स्वयं ही पता नहीं है और यश चाहे दूसरों से तुम्हें मिला हो, तुमने अभी वैसी घड़ी नहीं पायी जहां तुम अपना सम्मान कर सको। तुम अपने भीतर निंदित पड़े हो। तुम अपमानित हो स्वयं से। तुम तो भलीभांति जानते हो। दूसरों को धोखा दे दिया होगा, अपने को तो कैसे धोखा दोगे? इस जगत में स्वयं को धोखा देना संभव नहीं है। तो तुम अपनी कुरूपता भलीभांति जानते हो—भुलाते हो, छिपाते हो, फिर भी उभर-उभर आती है।

जो व्यक्ति देखेगा ठीक से, वह पाएगा—जानता मैं क्या हूं, ज्ञान मेरे पास क्या है? हां, कंठ ने उपनिषद याद कर लिए हैं, और स्मृति में कुरान है, और बाइबिल है, मगर मेरा जानना क्या है? कृष्ण ने जाना होगा सो कृष्ण ने जाना होगा; उनका जानना मेरा जानना कैसे बनेगा? कृष्ण ने भोजन किया होगा, तो उनकी मांस-मज्जा निर्मित हुई होगी, उनके भोजन से मेरा पेट नहीं भरता। कृष्ण के भोजन से तुम्हारा पेट नहीं भरता, तो कृष्ण के अनुभव से तुम्हारी आत्मा कैसे भरेगी? क्राइस्ट ने श्वास ली होगी, तो प्राण का संचार हुआ होगा। क्राइस्ट की श्वास तुममें प्राण का संचार नहीं करती, तो क्राइस्ट का परमात्म-अनुभव तुम्हारी आत्मा को कैसे पुनरुज्जीवित करेगा? नहीं, क्राइस्ट ने कहा है—प्रत्येक व्यक्ति को अपना क्रास अपने ही कंधे पर ढोना पड़ेगा, उधारी नहीं चलेगी। और ज्ञान सब उधार है। इसलिए ज्ञान थोथा हो जाता है, ज्ञान कहीं ले जाता नहीं।

आज के सूत्रों में प्रवेश के पहले एक नजर पीछे की तरफ डालकर देख लें। शांडिल्य ने अब तक जो सूत्र दिए, उनको याद कर लें।

ॐ अथातो भक्तिजिज्ञासा।

नाद के स्वागत के साथ, संगीत के सत्कार के साथ, उत्सव की घोषणा के साथ, भक्ति की जिज्ञासा पर निकलते हैं। बजती हुई जगत की ध्वनि में, लोक और परलोक के बीच उठ रहे नाद में भगवान को खोजने निकलते हैं। यह यात्रा संगीत से पटी है। यह यात्रा रूखी-सूखी नहीं है। यहां गीत के झरने बहते हैं, क्योंकि यह यात्रा हृदय की यात्रा है। मस्तिष्क तो रूखा-सूखा मरुस्थल है, हृदय हरी-भरी बगिया है। यहां पक्षियों का गुंजन है, यहां जलप्रपातों का मर्मर है। इसलिए ओम से यात्रा शुरू करते हैं। और ओम पर ही यात्रा पूरी होनी है। क्योंकि जहां से हम आए हैं, वही पहुंच जाना है। हमारा स्रोत ही हमारा अंतिम गंतव्य भी है। बीज की यात्रा बीज तक। वृक्ष होगा, फल लगेंगे, फिर बीज लगेंगे। स्रोत अंत में फिर आ जाता है। जब तक स्रोत फिर न आ जाए, तब तक भटकाव है। इसलिए चाहे कहो अंतिम लक्ष्य खोना है, चाहे कहो प्रथम स्रोत्र खोजना है, एक ही बात है। मूल को जिसने खोज लिया, उसने अंतिम को भी खोज लिया।

नाद से ही शुरू हुई है यात्रा। तुमने देखा, बच्चे का जन्म होता है, नाद से यात्रा शुरू होती है। बच्चे के जन्म के साथ ही चिकित्सक, नर्सें, परिवार के लोग प्रतीक्षा करते हैं नाद की—बच्चा आवाज कर दे! चीख दे, रो दे, चिल्ला दे, जीवन का सबूत दे दे! अगर थोड़ी देर लग जाए और बच्चे के कंठ से आवाज न निकले, तो निराशा छा जाती है। नाद नहीं तो जीवन का प्रारंभ नहीं। रो भी दे तो भी चलेगा, क्योंकि रुदन भी नाद है। अभी गीत की तो आशा नहीं की जा सकती, रोने की ही संभावना है। अभी गीत तो सीखा नहीं, अभी जीवन के अनुभव से तो गुजरे नहीं, अभी साज तो सजाया नहीं, अभी साज तो बैठा नहीं। जैसे कि अभी पहले-पहले कारीगर ने वीणा बनायी हो और उस पर हाथ तुम रखो, तो ठीक-ठीक सुमधुर संगीत पैदा हो जाए यह संभव नहीं—इसकी आशा भी नहीं की जाती—लेकिन ध्वनि तो

पैदा हो! विसंगीत सही, विसंगीत में संगीत छिपा है। अगर विसंगीत पैदा हो गया तो संगीत भी जम जाएगा। फिर बिठाने पड़ेंगे तार, सजाने पड़ेंगे, कसने-ढीले करने पड़ेंगे, ठोंकना-पीटना पड़ेगा, लेकिन कम से कम आवाज, नाद तो पैदा हो जाए।

अगर तीन मिनिट लग जाएं और बच्चे में नाद पैदा न हो, तो वह मुर्दा है। तीन मिनिट के भीतर नाद पैदा ही होना चाहिए। अगर तीन मिनिट तक उसने सांस नहीं ली तो फिर वह कभी सांस नहीं लेगा।

रुदन से प्रारंभ है। और जो ठीक-ठीक पहुंच जाएंगे, हंसी पर अंत होगा। वह भी नाद है। अब वीणा बैठ गयी, साज जम गया।

'ईश्वर के प्रति संपूर्ण अनुराग का नाम भक्ति है।' संपूर्ण, थोड़े-बहुत से नहीं चलेगा। कंजूसी से नहीं चलेगा। कृपणता काम नहीं आएगी। जरा-जरा दिया और बचाए रखे तो नहीं चलेगा। परमात्मा के साथ दोस्ती उन्हीं की होती है जो बेशर्त दे सकते हैं। जो कहते हैं—यह रहा पूरा का पूरा। जो ऐसा नहीं कहते कि थोड़ा-थोड़ा दूंगा, जो इन्स्टालमेंट में नहीं देते, खंड-खंड नहीं देते। क्योंकि खंड-खंड देने का अर्थ है कि भरोसा नहीं है। सोचते हो—थोड़ा देकर देखें, जब उतने से लाभ मिलेगा तो फिर कुछ और देंगे, उतने से लाभ मिलेगा तो फिर कुछ और देंगे। जुआरियों का काम है भक्ति, व्यवसायियों का नहीं।

यह आकस्मिक नहीं है कि भारत में व्यवसायियों के वर्ग में कोई भी भक्ति का सूत्र पैदा नहीं हुआ। आकस्मिक नहीं है, इसके पीछे गणित है। व्यवसायी भक्त नहीं हो सकता। जैन हैं, भक्त नहीं हो सकते। उनका मार्ग ज्ञान का मार्ग है; तप का मार्ग है; वह समझ में आता है, उसका गणित है। भक्ति तो बिलकुल जुआरी का काम है, व्यवसायी का नहीं है। दांव पर लगाना है, जोखम है। पता नहीं, कुछ मिलेगा कि नहीं मिलेगा। जुए का दांव है, इसमें कुछ पक्का नहीं हो सकता। तुम जुए का दांव लगाकर कोई सुरक्षित नहीं रह सकते, कौन जाने क्या होगा?

व्यवसायी हिसाब से चलता है। इसलिए यह आकस्मिक नहीं है कि जैनों के संप्रदाय में भक्ति की कोई अवभावना नहीं पैदा हो सकी। शुद्ध गणित का काम है। इतना दो, इतना लो। इतना बुरा कर्म छोड़ दो, इतना लाभ मिले। इतना अच्छा कर्म करो, इतना मोक्ष पाओ। जितना करोगे, उतना मिलेगा। तर्क है, सुसंगति है।

भक्ति तर्क नहीं है, गणित नहीं है। इसलिए भक्ति के लिए तो जुआरी का हृदय चाहिए, जो सब दांव पर लगाकर खड़ा हो जाता है, इस पार या उस पार। इसलिए शांडिल्य कहते हैं—'ईश्वर के प्रति संपूर्ण अनुराग का नाम भक्ति है।' संपूर्ण पर ध्यान रखना। 'उसमें चित्त का लग जाना अमृत की उपलब्धि है।' कुछ और नहीं करना है, उसमें चित्त का लग जाना। और चित्त तब तक नहीं लगेगा जब तक तुम कुछ भी बचाओगे। तब तक चित्त शंकित रहेगा। तब तक चित्त सोचता रहेगा, विचारता रहेगा, जांचता रहेगा, आंख के कोने से हिसाब रखता रहेगा, पुण्य-पाप की राशि लगाता रहेगा। संपूर्ण तुम रख दो दांव पर। और कृपणता का कारण क्या है? है क्या तुम्हारे पास रखने को? वही खाली अहंकार है। खाली पात्र अहंकार का है, जो

कभी भरा नहीं, भर ही नहीं सकता, क्योंकि उसमें तलहटी नहीं है; तुम भरते जाते हो, सब गिरता जाता है। खाली का खाली रहता है। खाली होना उसका स्वभाव है। इस खाली घड़े को ही परमात्मा के चरणों में रखना है, इसमें भी कंजूसी कर जाते हो। इसमें भी कहते हो—थोड़ा-थोड़ा।

शांडिल्य कहते हैं, उसमें चित्त का संपूर्ण रूप से लग जाना ही अमृत की उपलब्धि है। क्यों? अमृत कुछ अलग नहीं है। जिस दिन तुमने जाना कि मैं नहीं हूं, तुम अमृत हो गए। अमृत का अर्थ है—अब तुम कभी न मरोगे। मैं मरता है, मैं मरा ही हुआ है, तुम तो शाश्वत हो। यह मैं के साथ तुम्हारा जो गठबंधन हो गया है, इसकी वजह से तुम क्षणभंगुर से बंध गए हो। जैसे किसी आदमी ने मान लिया कि मैं मेरे कपड़े हूं। अब वह कपड़े नहीं उतारता। क्योंकि वह डरता है—कपड़े उतर गए तो मुश्किल खड़ी हो जाएगी।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक मेले में गया। बड़ी भीड़ थी। सब होटलें भरी थीं, सब धर्मशालाएं भरी थीं। बामुश्किल एक सराय में बहुत हाथ-पैर जोड़ने से जगह मिली। लेकिन सराय के मैनेजर ने कहा कि जगह तो दे देता हूं लेकिन अकेला कमरा नहीं मिल सकेगा। उस कमरे में एक आदमी पहले से सोया हुआ है, तुम भी चुपचाप जाओ और सो जाओ।

मुल्ला कमरे में गया। उसने आदमी को सोए देखा, वह किसी बड़ी अनजानी चिंता से भर गया। दार्शनिक चित्त का आदमी, बैठकर सोचने लगा पलंग पर कि अब करना क्या? फिर सोचकर उसने यही निर्णय किया कि जैसा हूं, ऐसे ही सो जाना ठीक है। तो पगड़ी लगाए, जूता पहने, कोट पहने लेट रहा। वह सामने पड़ा हुआ आदमी आंख खोल-खोलकर देख रहा है कि यह सज्जन क्या कर रहे हैं? जब उसने देखा कि जूते पहने और पगड़ी पहने ही सोने की कोशिश कर रहे हैं; तो वह भी जरा चौंका कि यह कोई आदमी पागल तो नहीं है! रात इस आदमी के साथ सोना इस कमरे में अकेले, पता नहीं यह क्या करे? फिर मुल्ला को भी नींद नहीं आती है, क्योंकि कहीं जूते पहने और पगड़ी लगाए हुए, कोट पहने नींद आ सकती है? करवटें बदलता है, उसकी वजह से वह आदमी भी करवटें बदलता है।

आखिर उस आदमी ने कहा कि भाई, न तुम सो सकोगे, न मैं सो सकूंगा। हालांकि पगड़ी तुमने पहनी है और जूते तुमने बांधे हैं, मगर मैं भी नहीं सो पा रहा हूं। तुम इनको उतार ही दो। मुल्ला ने कहा—एक अड़चन है। अपने घर पर मैं उतारकर ही सोता हूं, लेकिन कमरे में मैं अकेला ही होता हूं, तो मैं जानता हूं कि मैं ही मुल्ला नसरुद्दीन हूं। अब यहां दो आदमी हैं पगड़ी उतारकर रख दी, जूते उतारकर रख दिए, कोट उतारकर रख दिया और दिगंबर होकर सो रहा, सुबह झंझट खड़ी होगी कि नसरुद्दीन कौन है? यहां दो आदमी हैं। क्योंकि यह मेरी पहचान हैं—यह पगड़ी, यह जूते, यह कोट, इन्हीं को दर्पण में देखकर मैं जानता हूं कि यह मैं हूं। इस खतरे के कारण यह नहीं कर रहा हूं।

वह आदमी हंसा इस पागलपन पर, उसने कहा—तुम फिकर न करो, इसके

लिए कोई रास्ता खोजा जा सकता है। यह देखते हो कोने में, पहले कोई ठहरे होंगे लोग, उनका बच्चा एक फुग्गा छोड़ गया है फूला हुआ, कोने में पड़ा है, इसको अपनी टांग में बांध लो। तो तुम्हें पक्का पता रहेगा कि तुम्हीं नसरुद्दीन हो। नसरुद्दीन ने कहा—यह बात जंचती है। टांग में फुग्गा बांधकर, कपड़े उतारकर वह सो रहा। उस आदमी को रात मजाक सूझा उसने फुग्गा निकालकर अपने पैर में बांध लिया। सुबह जब नसरुद्दीन उठा, उसने छाती पीट ली; उसने कहा—मैंने पहले ही कहा था। अब यह तो पक्का है कि तुम नसरुद्दीन हो, मगर मैं कौन हूं?

तुम्हारी पहचान क्या है? तुम हंसते हो इस बात पर, लेकिन तुम्हारी खुद की पहचान भी ऐसी ही है। रात तुम सो जाओ और कोई प्लास्टिक सर्जन तुम्हारा चेहरा बदल दे और सुबह तुम दर्पण के सामने खड़े हो जाओ, तो तुम्हारी यही हालत नहीं होगी जो नसरुद्दीन की हो गयी? तुम्हारी एक पहचान थी, नाक थी, नक्शा था, एक ढंग था, तुम्हारी पहचान थी; रात किसी ने जादू किया—प्लास्टिक सर्जन ने आकर तुम्हारा चेहरा बदल दिया—सुबह तुम दर्पण के सामने खड़े हुए, तुम मुश्किल में पड़ जाओगे, तुम कहोगे, एक बात तो पक्की है कि यह मैं नहीं हूं। फिर मैं कौन हूं?

तुम्हारी अपनी पहचान क्या है? वस्त्र की पहचान या शरीर की पहचान में कोई फर्क नहीं है, क्योंकि शरीर भी वस्त्र है। अगर तुम और थोड़े भीतर जाओगे तो मन की पहचान है कि मैं हिंदू हूं, मुसलमान हूं, ईसाई हूं, फलां हूं, ढिकां हूं, वह भी मन की ही पहचान है, वह भी वस्त्र है।

दूसरे महायुद्ध में ऐसा हुआ, एक आदमी गिरा युद्ध में। बड़ी भयंकर चोट लगी, तीन दिन बेहोश रहा, जब होश में आया तो उसकी स्मृति मिट गयी। स्मृति तो ऐसे ही है जैसे कि कपड़े छीने जा सकते हैं। वह आदमी स्मृति से नग्न हो गया। जब तीन दिन बाद उसकी आंख खुली और उससे पूछा गया कि तुम्हारा नाम, पता, ठिकाना? क्योंकि उसका नंबर भी युद्ध के मैदान पर गिर गया था। लोग प्रतीक्षा कर रहे थे, वह होश में आ जाए तो पूछ लें—तुम्हारा नाम, तुम्हारा पता, तुम्हारा नंबर? वह तो सब भूल चूका था। उसकी स्मृति पुंछ गयी। वह तो चौंककर रह गया। उसे तो कुछ याद नहीं आया। अब बड़ी कठिनाई हो गयी, यह आदमी है कौन? क्योंकि मिलिटरी में तो आदमी नंबर से जाने जाते हैं, इसका नंबर पता नहीं है। और इसको अपना नाम भी याद नहीं रहा, नहीं तो फाइलों में खोजबीन हो सकती थी।

मेरे एक मित्र हैं, डाक्टर हैं। भीड़ थी ट्रेन में, दरवाजे पर खड़े-खड़े जाते थे, हाथ छूट गया राह में, गिर पड़े, भयंकर चोट आयी। बचपन से मेरे मित्र हैं, साथ-साथ हम पढ़े, उनको मैं देखने गया, वह मुझे पहचान नहीं सके। मुझे पहचानना दूर, वह अपने मां-पिता को नहीं पहचानते। कोई सात साल फिर अ, ब, स से सब सीखना पड़ा। भाषा भी भूल गयी।

तुम्हें पता है तुम कौन हो? हंसो मत नसरुद्दीन पर, वैसी ही हालत है। कपड़े हों, कि देह हो, कि मन हो, यही तो हमारी पहचान है। मगर यह सब छीनी जा सकती है।

चीन में जो कैदी पड़ जाते हैं कम्युनिस्टों के हाथ में, वे उनकी स्मृति पोंछ डालते हैं। रूस में भी वही किया गया है। अब रूस में किसी विरोधी व्यक्ति को, विद्रोही व्यक्ति को फांसी की सजा नहीं देते—वह पुराना ढंग हो गया। और फांसी की सजा में तो एक इज्जत भी थी। यह तो अच्छा था कि कोई फांसी की सजा लग जाए, कम से कम प्रतिष्ठा से तो मरता था। अब रूस में वह भी संभव नहीं, प्रतिष्ठा से फांसी भी संभव नहीं। पहले उसकी स्मृति पोंछ देते हैं। जैसे ही स्मृति पुंछ जाती है, न उसका विद्रोह बचता है, न उसके विचार बचते हैं, सब समाप्त हो गया।

और अब विधियां खोज ली गयी हैं उसके मन को फिर से संस्कारित करने की। जैसे कागज पर तुमने कुछ लिखा था, उसे पोंछ दिया गया। फिर से लिख दिया, तुमने पूरे आदमी को बदल दिया। यही तो तुम्हारी पहचान है, कहते हो मैं हिंदू हूं, हिंदुस्तानी हूं; मुसलमान हूं, पाकिस्तानी हूं, कि चीनी हूं, तिब्बती हूं; कि इस पंथ को मानता, कि उस पंथ को मानता; कि बाइबिल, कि कुरान कि गीता मेरी किताब है; कि यह मेरा गुरु है; कि यह मूर्ति मेरी श्रद्धा की पात्र है; कि यह मेरा मंदिर, यह मेरी मस्जिद; मगर यह सब छिन सकता है। तुम हो कौन? तुम्हारा घर, तुम्हारा परिवार, तुम्हारी शिक्षा, तुम्हारे सर्टिफिकेट, सब कागजी हैं। तुम हो कौन? यह चैतन्य कौन है जिस पर यह सारी चीजें टंगी हैं? यह देह टंगी, यह मन टंगा, यह विचार टंगे, यह सर्टिफिकेट टंगे, यह प्रतिष्ठा, नाम-धाम टंगा, यह भीतर तुम्हारे चैतन्य की खूंटी क्या है? उस खूंटी को जानना ही स्वयं को जानना है।

उसको जानते ही अमृत की उपलब्धि हो जाती है। क्योंकि वह अमृत है। उपलब्धि हो जाती है, ऐसा कहना ठीक नहीं। मर्त्य के साथ तुमने संबंध जोड़ लिया है, बस वह दोस्ती टूट जाती है। इस मर्त्य के साथ संबंध का, पूरा का पूरा संबंध का समग्रीभूत नाम अहंकार है। उसमें चित्त का लग जाना अर्थात अपने से चित्त का उठ जाना, मैं से चित्त का छूट जाना और परमात्मा में चित्त का लग जाना अमृत की उपलब्धि है।

'ज्ञान भक्ति नहीं है।' अनुभव, स्वानुभव ही भक्ति है।

'भक्ति के उदय पर ज्ञान का नाश हो जाता है।' जरूरत ही नहीं रह जाती। भक्ति के उदय पर ज्ञान का नाश क्यों हो जाता है? क्योंकि ज्ञान तो उधार था। किसी ने तुमसे कहा था कि सूर्योदय कैसा होता है और तुम ने वे याददाश्तें सम्हालकर रखी थीं। क्योंकि तुम्हारी आंखें तो अंधी थीं और तुमने सूर्योदय देखा नहीं था। फिर तुम्हारी आंख की चिकित्सा हुई, मिल गया वैद्य तुम्हें, मिल गयी औषधि, कटी व्याधि, पर्दा आंख का हटा। एक दिन तुमने आंख खोली, सुबह के सूरज को उगते देखा। अब क्या करोगे उन बातों का जो दूसरों ने तुमसे कही थीं? उनका अब कोई भी तो मूल्य नहीं रहा। साक्षात सूर्योदय सामने खड़ा है, यह उठता हुआ आग का प्रचंड गोला, यह बादलों पर रंग, यह सारे जगत में फैल गयी जीवन की ताजगी, यह पक्षियों के गीत, यह हवाएं, यह सब तरफ बजता हुआ ओंकार का नाद, अब क्या करोगे याद उन बासी बातों की जो दूसरों ने तुम से कही थीं कि सूर्योदय कैसा होता है?

जिस दिन व्यक्ति भक्ति को उपलब्ध होता है, सब ज्ञान से छुटकारा हो जाता है। ज्ञान की आवश्यकता नहीं रह जाती। अपना धन मिल गया, अपनी प्रतीति हो गयी, अपना साक्षात्कार हुआ। भक्ति यानी रस, लय, राग, रंग, उत्सव; भक्ति यानी भगवान का भोग। भक्ति परम योग है और परम भोग भी।

'भक्ति ज्ञान की नाईं अनुष्ठानकर्ता के आधीन नहीं है।' शांडिल्य कहते हैं कि तुम्हारे हाथ में नहीं है भक्ति। तुम्हारे कारण ही तो बाधा पड़ रही है भक्ति में। तुम जाओ तो भक्ति आए। इधर तुम गए, उधर भक्ति आयी। तुम रहे तो भक्ति कभी नहीं आ पाएगी। इसलिए तुम्हारे अनुपस्थित हो जाने में भगवान की उपस्थिति है।

तुम पूछते हो—भगवान कहां है? तुम्हारी उपस्थिति के कारण दिखायी नहीं पड़ रहा है। तुम अनुपस्थित होना सीखो, तुम विसर्जित होना सीखो। उसमें चित्त को लग जाने दो संपूर्ण। और तत्क्षण तुम पाओगे सब तरफ वही है, उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

'इसलिए भक्ति का फल समयातीत है। वह अनंत है।' क्योंकि तुम्हारे हाथ से पैदा नहीं होता, इसलिए छीना भी नहीं जा सकता। तुम जो भी पैदा करोगे, वह क्षणभंगुर होगा। तुम क्षणभंगुर हो। अहंकार के द्वारा जो भी निर्मित होगा, वह पानी पर खींची गयी लकीर है—खिंच भी नहीं पाएगी और मिट जाएगी। जो परमात्मा से आता है, वही शाश्वत है। तुम भी शाश्वत हो, क्योंकि तुम परमात्मा से आए। और जो भी परमात्मा से आता है, सब शाश्वत है। उसका अंत नहीं।

'ज्ञानी और अज्ञानी, दोनों को उसकी प्राप्ति हो सकती है।' इसलिए ज्ञान कोई शर्त नहीं है। ज्ञानी को भी हो सकती है, अगर ज्ञान को हटा दे। 'भक्ति मुख्य है, अनिवार्य है, क्योंकि और-और मार्गों में भी अंततः उसकी शरण लेनी होती है।' ऐसा कोई मार्ग ही नहीं है जिसमें भक्ति की शरण न लेनी पड़ती हो। देखो तुम, बुद्ध ने कहा—भगवान नहीं है, कोई परमात्मा नहीं है, न कोई आत्मा है। लेकिन भक्ति का तत्व आया। पीछे के दरवाजे से आया—बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि। शरण जाने की बात आ गयी। कृष्ण ने कहा था—मामेकं शरणं व्रज;'सर्व धर्मान् परित्यज्य। सब छोड़छाड़ अर्जुन, मेरी शरण आ। बुद्ध ने कहा—कोई परमात्मा नहीं है, कोई आत्मा नहीं है। लेकिन फिर भी बुद्ध का धर्म बिना शरणागति के खड़ा नहीं हो सका। बिना शरणागति के, बिना समर्पित हुए कोई धर्म खड़ा नहीं होता।

जैनधर्म शुद्ध योग है, शुद्ध तपश्चर्या है, लेकिन शरणागति तो आ ही जाती है। और महावीर ने अशरण की बात कही। महावीर ने कहा—अशरण हुए बिना सब शरण छोड़ देनी है—तो ही तुम पहुंचोगे। लेकिन पीछे के द्वार से बात आ गयी—अरिहंत शरणं पवज्झामि। मैं अरिहंत के शरण जाता हूं। जो जाग गए, जिन्होंने जीत लिया, उनकी शरण जाता हूं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता तुम किसकी शरण जाते हो, शरण जाने से फर्क पड़ता है। तुम महावीर की शरण गए, कि तुम बुद्ध की शरण गए, कि तुम कृष्ण की शरण गए, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। कृष्ण, बुद्ध, महावीर, सब

निमित्त हैं। शरण गए, इससे फर्क पड़ता है। वह शरण जाने की भाव-दशा ही भक्ति है। इसलिए शांडिल्य बड़ी अपूर्व बात कह रहे हैं। शांडिल्य कहते हैं—सभी मार्गों में भक्ति अनिवार्य है। कुछ न कुछ भक्ति चाहिए ही, नहीं तो कोई धर्म निर्मित नहीं होता।

मुसलमानों ने मूर्ति हटा दी, काबा का पत्थर विराजमान हो गया। अब काबा के पत्थर में और मूर्ति में क्या फर्क है? पत्थर पत्थर है। मस्जिद से मूर्ति हटा दी, लेकिन शरण की भावना तो नहीं हटा सकते। मुसलमान जाकर जिस तरह झुकता है, उस तरह हिंदू भी नहीं झुकता है। झुकता है, बार-बार झुकता है नमाज में। वही झुकना भक्ति है। अपने सिर को झुकाना, अपने अहंकार को झुकाना भक्ति है।

फिर आज के सूत्र तुम्हें समझ में आ सकेंगे।

प्रकरणाच्च।

'और प्रकरण से ऐसा ही है।'

इसलिए मैंने यह पुराने सूत्र दोहराए, क्योंकि आज के सूत्र संबंधित हैं। शांडिल्य कहते हैं—यह जो मैंने अब तक कहा, इसके तुम्हें जीवन में जगह-जगह प्रमाण मिलेंगे। प्रकरण से ऐसा ही है। तुम जरा आंख खोलकर खोजना शुरू करो। महावीर के मार्ग पर कोई परमात्मा नहीं है, लेकिन शरण का भाव आया। बुद्ध के मार्ग पर तो परमात्मा भी नहीं है, आत्मा भी नहीं है, फिर भी शरण का भाव आया। इस्लाम ने मूर्तियां हटा दीं, तो भी शरण का भाव है। दुनिया में ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसमें शरण का भाव न हो। शरण तो जाना ही होगा। प्रकरणाच्च। प्रकरण से, सारे जगत के अलग-अलग अनुभवों से यही सिद्ध होता है कि भक्ति अनिवार्य है। भक्ति से छुटकारा नहीं। भक्ति के तत्व के बिना कोई धर्म निर्मित नहीं होता। तुम ऐसा ही समझो कि इतनी मिठाइयां निर्मित होती हैं, लेकिन मिठास अनिवार्य है। अब मिठाइयों के तो बहुत रूप हैं—रसगुल्ला है और संदेश है और खीर मोहन है और हजार हैं, लेकिन मिठास, माधुर्य अनिवार्य है।

भक्ति माधुर्य है। भक्ति शक्कर है। उसके बिना कोई मिठाई न बनेगी। फिर तुम किस ढंग की मिठाई बनाओगे, यह तुम पर निर्भर है।

दुनिया के सारे धर्म अलग-अलग मिठाइयां हैं, भक्ति उनके भीतर सब में छिपी हुई मिठास है। उनमें एक तत्व समान है, मिठास का। नमक डालकर मिठाई नहीं बनती। उसको मिठाई नहीं कह सकोगे। तो और बातें गौण हैं, मिठास तो अनिवार्य होनी चाहिए। फिर चाहे मिठाई चीन में बने और चाहे भारत में और चाहे रूस में, कहीं भी बने मिठाई, उसमें मिठास अनिवार्य होनी चाहिए।

शांडिल्य कहते हैं—हम मौलिक तत्व की बात कर रहे हैं। ऊपरी रूप, ऊपरी ढंग गौण हैं। प्रेम प्राण है। जैसे देहें तो अलग-अलग हैं, लेकिन प्राणतत्व एक है। कोई सुंदर है और कोई कुरूप है, और कोई ठिगना है और कोई लंबा है; कोई गोरा है, कोई काला है; कोई अंधा है, कोई आंखवाला है; कोई लंगड़ा है, कोई लूला है, कोई बहरा है, कोई स्वस्थ है; कोई दुबला, कोई मोटा, बहुत रूप हैं देह के, मगर

प्राणतत्व एक है। शांडिल्य कहते हैं, भक्ति प्राणतत्व है समस्त धर्मों का।

और जैसे प्राण के बिना देह मुर्दा है, वैसे ही भक्ति के बिना धर्म मुर्दा है। जिस धर्म से भक्ति खो जाती है, वह मुर्दा हो जाता है—उसी मात्रा में मुर्दा हो जाता है, जिस मात्रा में भक्ति खो जाती है। जिस मात्रा में भक्ति होती है, बाढ़ होती है भक्ति की, उसी मात्रा में धर्म जीवित होता है। जितनी नाचती हुई भक्ति होती है, उतना ही धर्म जीवित होता है। जितनी उमंग होती है भक्ति की, जितना उत्साह होता है भक्ति का, उतना ही धर्म जीवित होता है

जैसे आत्मा है सभी के भीतर एक, वैसे ही सभी धर्म विधियों में प्राण है प्रीति, भक्ति। जहां-जहां प्रेम है, वहां-वहां प्राण है। और जहां-जहां भक्ति है, वहां-वहां भगवान है। लोग उलटी तरफ से सोचना शुरू करते हैं। लोग कहते हैं—भगवान कहां है? यह ऐसा ही है कि जैसे कोई युवक आए और तुमसे पूछे—मेरा प्रेमपात्र कहां है? क्या कहोगे तुम उससे, मेरी प्रेयसी कहां है? कोई आ जाए पूछने पुलिस दफ्तर में, कि मेरी प्रेयसी कहां है? तो वे कहेंगे—तुम्हारी प्रेयसी है कौन, तो हम पता लगाएं। वह कहे—मुझे अभी खुद ही पता नहीं है, मैं तो तलाश में निकलता हूं, मेरी प्रेयसी कहां है? तो तुम कहोगे—पहले प्रेम करो, तो प्रेयसी होती है। अभी तुमने प्रेम किया नहीं, तुम प्रेयसी को खोजने निकल पड़े! लोग भक्ति किए नहीं और भगवान को पूछते हैं—भगवान कहां है? ऐसी ही मूढ़तापूर्ण बात पूछते हैं। लगती बात बड़ी तर्कयुक्त है जब कोई पूछता है कि भगवान कहां है? हो तो मैं मानूं, हो तो मैं पूजूं, हो तो मैं झुकने को तैयार हूं। मगर है कहां? अब तुम ऐसी ही मूढ़तापूर्ण बात पूछ रहे हो कि प्रेयसी मिल जाए तो सब निछावर कर दूं, लुटा दूं सब। पकड़ लूं उसके चरण सदा के लिए, उसे गले का हार बना लूं कि उसके गले का हार बन जाऊं, मगर है कहां, पहले पक्का हो जाए।

होगी कैसे प्रेयसी! प्रेयसी कोई व्यक्ति थोड़े ही है। तुम्हारा प्रेम जिस व्यक्ति पर आरोपित हो जाता है, वही तुम्हारा प्रेमी या प्रेयसी हो जाता है। जिस व्यक्ति पर, जिस शक्ति पर तुम्हारी भक्ति आरोपित हो जाती है, वही शक्ति, वही व्यक्ति भगवान हो जाता है। तो एक के लिए जो भगवान है, दूसरे के लिए भगवान नहीं होगा। तुम्हारी प्रेयसी मेरी प्रेयसी तो नहीं है। तुम यह तो नहीं कह सकते कि मेरी प्रेयसी को आप अपनी प्रेयसी क्यों नहीं मानते? सच तो यह है—कोई माने तो तुम झगड़ा खड़ा करोगे कि यह मेरी प्रेयसी है, आप इसको कैसे अपनी मानते हैं? लेकिन कोई कहे कि जब आप की है, तो हमारी!

मैंने सुना है, एक गांव में एक आदमी के पिता मर गए। वह बहुत रोने लगा, बहुत चिल्लाने लगा। पास-पड़ोस के लोग इकट्ठे हुए। लोगों ने कहा—क्यों रोते हो। गांव के बड़े-बूढ़ों ने कहा कि चलो, पिता चले गए कोई बात नहीं, हम तो हैं, हम तुम्हारे पिता हैं। वह शांत हो गया। फिर उसकी मां मर गयी कुछ दिन के बाद। फिर गांव की बूढ़ियों ने कहा कि मत घबड़ाओ, हम तो मौजूद हैं, रोते क्यों हो? हम तुम्हारी मां हैं।

फिर उसकी पत्नी मर गयी, फिर वह बैठकर राह देखने लगा कोई आकर कहे। कोई न आए। फिर उसने बहुत शोरगुल मचाया, फिर वह छत पर चढ़ गया, उसने कहा—अब क्यों नहीं आते? अब कोई आकर क्यों नहीं कहता, पहले तो गांव भर के लोग आते थे कि हम तुम्हारे पिता, हम तुम्हारी माता, अब कोई नहीं आ रहा है! कोई नहीं कहता कि हम तुम्हारी पत्नी, क्यों रोते हो?

तुम्हारी प्रेयसी तुम्हारी प्रेयसी है। लेकिन इस पर झगड़े खड़े होते हैं, बड़े बेहूदे झगड़े। हिंदू कहते हैं—कृष्ण भगवान हैं। इसमें जैनों को एतराज है। एतराज तर्कयुक्त है कि इस आदमी ने महाभारत का युद्ध करवा दिया! अर्जुन तो संन्यासी होना चाहता था। भला आदमी था। जैन-मुनि हो जाता अगर उसकी चलती। कृष्ण ने उसको कहां का उपद्रव में डाल दिया। भागने की उसने बहुत कोशिश की—तभी तो गीता पैदा हुई, वह बार-बार भागने की कोशिश कर रहा है और कृष्ण उसको फांस कर ला रहे हैं। आखिर उसको उलझवा दिया। उसको युद्ध करवा दिया। करोड़ों की हानि हुई, हजारों लोग मरे, इतनी हिंसा हुई, इस सबका जिम्मेवार कौन है? और हिंदू कहते हैं कृष्ण भगवान हैं! जैनियों ने नर्क में डाल रखा है, उनके पुराणों में नर्क में पड़े हैं, सातवें नर्क में। और इस सृष्टि के समय में नहीं छूटेंगे, जब प्रलय होगी तभी छूटेंगे।

हिंदू के लिए कृष्ण भगवान हैं। उनसे बड़ा भगवान कोई भी नहीं। पूर्ण अवतार कहा उनको। राम भी अधूरे हैं, बुद्ध भी अधूरे हैं, कृष्ण पूरे हैं। इस बात में भी जान है, प्राण हैं। बुद्ध एकांगी तो लगते ही हैं—भाग गए संसार को छोड़-छाड़कर। जीवन में संतुलन तो नहीं है। असंतुलित जीवन है। कृष्ण का जीवन बड़ा संतुलित है। बाजार में हैं और बाजार में नहीं हैं, यह संतुलन है। युद्ध में खड़े हैं और भीतर विराट शांति है, यह संतुलन है। भगोड़ापन नहीं है। जीवन में से यह चुनना, इसे छोड़ना, इसे पकड़ना, ऐसा नहीं, समग्र जीवन का स्वीकार है। इसी स्वीकार के कारण वह पूर्ण अवतार हैं। बुरा-भला, सब स्वीकार है। अस्वीकार करने वाला ही भीतर कोई नहीं है, तो अहंकार ही नहीं है जो चुनाव करे, इसलिए चुनाव-रहित हैं। जो घटे घटे। यही आस्तिकता की परमदशा है कि प्रभु जो चाहे घटवा रहा है, वही घटेगा।

तो हिंदुओं ने सारे अवतारों को पीछे कर दिया, कृष्ण को ऊपर कर लिया। अपनी-अपनी प्रीति! इसमें झगड़े की कोई गुंजाइश नहीं है। ईसाई कहता है कि यह कृष्ण किस तरह के भगवान हैं? बांसुरी लेकर नाच रहे हैं और दुनिया में इतना दुख है। और यह भगवान हैं? और इतनी बीमारियां हैं, किसी अस्पताल में चले जाओ, अस्पताल खोलो, मरीजों की सेवा करो। कि इतनी बाढ़ आती हैं, तूफान आते हैं, तुम क्या बैठे बांसुरी बजा रहे हो। यह शोभा देती है! ईसाई सोचता है—यह बात ही अशोभन है, यह बात ही बड़ी बेहूदी है, कि जहां इतना दुख है संसार में, इतने लोग पीड़ित हैं, गरीब हैं, दीन हैं, दरिद्र हैं, वहां कोई आदमी बांसुरी बजाने की चेष्टा में लगा है। खुद बांसुरी बजा रहा है और स्त्रियों को नचा रहा है। यह खुद तो पागल है और दूसरों को पागल बना रहा है। क्राइस्ट ठीक मालूम पड़ते हैं। सूली पर लटके हैं, उदास। सारे लोग सूली पर हैं। उनके लिए सूली पर लटकना ही चाहिए जीसस को।

इसलिए जीसस भगवान हैं।

लेकिन हिंदू से पूछो तो हिंदू कहता है—भगवान और उदास! उदास तो अज्ञानी होता है। और ईसाई कहते हैं—जीसस कभी हंसे ही नहीं! यह तो महा तमस की अवस्था हो गयी। उदास तो अज्ञानी होता है और सूलियों पर तो पापी चढ़ते हैं। किए होंगे पिछले जन्म में कुछ पाप, उसका फल भोग रहे हैं। और तुम्हारे सूली पर चढ़ने में किसकी सूली कम हो जाएगी! यह तो ऐसे ही हुआ कि एक आदमी को पैर में कांटा लग गया और तुम ने उसके दुख में अपने पैर में भी कांटा चुभाकर बैठकर रोने लगे। इससे क्या सार है। भई! निकालना था उसका कांटा निकालते, अपने पैर में कांटा चुभाने से क्या होगा; उसका कांटा नहीं निकलेगा, दुनिया में दुख दुगुना हो गया, और काटा चुभा लिया।

हिंदू को जीसस में भगवान दिखायी नहीं पड़ सकते। और मैं तुमसे कह देना चाहता हूं, यह खयाल रखना, भगवान तो तुम्हारी प्रीति का संबंध है। किसी को महावीर में दिखायी पड़ते हैं, किसी को बुद्ध में, किसी को कृष्ण में, किसी को क्राइस्ट में। जहां तुम अपनी भक्ति को आरोपित कर देते हो, वहां भगवान प्रकट होता है। भगवान तो सब जगह छिपा है। इसलिए किसी को पीपल के वृक्ष में भी देवता प्रकट हो जाते हैं, और किसी को नदी की धार में भी, और किसी को अनगढ़ पत्थर में भी—वह कल मैं तुमसे कह रहा था कि जब पहली दफे मील के पत्थर लगे लाल रंग पुते, तो गांव में लोग उनकी पूजा करने लगे। उन्होंने समझा हनुमान जी हैं। और बड़े खुश हुए कि सरकार भी अच्छी है कि इतने हनुमान जी! उन्होंने और उस पर जाकर सिंदुर इत्यादि पोतकर, फूल चढ़ाकर और पूजा शुरू कर दी। अंग्रेज परेशान थे कि यह क्या पागलपन है! लेकिन उसकी भी बात समझो। वह जो आदमी सिंदुर लगा दिया और जाकर पूजा करने लगा, उसकी भक्ति अगर वहां है, तो वहीं भगवान है। जहां भक्ति, वहां भगवान। पत्थर में पड़ जाए, तो पत्थर में भगवान का अवतरण होता है। और भगवान साक्षात तुम्हारे सामने खड़ा हो और तुम्हारी भक्ति न पड़े उसमें तो पत्थर है। तुम्हारी भक्ति की ही सारी बात है। तुम्हारी भक्ति से भगवान का अविर्भाव होता है। तुम्हारी भक्ति पर्दा हटाती है।

तो मूल तत्व भगवान नहीं है, मूल तत्व भक्ति है।

कहते हैं शांडिल्य—प्रकरणात्च्च। अब तक सारे जगत में भक्तों के **अनुभव** से यही सिद्ध होता है कि भगवान दोयम, भक्ति प्रथम। भगवान पहले नहीं मिलता, भक्ति का अविर्भाव पहले होता है। उसी अविर्भाव में भगवान से मिलन होता है। भक्ति की आंख चाहिए भगवान को देखने को। प्रेम की आंख चाहिए प्रेयसी को, प्रेमी को खोज लेने को।

दर्शनफलमितिचेन्न तेनव्यवधानात्।

'दर्शनलाभ ही फल नहीं है, क्योंकि उसमें व्यवधान रह जाता है।'

यह सूत्र अपूर्व है। शांडिल्य कहते हैं—भक्त की आकांक्षा भगवान का दर्शन कर लेने की नहीं है, क्योंकि दर्शन में तो दूरी रह जाती है। तुम इधर खड़े, भगवान

उधर खड़े, दर्शन हो रहा! फासला है, व्यवधान है, दूरी है। दर्शन में दूरी है। तो भक्त क्या चाहता है? भक्त भगवान में एक होना चाहता है; दर्शन नहीं, एकात्म होना चाहता है। भक्त की तब तक तृप्ति नहीं है, जब तक भक्त भगवान न हो जाए। जब तक निमज्जित न हो जाए।

ज्ञानी सस्ते में राजी हो जाता है—वह कहता है—दर्शन हो गया, चलें। देख लिया, जान लिया, पहचान लिया, प्रसन्न हो गए। यह तो ऐसे ही हुआ कि मिठाई के दर्शन कर लिए और प्रसन्न होकर चले गए। स्वाद तो लिया नहीं, माधुर्य तुम्हारे रक्त में तो बहा नहीं, तुम्हारी मांस-मज्जा में तो सम्मिलित नहीं हुआ, मिठाई के दर्शन से क्या होगा?

शांडिल्य ठीक कहते हैं कि भक्त उतने से राजी नहीं है। भक्त कहता है—यह भी कोई वात हुई! यह तो और बेचैनी बढ़ेगी। नहीं जाना था, वही अच्छा था। कम से कम इतना तो था कि तुम हो ही नहीं, हो ही नहीं तो कोई बेचैनी नहीं थी। जानकर तो अड़चन शुरू हो गई। अब तो बिना एक हुए कोई मार्ग नहीं है, एक हो जाएं तभी तृप्ति है। अन्यथा अतृप्ति की आग जलेगी और जलाएगी, तड़फाएगी।

'दर्शनलाभ ही फल नहीं है, क्योंकि उसमें व्यवधान रह जाता है' 'भक्त आत्यंतिक चाहता है, अंतिम चाहता है, जिसमें कोई दूरी न रह जाए। सभी प्रेमी यही चाहते हैं। और इसीलिए तो प्रेम में इतनी विफलता होती है। समझना।

तुम किसी स्त्री को प्रेम किए, किसी पुरुष को प्रेम किए। इतना विषाद क्यों होता है प्रेम में? प्रेमी बहुत शीघ्र ही विषाद से भर जाते हैं। विषाद कहां से आता है? प्रसन्न होना चाहिए था, तुम्हारी प्रेयसी तुम्हें मिल गयी। जानने वाले कहते हैं—मजनू धन्यभागी है कि उसको लैला नहीं मिली। मिल जाती तो विषादग्रस्त हो जाता। जिनको मिल गयी, उनसे पूछो। मिल जाने के बाद विषाद हो जाता है। जिस स्त्री को तुमने चाहा, मिल गयी, अब क्या करो? अब बैठे हैं पति-पत्नी होकर। अब कर रहे हैं एक-दूसरे का दर्शन और घबड़ा रहे हैं एक-दूसरे को, और घबड़ा रहे हैं एक-दूसरे से, और ऊब रहे हैं, अब करो क्या?

यह विषाद इसलिए पैदा होता है कि कोई उपाय नहीं इस स्त्री के साथ एक हो जाने का, इस पुरुष के साथ एक हो जाने का। कितने ही करीब आओ, दूरी रह जाती है, उस दूरी में विषाद है। मजनू को कम से कम एक तो आश्वासन रहा होगा कि कभी लैला मिलेगी, कभी मिलन होगा। उसे यह पता नहीं है कि मिलन होता ही नहीं। यह तो पता तभी चलेगा जब लैला मिल जाए और मिलन न हो, तब पता चलेगा, उसके पहले पता नहीं चलेगा। हाथ में हाथ लेकर खड़े रहो अपनी प्रेयसी का तो भी मिलन कहां है! तुम्हारा हाथ अलग, प्रेयसी का हाथ अलग। दोनों के बीच में बहुत कम दूरी है, मगर कम दूरी भी काफी दूरी है। गले से गला लगाकर खड़े हो जाओ, हृदय से हृदय लगाकर खड़े हो जाओ और दूरी है। संभोग के क्षण में भी एक क्षण को ऐसी भ्रांति होती है कि दूरी मिट गयी, मगर दूरी तो बनी ही रहती है।

इस जगत में प्रेम का विषाद यही है कि प्रेम चाहता है प्रेमी के साथ एक हो

जाए और नहीं हो पाता। यह घटना भक्ति में ही घट सकती है। क्योंकि भक्ति में दो देहों का मिलन नहीं है, दो आत्माओं का मिलन है। आत्माएं एक-दूसरे में मिल सकती हैं।

ऐसा समझो कि तुमने एक कमरे में दो दीए जलाए। तो दो दीए तो अलग-अलग होंगे, लेकिन दोनों दीयों का प्रकाश मिल जाएगा। दीए नहीं मिल सकते—तुम दीयों को कितना ही खटखटाओ, एक दूसरे के साथ लड़ाओ, मिलाओ-जुलाओ, दीए नहीं मिल सकते, दीए तो अलग ही रहेंगे। लेकिन दोनों की रोशनी मिल जाएगी—आत्मा रोशनी है—कोई व्यवधान नहीं आता। एक कमरे में दो दीए जलाओ, पचास दीए जलाओ, कोई अड़चन नहीं आती। कमरा एकदम चिल्लाने नहीं लगेगा कि यहां रोशनी ज्यादा हो गयी, अब नहीं समाएगी। कितनी ही रोशनी लाओ, समा जाएगी। और ऐसा भी नहीं होगा कि दूसरे दीए यह कहने लगें कि और दीए मत लाओ, इससे हमारी रोशनी में बाधा पड़ती है, कि अतिक्रमण होता है हमारी रोशनी का, कि हमारी रोशनी का क्षेत्र कम होता है, दूसरे कब्जा कर लेते हैं। हां, ऐसा तो हो सकता है कि एक घड़ी आ जाए कमरे में दीए न बन सकें, लेकिन रोशनी न बने ऐसी घड़ी कभी न आएगी। रोशन तत्व एक-दूसरे से मिल जाते हैं। आत्मा तुम्हारी रोशनी है, शरीर तुम्हारा दीया है।

प्रेम का अर्थ है, दो दीयों को मिलाने की कोशिश चल रही है, दो देहों को मिलाने की कोशिश चल रही है। विषाद सुनिश्चित है, विषाद अनिवार्य है। भक्ति का अर्थ है, यह भ्रांति छोड़ दी कि दीए मिलाने हैं, ज्योति में ज्योति मिलानी है। और ज्योति से ज्योति जब मिल जाती है, तो दर्शन नहीं होता, साक्षात्कार नहीं होता, ज्ञान नहीं होता, भक्त भगवान हो जाता है। अहं ब्रह्मस्मि का उदघोष उठता है। अनलहक का उदघोष उठता है। मैं और तू दो नहीं रह जाते। सच तो यह है, उस स्थिति में हमें यह भी नहीं कहना चाहिए कि भक्त बचता है, हमें यह भी नहीं कहना चाहिए भगवान बचता है, मैं शब्द सुझाना चाहता हूं—भगवत्ता बचती है। उधर भक्त खो जाता है, इधर भगवान खो जाता है। क्योंकि भगवान को होने के लिए भी भक्त का होना जरूरी है। भक्त के बिना भगवान नहीं हो सकता, भगवान के बिना भक्त नहीं हो सकता। वह तो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक गया कि दूसरा गया। तो जो बचती है, वह है—भगवत्ता, दिव्यता, असीम आलोक।

भक्ति का मार्ग आलोक का मार्ग है। आलोक पंथः।

'दर्शनलाभ ही फल नहीं है, क्योंकि उसमें व्यवधान रह जाता है।'

दृष्टत्वाच्च।

'इस प्रकार देखने में भी आता है।'

शांडिल्य कहते हैं—जो-जो गए हैं, उनसे पूछो; वे सभी यही कहेंगे—इस प्रकार देखने में भी आता है कि जैसे-जैसे भक्त भगवान के करीब पहुंचता है वैसे ही वैसे दर्शन में रस नहीं रह जाता। योग में रस होता है, दर्शन में नहीं। मिलन हो जाए, सम्मिलिन हो जाए। इस तरह मिलन हो जाए कि कहीं कोई रेखा विभाजन न करे। मेरे

हृदय में भगवान धड़के, मैं भगवान के हृदय में धड़कूं। न कोई मैं बचे, न कोई तू बचे।

जलालुद्दीन रूमी की प्रसिद्ध कविता है कि प्रेमी ने अपनी प्रेयसी के द्वार पर दस्तक दी और पीछे से पूछा गया—कौन, कौन है? और प्रेमी ने कहा—मैं हूं तेरा प्रेमी, तू मेरी पदचाप नहीं पहचानी? लेकिन भीतर सन्नाटा हो गया। उसने फिर दस्तक दी, उसने कहा, तूने मुझे पहचाना नहीं, मेरी आवाज नहीं पहचानी? और प्रेयसी ने कहा—यह घर छोटा है, यह प्रेम का घर है, यहां दो न समा सकेंगे। प्रेमी लौट गया।

दिन आए, रातें आयीं; सूरज निकला, चांद निकला; वर्ष आए, वर्ष गए; उसने बड़ी कठोर साधना की। फिर वर्षों बाद वापस आया, द्वार पर दस्तक दी, फिर पूछा गया वही प्रश्न—वही प्रश्न सदा पूछा जाता है—कौन है? अब की बार उसने कहा कि मैं नहीं हूं, तू ही है।

जलालुद्दीन रूमी ने यहां कविता पूरी कर दी है, मैं पूरी नहीं कर सकता। रूमी से मेरा कहीं मिलन हो जाए तो उनसे कहूं—अधूरी है, इसको पूरा करो। क्योंकि प्रेमी कहता है कि मैं नहीं, तू ही है। लेकिन जब तक तुम्हें तू का पता है, मैं का पता भी होगा। यह कहने के लिए भी मैं होना चाहिए कि मैं नहीं हूं। यह कौन कहता है? यह किसको स्मरण हो रहा है कि मैं नहीं हूं? और यह कौन कहता है कि तू ही है? यह भेद कौन कर रहा है मैं और तू का?

सब मौजूद है, सिर्फ जो धारा पृथ्वी के ऊपर बहती थी, वह अंतर्धारा हो गयी, वह पृथ्वी के नीचे बहने लगी। मैं अंडरग्राउंड चला गया। और यह और खतरनाक हालत है। मैं ऊपर था तो पहचान में आता था, दुश्मन साफ-साफ था। अब मैं जो है भूमिगत हो गया, अब उसने अपने को नीचे छिपा लिया। अब वह कहता है—मैं नहीं हूं। अहंकार बड़ा सूक्ष्म है, वह यह भी कह सकता है कि मैं नहीं हूं, और अपने को बचा ले सकता है।

अगर मैं उस कविता को आगे बढ़ाऊं, तो मैं उसे फिर वापस भेज दूंगा। हालांकि कठोरता लगेगी कि प्रेमी के साथ मैं ज्यादती कर रहा हूं। लेकिन मैं क्या कर सकता हूं। मेरे वश में हो तो मैं यही कहूंगा कि प्रेयसी ने कहा कि अभी कुछ फर्क नहीं हुआ, यह घर बहुत छोटा है, इसमें दो न समा सकेंगे। प्रेम गली अति सांकरी तामें दो न समाएं। प्रेमी फिर लौट गया। फिर तो और ज्यादा समय लगा होगा, और अनंत वर्ष, या कहना चाहिए अनंत जन्म। और एक दिन वह घड़ी आयी, जब प्रेमी सच में ही मिट गया। न मैं ऊपर रहा, न भीतर रहा; न चेतन में, न अचेतन में; न भूमि पर, न भूमिगत। अब मेरे सामने एक अड़चन है—अब उसको कैसे लाएं वापस प्रेयसी के दरवाजे पर। मैं नहीं ला सकता। वह भी मैं नहीं कर सकता। शायद इसीलिए जलालुद्दीन रूमी ने कविता वहीं पूरी कर दी, नहीं तो कविता बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगी, उसको पूरा कहां करोगे। कविता को आखिर कहीं शुरू और कहीं पूरा होना पड़ता है, जिंदगी तो कहीं शुरू नहीं होती और कहीं पूरी नहीं होती।

मैं भी जानता हूं जलालुद्दीन की तकलीफ, वहीं क्यों पूरी कर दी कविता को? क्योंकि जब मैं बिलकुल ही मिट जाएगा, तो फिर प्रेमी लौट नहीं सकता। फिर क्या

जरूरत है कि प्रेमी लौटे ही। मैं पसंद करूंगा कि फिर प्रेयसी उसे खोजने निकलती। क्योंकि जब मैं मिट गया प्रेमी का, तो प्रेयसी को खोजने निकलना ही पड़ेगा।

जिस दिन व्यक्ति का मैं मिट जाता है, उस दिन परमात्मा खोजने निकलता है। तुम कहीं मत जाओ, सिर्फ नहीं हो जाओ और परमात्मा भागा चला आएगा।

और तुम जाओगे भी तो कहां जाओगे? उसे खोजोगे भी तो कहां खोजोगे? वह सामने भी मिल जाएगा रास्ते पर कहीं बैठा हुआ, तो तुम पहचानोगे कैसे कि यही है? पहले कभी देखा नहीं, प्रत्यभिज्ञा कैसे होगी? जिन रूपों में तुम देख रहे हो, या सोचते हो कि होगा, उन रूपों में दुबारा नहीं होता। अगर तुम कृष्ण के भक्त हो, तुम सोचते हो कि मोर-मुकुट बांधे और एम. जी. रोड पर कहीं भीड़-भाड़ इकट्ठी किए बांसुरी बजा रहे होंगे, तो तुम्हारे पहुंचने के पहले पुलिस उनको ले जाएगी। कि यह आदमी यहां ट्रैफिक में गड़बड़ कर रहा है! और यह मोर-मुकुट क्यों बांधा है? होश में हो कि पागल हो? और तुम्हें भी मिल जाएं यह मोर-मुकुट बांधे, तो तुम भी कहोगे कि कोई कृष्णलीला होने वाली है बस्ती में? क्या बात है? या रामचंद्रजी मिल जाएं धनुष-बाण इत्यादि लिए हुए जाते, तो तुम चौंककर खड़े हो जाओगे कि भई! रामलीला होने वाली है; क्या बात है? तुम भी भरोसा नहीं करोगे, क्योंकि सत्य दुबारा नहीं दोहरता।

कृष्ण एक बार हुए, दुबारा नहीं होंगे। बुद्ध एक बार हुए, दुबारा नहीं होंगे। परमात्मा हर बार नए रूपों में आता है, इसीलिए तो पहचान नहीं हो पाती। तुम पुराने के साथ नाता जोड़े बैठे रहते हो और परमात्मा नया होकर आता है। परमात्मा का अर्थ ही है, जो प्रतिपल नया है। अब हो सकता है इस बार वह फुल पैंट इत्यादि पहनकर आ गए हों, और मोर-मुकुट न बांधा हो। फुल पैंट में देखकर ही तुम कहोगे कि खतम बात!

एक गांव में मैं मेहमान था। वहां के कालेज ने 'आधुनिक रामलीला', ऐसा एक नाटक खेला। झगड़ा हो गया वहां। गांव के पंडित बहुत नाराज हो गए। वे मजाक भी न समझ सके। प्यारा व्यंग्य था। मुझे उसका उदघाटन करने बुलाया था। मैं उदघाटन करके मुसीबत में पड़ गया। पीछे मुकदमा चला। मुझे अदालत तक में जाना पड़ा। प्यारा व्यंग्य था। लेकिन गांव के लोगों को न जंचा, क्योंकि रामचंद्र जी सिगरेट पीते। गांव के लोगों ने कहा कि मारपीट हो जाएगी, हत्या हो जाएगी—रामचंद्र जी और सिगरेट पीते हों! और सीता जी ऊंची एड़ी का जूता पहनकर चलती हैं!

मैं तुमसे कहता हूं जरा होश रखना, हो सकता है, ऊंची एड़ी का जूता पहनकर चलती हों। जमाना बदल गया, भगवान पुराना थोड़े ही रहता है, रोज नया हो जाता है। मगर हमारी आंखें पुरानी हैं, हम कहते हैं—ऐसा होना चाहिए। हमने एक ढांचा बांध रखा है। उस ढांचे में फिर कभी नहीं होगा। भगवान बासा नहीं है। तुमने कभी एक सुबह दूसरी सुबह जैसी देखी? और एक सांझ दूसरी सांझ जैसी देखी? जब सूरज सांझ को डूबता है तो जो रंग फैल जाते आकाश में, वैसे तुमने कभी पहले देखे थे? कभी दुबारा वैसा दोहरेगा फिर? कभी नहीं दोहरेगा, कुछ नहीं दोहरता। परमात्मा

परमात्मा की सृष्टि अपूर्व है। वह पुनरुक्ति नहीं करता। उसकी सृजन-क्षमता असीम है, पुनरुक्ति करे क्यों? जो आदमी रोज नयी कविता गा सकता हो, वह पुरानी क्यों गाए? और जो आदमी रोज नया गीत पैदा कर सकता हो, वह पुराना क्यों दोहराए? परमात्मा अपनी कापी नहीं करता, वह कार्बन कापियां नहीं भेजता। वह सिर्फ एक ही मूललिपि, ओरीजनल, उसके बाद बात खतम। उसके दफ्तर में डुप्लीकेटर है ही नहीं।

मगर हमारी पकड़ पुराने की होती है। तुम्हें मिल भी जाए तो तुम पहचान न सकोगे। फिर क्या उपाय है? तुम मिटो, तुम शून्य हो जाओ, भागा आता है परमात्मा चारों तरफ से, और तुम्हें भर देता है। तुमने जल को देखा? कभी जल में तुमने घड़ा भरा? तुम घड़ा भरते हो, खाली जगह छूटी, चारों तरफ से जल दौड़कर उसे तत्क्षण भर देता है। शून्य बर्दाश्त नहीं किया जाता। हवा में शून्य पैदा हो जाए, चारों तरफ से हवा दौड़कर उस शून्य को भर देती है। जहां शून्य पैदा हो जाता है, वहीं भरने के लिए ऊर्जा पहुंच जाती है। तुम जरा शून्य होकर देखो और तुम पाओगे कि पूर्ण से भर दिए गए।

शांडिल्य कहते हैं—दृष्टत्वाच्च। इस प्रकार ही देखने में आया है। जानने वालों ने इसी तरह जाना है कि जो उसके पास गया, खुद तो मिटा ही, परमात्मा भी उसके साथ ही मिट गया। भगवत्ता शेष रही।

अत एकव तदभावाद्वल्लवीनाम्।

'ज्ञान-विज्ञान आदि के अभाव रहने पर भी व्रज की गोपियां अनुराग के बल से ही मुक्ति के लाभ करने में समर्थ हो गयी थीं।'

अत एव तदभावाद्वल्लवीनाम्। उस प्यारे को पाने का एक ही उपाय है—उसके भाव से आपूर हो जाओ, आकंठ भर जाओ। अत एव तदभावाद्व...। उसका भाव तुम्हें पूरा डूबा दे। तुम उसके भाव में ही पूरे लीन हो जाओ। उस प्यारे को पाने का एक ही उपाय है—ज्ञान नहीं, तप नहीं, भाव। शांडिल्य कहते हैं—गोपियां न तो ज्ञानी थीं, न तपस्वी थीं, न उन्होंने योग साधा, न कुछ साधनाएं कीं; न हिमालय की गुफाओं में गयीं, न त्याग किया संसार का। सीधी-साधी स्त्रियां थीं, मगर भाव से भर गयीं। उसके भाव में डूब गयीं।

तुमने चित्र देखा होगा—गोपियां नाच रही हैं, कृष्ण नाच रहे हैं, और हर गोपी के साथ एक कृष्ण नाच रहा—कृष्ण उतने ही हो गए जितनी गोपियां हैं। जितने शून्य होंगे इस जगत में, उतनी ही भगवत्ताएं हो जाती हैं। महावीर भी भगवान हैं, इससे कुछ बुद्ध के भगवान होने में कमी नहीं पड़ती। मगर हम बड़े कंजूस हैं। हम सोचते हैं इसमें झंझट है। इसलिए ईसाई कहता है—सिर्फ क्राइस्ट भगवान हैं, कृष्ण नहीं। और हिंदू कहता है—कृष्ण भगवान हैं, महावीर नहीं। और जैन कहता है—महावीर भगवान हैं और बुद्ध नहीं। क्योंकि सबको ऐसा लगता है कि बहुत भगवान हो गए तो अपने भगवान की भगवत्ता कुछ कम हो जाएगी। कंजूसों का हिसाब है। वह सोचते हैं—इतने भगवान हो गए तो स्वभावतः भगवत्ता डायल्यूट हो जाएगी। उसकी मात्रा कम-कम हो जाएगी। बूंद-बूंद रह गयी। अपने ही भगवान सिर्फ भगवान होते, तो पूरा सागर होते। अब इतने हो गए, तो बस बह रहे हैं छोटे-मोटे

झरने की भांति, फिर सागर कहां। इस डर के कारण सारे धर्म एक मूढ़तापूर्ण बात में उलझ गए हैं कि जो हमारा है, बस वही सच, बाकी सब झूठ।

तुमने कृष्ण को देखा, सब गोपियों के साथ नाचते? वह बड़ा प्रतीक चित्र है। वह यह कह रहा है कि जितनी चेतनाएं हैं इस जगत में, उतनी भगवत्ताएं हो सकती हैं। भगवान अनंत है, भगवत्ताएं अनंत हो सकती हैं। तुमने उपनिषद का वचन सुना? उस पूर्ण से पूर्ण को भी निकाल लो तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। बुद्ध के भगवान होने से भगवान कुछ कम नहीं हो गया, कि अब जो भगवान होगा उसको कुछ कम मात्रा में भगवत्ता मिलेगी। भगवान उतना का ही उतना है। सारी कला तुम्हारे शून्य होने की है। तुम शून्य हुए कि तुम पूर्ण से भरे। फिर जितने शून्य होंगे उतने पूर्ण से भर जाएंगे। यह सारा जगत भगवान से सराबोर है। इसमें कोई और जगह ही नहीं है। भगवान ही भगवान भरा हुआ है। और जब तुम्हें पता नहीं है, तब भी भगवान तुम्हारे भीतर मौजूद है, सिर्फ पता नहीं है। सारी बात इतनी है कि तुम्हें लौटकर दिखायी पड़ जाए।

न तो तपश्चर्या की जरूरत है, न किसी गोरखधंधे में पड़ने की। तदभावाद्वल्लवीनाम्। उस प्यारे को पाना है, बस एक बात कर लो—अपने को मिटा दो, उसके भाव को निमंत्रण दे दो।

भक्त्या जानातीतिचेन्नभिज्ञप्तया साहाय्यात्।

'यदि ऐसा कहो कि भक्ति से ही ज्ञान का उदय होता है, तो ऐसा नहीं है, क्योंकि ज्ञान भक्ति की सहायता किया करता है।'

कुछ लोग सोचते हैं, शांडिल्य कहते हैं, शंका उठाते हैं कि कुछ लोग सोचते हैं, कुछ लोगों ने कहा भी है—कि भक्त को ही असली ज्ञान होता है। शांडिल्य कहते हैं—ज्ञानी को तो भक्ति होती ही नहीं; अगर वह ज्ञान में ही उलझ गया तो भक्ति से वंचित रह जाता है। हां, ज्ञानी अगर समझदार हो—और ज्ञानी कम ही समझदार होते हैं—क्योंकि ज्ञानी अकड़ा होता है समझ कहां? जानने की अकड़ निर्मल नहीं होने देती, विनम्र नहीं होने देती। अगर ज्ञानी समझदार हो—जो कि बहुत विरले ज्ञानियों में मिलेगा—अगर ज्ञानी समझदार हो, प्रज्ञावान हो, तो ज्ञान का उपयोग भी भक्ति को पाने के लिए करता है। ज्ञान की सहायता भक्त होने के लिए करता है, लेता है। अपने ज्ञान को समर्पित कर देता है भाव के लिए। अपने मस्तिष्क को हृदय की सेवा में लगा देता है। अपने तर्क को अपनी श्रद्धा का चाकर बना देता। है। फिर तर्क भी बड़ा काम आता है। क्योंकि वह श्रद्धा का सहयोगी हो जाता है। फिर ज्ञान भी काम में आ जाता है, वह सीढ़ी बन जाता है। भक्त उस पर चढ़कर मंदिर तक पहुंच जाता है।

शांडिल्य कहते हैं—जो ऐसा कहता हो कि भक्त को ज्ञान उपलब्ध होता है अंत में, वह तो गलत कहता है, क्योंकि ज्ञान में तो भेद रह जाता है—ज्ञाता का, ज्ञेय का भेद रह जाता है, दूरी रह जाती है। जो दर्शन में दूरी रह जाती है, वैसे ज्ञान में दूरी रह जाती है। भक्त तो एक ही हो जाता है—वहां कौन जानने वाला, कौन जाना जाने वाला। वहां तो दोनों मिल गए और एक हो गया। वहां जीवन की शुरुआत है, जानने

की नहीं। वहां अनुभूति का जन्म है, जानने का नहीं। फिर इसलिए भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि ज्ञान का जन्म भक्ति के अंत में होता है, क्योंकि ज्ञान का तो सहारा लिया सीढ़ियों की तरह। ज्ञान पर तो चढ़े और भक्ति तक पहुंचे। अज्ञानी से अज्ञानी के पास भी थोड़ा-बहुत ज्ञान है। नहीं तो वह कभी का ज्ञानी हो गया होता। अज्ञानी के पास भी थोड़ा न बहुत ज्ञान है, वही अटका रहा है—अज्ञान नहीं अटका रहा है, ज्ञान अटका रहा है।

तुमने ऐसा अज्ञानी देखा जो कहे, मैं पूर्ण अज्ञानी हूं? अगर ऐसा अज्ञानी तुम्हें मिल जाए, उसके चरण पकड़ लेना। क्योंकि वह तो ज्ञान को उपलब्ध हो गया, जो कह दे मैं पूर्ण अज्ञानी। लाओत्सु ने कहा है कि मेरी हालत महामूढ़ जैसी है। जैसे मूढ़ों की खोपड़ी खाली होती है, ऐसी मेरी है।

अज्ञानी भी दंभ करता है कि मैं जानता हूं। हो सकता है तुमसे कम जानता हूं, लेकिन जानता हूं। मात्रा का भेद होगा, गुण का भेद नहीं है। पंडित में और मूर्ख में मात्रा का भेद होता है, गुण का भेद नहीं होता। मूर्ख थोड़ा कम पंडित, पंडित थोड़ा कम मूर्ख है, बस इतना ही फर्क होता है। एक ही सीढ़ी पर हैं—एक जरा आगे, एक जरा पीछे।

ज्ञान रोकता है—अज्ञानी को भी और ज्ञानी को भी। धन्यभागी हैं वे जो ज्ञान की सहायता ले लें। जो ज्ञान की सीढ़ियां बना लें। भक्त्या जानातीतिचेन्नभिज्ञप्तया साहाय्यात्। भक्ति के अंत में ज्ञान नहीं है। भक्ति के शुरू में ही जो ज्ञान है उसको सीढ़ियां बना लेनी हैं, सहायता ले लेनी है। सीढ़ियों पर चढ़कर जब तुम मंदिर में पहुंचोगे तो भगवान मिलेगा—और सीढ़ियां नहीं मिलेंगी। नहीं तो मंदिर में पहुंचे ही नहीं अगर और सीढ़ियां मिलें।

ज्ञान तो सहयोगी हो सकता है ज्यादा से ज्यादा, अंतिम लक्ष्य नहीं हो सकता। ज्ञान साधन हो सकता है, साध्य नहीं हो सकता। तुम कोई चीज जानना चाहते हो, क्योंकि तुम कुछ और पाना चाहते हो। ज्ञान अपने आप में साध्य नहीं, उपकरण है। भक्ति साध्य है।

जैसे समझो, तुम धन कमाना चाहते हो। कोई पूछे कि धन किसलिए? तुम उत्तर दे सकते हो कि ताकि आराम से रह सकूं। कोई पूछे—आराम से किसलिए रहना चाहते हो? उससे तुम कहोगे—ताकि मैं प्रेम कर सकूं, अपने बच्चे, अपनी पत्नी...। लेकिन कोई तुमसे पूछे कि प्रेम किसलिए करना चाहते हो? तो तुम अटक जाओगे, तुम उत्तर न दे पाओगे। और जो उत्तर दे दे, वह प्रेम को जानता ही नहीं। तुम कहोगे—प्रेम तो प्रेम के लिए।

धन किसी चीज के लिए, पद किसी चीज के लिए, ज्ञान किसी चीज के लिए, लेकिन प्रेम? प्रेम गंतव्य है। प्रेम अपने आप में अपना साध्य है। भक्ति तो प्रेम की पराकाष्ठा है। इसलिए भक्ति के बाद और कोई फल नहीं है, भक्ति तो स्वयं फल है। और सब खाद बन जाए। खाद तुम बना सको तो बुद्धिमान हो। इन अपूर्व सूत्रों पर खूब ध्यान करना। इनके रस में डूबना। एक-एक सूत्र ऐसा बहुमूल्य है कि तुम पूरे

जीवन से भी चुकाना चाहो तो उसकी कीमत नहीं चुकायी जा सकती।

भक्त कुछ मांगने नहीं जाता। भक्ति में भिक्षा का भाव ही नहीं है। लेकिन फिर भी भक्त हाथ तो पसारता है। मांगना नहीं चाहता, मांगता भी नहीं; पर हाथ तो फैलाता है, झुकता तो है। और ऐसा भी नहीं कि भक्त पाता नहीं, भक्त खूब पाता है। जितना भक्त पाता है, कोई भी नहीं पाता।

मैंने
हाथ
इस भाव से
नहीं पंसारा था
बस
पसार दिया था
तुमने
जाने क्या सोचकर
मेरे हाथ में
ब्रह्मांड रख दिया
अब कहां घूमूं मैं
इसे
मुट्ठी में बांध-बांधे

जो बिना मांगे हाथ पसार दे, अहोभाग्य हैं उसके! क्योंकि मांग नहीं होगी, तो सारा ब्रह्मांड उपलब्ध हो जाएगा, सब उपलब्ध हो जाएगा। बिन मांगे मोती मिलें, मांगे मिले न चून। भिखारी को कुछ भी नहीं मिलता। भिखारी को तो कहा जाता है, आगे बढ़ो। सम्राटों को मिलता है। जीसस का बड़ा प्रसिद्ध वचन है कि जिनके पास है, उन्हें और दिया जाएगा और जिनके पास नहीं है, उनसे वह भी छीन लिया जाएगा जो उनके पास है।

प्रेम को उमगाओ। अगर तुम्हारे पास प्रेम है तो और मिलेगा तुम्हें। मांगो मत, मांगने की जरूरत नहीं है, प्रेम के पीछे अपने आप साम्राज्य चले आते हैं। प्रेम के पीछे अपने आप सब चला आता है।

जीसस ने कहा है—पहले तुम प्रभु के राज्य को खोज लो और पीछे सब अपने आप चला आता है। सब, किसी और चीज को अलग-अलग खोजने की जरूरत नहीं है।

भक्ति के पीछे आता प्रसाद।

किसी वासना से, किसी हेतु से, किसी कारण से प्रार्थना मत करना। नहीं तो प्रार्थना पहले से ही तुमने गलत कर दी। प्रार्थना करना प्रार्थना के सहज आनंद के लिए। नाचना, डोलना, मस्त होना, मदमस्त होना, मगर सहज आनंद के लिए।

यहां हजारों लोग आते, ध्यान करते, नाचते आनंदित होते; उनमें से वे ही पाते हैं, जो अकारण नाचते। यह रोज-रोज घटते देखता हूं। प्रकरणाच्च। इसके प्रकरण ही

प्रकरण यहां फैले हुए हैं। मिलता उन्हीं को, जो मांगते ही नहीं, जिन्हें मांगने का भाव ही नहीं है। जो कहते हैं—गीत में तल्लीन हो जाना, संगीत में डूब जाना, और क्या चाहिए! नाच लिए क्षणभर को—सारा अस्तित्व नाच रहा है, चांद-तारे नाच रहे हैं, इनके साथ हम भी सम्मिलित हो गए। इस रासलीला में, थोड़ी देर हम भी भागीदार हो गए, और क्या चाहिए! जो ऐसा कहेगा, उसके हाथ में सारा ब्रह्मांड आ जाता है।

तुम्हारे हाथ में भी आ सकता है, पसारो; मगर मांगने के लिए मत पसारना। पसारने के आनंद के लिए पसारना।

आज इतना ही।

छठवां प्रवचन

भक्त के मिटने में भगवान का उदय

⑥

प्रसाद से प्रभु-उपलब्धि कैसे?

★

नारद और शांडिल्य के भक्ति-सूत्रों में इतना भेद क्यों?

★

दर्शनशास्त्र में इतनी उलझनें क्यों?

★

भक्ति के साथ जिज्ञासा शब्द का उपयोग अजीब लगता है। क्या ज्ञान की जिज्ञासा में व भक्ति की जिज्ञासा में फर्क है?

★

मेरे संन्यास लेने की चाह में मित्र व प्रियजन बाधा बन रहे हैं। मैं क्या करूं?

पहला प्रश्न : प्रसाद से प्रभु-उपलब्धि। यह कैसे होती है?

प्रयास है मनुष्य के अहंकार की छाया। प्रसाद है निर-अहंकार दशा में उठी सुगंध। प्रयास से मिलता है छुद्र। आदमी की मुट्ठी बड़ी छोटी है। कंकड़-पत्थर बांध सकते हो मुट्ठी में। हिमालय को बांधने चलोगे तो मुश्किल में पड़ोगे। प्रयास से मिलता है छुद्र, आदमी की शक्ति अल्प है, इसलिए। प्रसाद से मिलता है विराट। प्रयास है बंद मुट्ठी, प्रसाद है खुला हाथ। मैं पाकर रहूंगा, इसमें ही भ्रांति है। क्योंकि मैं ही भ्रांत है। मैं नहीं हूं, ऐसा जिस दिन जानोगे, उस दिन मिल गया। मिला ही था, सदा से मिला था, सिर्फ मैं की अकड़ के कारण दिखायी नहीं पड़ता था।

प्रसाद से जो मिलता है, वह आज मिलता है ऐसा नहीं, मिला ही हुआ है, सदा से मिला हुआ है। लेकिन तुम अपनी अकड़ में मस्त हो, देखो तो कैसे देखो। सूरज निकला है, तुम अपनी अकड़ में आंख बंद किए खड़े हो। इतना ही नहीं, आंख बंद करके तुम सूरज की तलाश भी कर रहे हो। आंख खोलो और खयाल रखना, तुम लाख तलाश करो, आंख अगर बंद रहे तो प्रकाश तुम्हें मिलेगा नहीं। और प्रकाश चारों तरफ है, सब तरफ से बरस रहा है, तुम उसमें नहाए हुए खड़े हो, आंख खोलते ही मिल जाएगा।

अहंकार है बंद आंख, निर-अहंकारिता है खुली आंख। वर्षा तो हो ही रही है, लेकिन अहंकार है उल्टा घड़ा, निर-अहंकार है सीधा घड़ा। वर्षा दोनों पर हो रही है, अहंकारी पर भी और निर-अहंकारी पर भी, कुछ भेद परमात्मा की तरफ से नहीं है, पापी पर भी बरस रहा है, पुण्यात्मा पर भी—उसकी तरफ से भेद हो भी नहीं सकता—पहाड़ों पर भी बरस रहा है, खाई-खड्डों में भी, लेकिन खाई-खड्डे भर जाएंगे और पहाड़ खाली रह जाएंगे, क्योंकि पहाड़ पहले से ही भरे हैं, खाई-खड्डे खाली हैं, उनमें रिक्त अवकाश है, स्थान है।

अहंकार से भरे हो तो चूक जाओगे। और सब प्रयास अहंकार की ही उधेड़बुन हैं। मैं कुछ करके दिखा दूं—फिर चाहे धन, चाहे पद, चाहे मोक्ष—मगर मैं कुछ करके दिखा दूं। मैं अपनी पताका फहरा दूं। मैं दिखा दूं दुनिया को दुंदुभी पीटकर कि मैं कुछ हूं। मैं कोई साधारण व्यक्ति नहीं, महात्मा हूं, संत हूं, मुक्त हूं। ये जो मैं की घोषणाएं हैं, यही तो तुम्हें बांधे हैं, यही तो तुम्हारे पैरों में पड़ी जंजीरें हैं। यही तो तुम्हारे गले में लगा फांसी का फंदा है।

और तुम जिसे पाने का दावा कर रहे हो, दावे के कारण ही चूक रहे हो। जो तुम से कहे कि मैंने खोजा और पाया, जान लेना उसने अभी पाया नहीं। जो तुमसे

कहे—मैंने खोजा नहीं और पाया, समझना कि उसने पाया। खोजने से नहीं मिलता है; खोजने से खो जाता है। खोजने में ही खो जाता है। जो खोजता नहीं। वही तो ध्यान की दशा है, या प्रेम की दशा है—जो खोजता नहीं, बैठा है शांत, प्रतीक्षा करता है, खोजता नहीं। खोजने में तुम चलते हो, प्रतीक्षा में परमात्मा चलता है। प्रतीक्षा में तुमने निमंत्रण भेज दिया, असहाय छोटे बच्चे की भांति तुम रो रहे हो—मां चलेगी। खोज में तुम चल पड़ते हो।

तुम चले कि चूक हो गयी। तुम चले कि कभी न पहुंचोगे। तुम जितने चलोगे उतने ही दूर हो जाओगे। यात्रा तुम्हें सत्य से दूर ले जाएगी, पास नहीं लाएगी। सत्य की कोई यात्रा ही नहीं है। ठहरो, रुको; जैसे हो, जहां हो, वहीं समर्पित। छोड़ो यह भाव कि मैं कुछ करके दिखा दूं। तुम हो कहां? पहले इसे तो खोज लो कि मैं हूं भी? थोड़ा अपने भीतर टटोलो, जरा अपनी गांठ खोलो और टटोलो—मैं हूं भी? मैं हूं कहां? यह मैं है क्या सिवाय एक कोरे शब्द के। आज तक किसी ने कभी इसे पाया नहीं। एक भी व्यक्ति नहीं पा सका है, पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में। निरपवाद रूप से, जो भी भीतर गया, उसने पाया कि मैं नहीं है, सन्नाटा है, शांति है। कभी कोई मैं के आमने-सामने नहीं आया। जितने भीतर गया, उतना ही मैं गला। और जिस दिन केंद्र पर पहुंचा अपनी जीवन ऊर्जा के, वहां मैं था ही नहीं। उस न-मैं की दशा में जो घटता है, उसका नाम प्रसाद है।

प्रसाद का अर्थ है—तुम्हारे कारण नहीं, प्रभु के कारण। भेंट है, उसकी तरफ से है। तुम्हारे लिए सौगात है।

तुम पूछते हो—प्रसाद से प्रभु-उपलब्धि। यह कैसे होती है? प्रकरणात्च्च। प्रकरणों में देखो। जब भी किसी को हुई है, तब ऐसे ही हुई है। कभी तुमने देखा, एक पक्षी तुम्हारे कमरे में घुस आता है। जिस द्वार से आया है, वह खुला है—इसीलिए भीतर आ सका है; द्वार बंद होता तो भीतर न आ सकता। और फिर खिड़की से टकराता है, बंद खिड़की के कांच से टकराता है। चोंचें मारता है, पर फड़फड़ाता है। जितना फड़फड़ाता है, जीतना घबड़ाता है, उतना बेचैन हुआ जाता है। और खिड़की बंद है, और टकराता है। लहूलुहान भी हो सकता है। पंख भी तोड़ ले सकता है। कभी तुमने बैठकर सोचा, यह पक्षी कैसा मूढ़ है। अभी दरवाजे से आया है और दरवाजा खुला है, अभी उसी दरवाजे से वापस भी जा सकता है, मगर बंद खिड़की से टकरा रहा है। प्रकरणात्च्च। वहां खोजना प्रकरण। वहां तुम्हें शांडिल्य का सूत्र याद करना चाहिए। ऐसा ही आदमी है।

तुम इस जगत में आए हो, तुम अपने को जगत में लाए नहीं हो, आए हो—वही प्रसाद का सूत्र है। तुमने अपने को निर्मित नहीं किया है। यह जीवन तुम्हारा कर्तृत्व नहीं है, तुम्हारा कृत्य नहीं है, यह दान है, यह परमात्मा का प्रसाद है। यह द्वार खुला है, जहां से तुम आए। तुमसे किस ने पूछा था जन्म से पहले कि महाराज, आप होना चाहते हैं? न किसी ने पूछा, न किसी ने तांछा। अचानक एक दिन तुमने पाया कि आखें खुली हैं, श्वास चली है, जीवन की भेंट उतरी है। अचानक एक क्षण तुमने

अपने को जीवित पाया। सारे जगत को रसविमुग्ध पाया। इसे तुमने चुपचाप स्वीकार कर लिया। तुमने कभी इस पर सोचा भी नहीं कि मुझसे किसी ने पूछा नहीं, मैंने निर्णय किया नहीं, यह जीवन सौगात है, प्रसाद है।

यहीं से दरवाजा खुला, जहां से तुम आए। और अब तुम प्रयास की बंद खिड़की पर सिर मार रहे हो, पंख तोड़े डाल रहे हो। जहां से आए हो, जैसे आए हो, उसी में सूत्र खोजो। और ऐसा नहीं है कि तुम जब आए थे, तब प्रसाद मिला था, रोज प्रसाद मिल रहा है। यह श्वास तुम्हारे भीतर आती-जाती है, लेकिन तुम कहते हो—मैं श्वास ले रहा हूं। अहमन्यता की भी सीमा होती है! विक्षिप्त बातें मत कहो। तुम क्या सांस लोगे? सांस लेना तुम्हारे हाथ में होता, तो तुम मरोगे ही नहीं कभी फिर, तुम सांस लेते ही चले जाओगे। मौत दरवाजे पर आकर खड़ी रहेगी, यमदूत बैठे रहेंगे और तुम श्वास लेते रहोगे।

श्वास तुम्हारे हाथ में नहीं है। तुमने एक भी श्वास नहीं ली है कभी। श्वास तुम्हें ले रही है। तुम श्वास को लेते हो? यह तुम्हारा कृत्य है? तो आधी घड़ी को बंद कर दो—क्योंकि जो कृत्य है, वह बंद भी किया जा सकता है—तो आधी घड़ी श्वास मत लो, देखें! क्षण भी नहीं बीतेंगे और तुम पाओगे कि बेचैनी इतनी भयंकर हुई जा रही है! श्वास भीतर आना चाहती है, द्वार पर दस्तक दे रही है और तुम न आने दोगे, तो भी आएगी। और एक दिन तुम लाना चाहोगे और नहीं आना है, तो नहीं आएगी।

न रोक सकते हो श्वास तुम, न ले सकते हो श्वास तुम। श्वास चल रही है। अपने से चल रही है। इसलिए तो रात नींद में भी चलती है, नहीं तो नींद में तुम्हें याद रखना पड़े बार-बार आंख खोल-खोलकर देखना पड़े कि श्वास ले रहा हूं कि नहीं ले रहा हूं? कहीं नींद में भूल न जाऊं श्वास लेना, नहीं तो मारे गए। फिर तो कोई सो भी न सकेगा निश्चिंत। पति सोएगा तो पत्नी जागकर देखेगी और पत्नी सोएगी तो पति जागकर देखता रहेगा कि कहीं स्वास लेना न भूल जाए। फिर भी रोज भूल-चूकें होंगी, रोज दुर्घटनाएं होंगी, कि आज फलां मर गए, आज ढिकां मर गए, रात श्वास लेना भूल गए। नींद में याद भी कौन रखेगा? लेकिन नींद में भी श्वास चलती है। जब तुम प्रगाढ़ निद्रा में डूबे हो, जब तुम्हें अपना भी पता नहीं, कि तुम हो या नहीं, स्वप्न भी नहीं चलता तुम्हारे चित्त पर, सब खो गया, अहंकार है ही नहीं—गहरी निद्रा में कहां अहंकार।

इसलिए तो पतंजलि ने कहा कि सुषुप्ति और समाधि एक जैसे हैं। इस अर्थ में एक जैसे हैं कि दोनों में अहंकार नहीं होता। तुम हो कहां गहरी निद्रा में। सब सीमाएं समाप्त हो गयीं, तुम शून्यवत हो, लेकिन फिर भी श्वास चल रही है। सब काम चल रहा है—पेट में पाचन चल रहा है, खून की धारा बह रही है, हड्डी-मांस-मज्जा बन रहा है, सब चल रहा है। पैर पर एक कीड़ा चढ़ने लगेगा, पैर उसे झटक देगा—और तुम हो ही नहीं! और सुबह तुम बता भी न सकोगे कि रात एक कीड़ा चढ़ा था और मैंने झटक दिया था—तुम्हें याद भी नहीं है, एक मच्छर भिनभिनाएगा, हाथ से तुम हटा दोगे। यह सब चल रहा है, और तुम नहीं हो। कर्म

चल रहा है और कर्ता नहीं है, यही है सूत्र प्रसाद का। श्वास में है, सुषुप्ति में है। तुम अगर अपने जीवन को थोड़ा परखो, पहचानो, जांचो, तो तुम्हें जगह-जगह प्रकरण मिल जाएगा। सब हो रहा है। जहां जीवन भी हो रहा है, प्रेम भी हो रहा है, श्वास भी चल रही है, वहां परमात्मा भी हो सकेगा। मेरे किए नहीं, मेरे किए कुछ भी नहीं हो रहा है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हारे किए छुद्र नहीं हो रहा है। विराट नहीं होता तुम्हारे किए, छुद्र होता है। धन कमाओगे, तो ही पाओगे। पद की चेष्टा करोगे अथक, तो ही पाओगे—शायद तो भी न पाओ। प्रतिस्पर्धा करोगे, गलाघोंट प्रतिस्पर्धा में उतरोगे, दूसरों की लाशों पर चढ़ोगे, तब कहीं किसी पद पर, किसी कुर्सी पर पहुंच पाओगे। यह तुम्हारे किए से होगा।

परमात्मा छुद्र की भेंट नहीं देता। परमात्मा की भेंट छुद्र हो भी नहीं सकती। जब तुम्हें धन मिलता है, वह तुम्हारा ही प्रयास है। जब तुम्हें पद मिलता है, वह तुम्हारा ही प्रयास है। छुद्र प्रयास है, विराट प्रसाद है। अगर तुम प्रयास में ही लगे रहे, तो तुम छुद्र को ही जोड़कर मर जाओगे। हो सकता है बड़ा तुम्हारा साम्राज्य हो, सारी पृथ्वी पर तुम्हारा राज्य हो, मगर छुद्र ही होगा सब। तुम मरोगे दरिद्र। विराट को पाए बिना कोई समृद्ध नहीं होता।

और कौन पाता है विराट को? वही पाता है विराट को जिसे यह सत्य दिखायी पड़ता है कि मेरे किए क्या हो सकता है? मैं हूं कहां? मैं नहीं हूं, ऐसी प्रतीति जिसकी सघन हो जाती है, वहां प्रसाद बरसता है।

यह कैसे होता है
सो तो मैं भी नहीं जानता।
प्रयत्न के अभाव में होता है।
अनमने किसी भाव में होता है
गहरे किसी चाव में होता है
हां, घाव में भी होता है
मगर वह सिर्फ अपना न हो
कोरा कोई सपना न हो

प्रसाद अनिर्वचनीय तत्व है। इस जगत में अज्ञात की किरण है। मनुष्य के जीवन में वह द्वार है जहां से हम आए, और उसी द्वार से बाहर जाना हो सकता है। और वह द्वार सदा खुला है, लेकिन हम खिड़कियों पर, बंद खिड़कियों पर सिर मार रहे हैं। तुम्हें पक्षी को देखकर दया आती है, तुम सोचते हो—मूढ़, अरे मूढ़! दरवाजे से क्यों नहीं निकलता? तुम्हें अपने पर कब दया आएगी? क्योंकि आदमी भी ऐसा ही मूढ़ है।

यह कैसे होता है
सो तो मैं भी नहीं जानता।

क्योंकि तुम अगर जान लो कैसे होता है, तब तो तुम करने में सफल हो

जाओगे। तुम अगर जान लो कि प्रसाद कैसे घटता है, कैसे पता चल जाए, तब तो तुम आयोजन करने लगोगे कि ऐसे घटता है। यही तो लोग कर रहे हैं आयोजन। कोई बैठा है मूर्ति के सामने थाल सजाए, दीप सजाए, धूप जलाए, प्रार्थना कर रहा है; सोचता है ऐसे प्रसाद होता है। मगर यह भी कृत्य है। इसमें भी प्रसाद नहीं होगा। तुम लाख पटको सिर, तुम कितने ही पूजा के फूल चढ़ाओ और तुम कितनी ही दीपमालाएं सजाओ और तुम कितनी ही आरतियां उतारो, नहीं होगा, क्योंकि तुम कर्ता की तरह वहां मौजूद हो। लेकिन तुम सोचते हो—शायद ऐसे होगा।

हो सकता है कि किसी को ऐसे हुआ हो। किसी को ऐसे हुआ हो, इसका अर्थ है—यह प्रासंगिक बात थी कि वह आदमी हाथ से थाल उतार रहा था और उस समय घटा, निर-अहंकार घटा। मगर निर-अहंकार के घटने का कोई कार्य कारण संबंध आरती उतारने से नहीं है। किसी दूसरे को जंगल में लकड़ी काटते घट गया था। किसी तीसरे को वृक्ष के नीचे बैठे घट गया था। किसी चौथे को नाचते घट गया था। किसी पांचवें ने वीणा के तार छेड़े थे, और घट गया था। मगर इनका किसी का भी कार्य कारण संबंध नहीं है। यह प्रासंगिक है, यह प्रसंगवशात है। इसमें से किसी को भी तुम ऐसा मत सोच लेना कि ऐसा ही मैं करूंगा।

समझो, मीरा को घटा नाचते। नाच से नहीं घटा, नाचते घटा। नाच से घटता, तब तो फिर हमारे हाथ में सूत्र आ गया। फिर तो हम भी नाचेंगे और घट जाएगा। फिर कितने लोग तो नाच रहे हैं, और कितनी तो नर्तकियां हैं—मीरा से बेहतर नर्तकियां हैं दुनिया में—मगर उन्हें नहीं घट रहा है। नाच से घटता होता तो जो अच्छा नाचता है, उसे पहले घट जाता। मीरा को घटा, उसके नाच में कुछ ज्यादा नाच जैसा था भी नहीं—अनगढ़ था—मगर घटा। कारण नहीं था। नाचते-नाचते खो गयी, अहंकार गिर गया; नृत्य रहा, नर्तक विदा हो गया—और जहां मैं नहीं रहा, वहीं घटा।

बुद्ध को बिना नाचते घटा। अब बुद्ध के बाद ढाई हजार वर्षों से कितने लोग वृक्षों के नीचे बैठे हैं आंख बंद किए और नहीं घटता। वृक्ष के नीचे, आंख बंद करके बैठने से नहीं घटता है। यह संयोग की बात थी। यह कहीं भी घट सकता है। यह तुलाधर वैश्य को दुकान पर बैठे-बैठे घटा था; तराजू तौलते-तौलते घटा था। यह जनक को सिंहासन पर बैठे-बैठे घटा था। यह कृष्ण को संसार के मध्य में घटा था। यह महावीर को संसार से हट जाने पर, पहाड़ की कंदराओं में नग्न खड़े-खड़े घटा था। मगर इनमें से कोई भी कारण नहीं है। ऐसा नहीं है कि जैसे हम पानी को गर्म करते हैं तो सौ डिग्री पर पानी भाप बनता है, ऐसा कोई कारण नहीं है। नहीं तो फिर सभी को नग्न होकर गुफा-कंदराओं में खड़ा होना पड़े, तब घटे।

अध्यात्म विज्ञान नहीं है। अध्यात्म विज्ञान जैसी छुद्र सीमाओं में आबद्ध नहीं है। हां, एक सूत्र खयाल में रखना—जब भी तुम नहीं हो, तब घटता है। इसलिए तुम्हारे कारण तो नहीं घटता है। तुम्हारे द्वारा नहीं घटता। तुम्हारे प्रयास से नहीं घटता। तुम्हारी अनुपस्थिति में घटता है। तुम कहो तो भी कैसे कहो!

यह कैसे होता है

सो तो मैं भी नहीं जानता।

जिनको घट गया है, वे भी नहीं जानते कि कैसे होता है। उनसे भी तुम पूछो तो वे कहेंगे—मुश्किल है बात; मत पूछो; इतना ही कह सकते हैं कि हमारे किए नहीं घटा। नकारात्मक परिभाषा दे सकते हैं। हमने नहीं पाया। हम तो थक गए थे, हार गए थे, गिर गए थे; हम तो विषाद में पड़े थे कि सब व्यर्थ गया, कुछ भी पाया नहीं जा सका, दौड़े बहुत, तड़फे बहुत, साधना की, साधन किए, सब करके देख लिया और एक क्षण गिर गए थे थककर, तभी पाया कि घट गया।

अव्याख्या है। प्रयत्न के अभाव में होता है। लेकिन कुछ बातें कही जा सकती हैं नकारात्मक। प्रयत्न के अभाव में होता है। जब तुम यत्न करते होते हो, तब तुम चिंता से भरे होते हो। यत्न यानी चिंता। होगा कि नहीं होगा; ऐसे करूं तो होगा कि वैसे करूं तो होगा; जिस मार्ग पर चला हूं, ठीक है कि नहीं ठीक है; और भी बहुत मार्ग हैं; हजार विकल्प उठते हैं मन में, विचार उठते हैं मन में—किसके पीछे जाऊं, किस शास्त्र को मानूं, किस मंदिर को पूजूं, यह मंदिर ठीक है कि गलत? कोई उपाय भी तो नहीं, कोई कसौटी भी तो नहीं। यह शास्त्र सत्य है कि मिथ्या? सत्य कहने वाले लोग हैं और इसी शास्त्र को मिथ्या कहने वाले लोग हैं, किसकी मानूं, किसकी सुनूं, किसकी बूझूं?

यत्न तो चिंता लाता है। और यत्न में भ्रांति बनी ही रहती है कि मैं कोशिश कर रहा हूं, आज नहीं कल, कल नहीं परसों पाकर रहूंगा।

प्रयत्न के अभाव में होता है
अनमने किसी भाव में होता है

जब मन नहीं होता, ऐसे किसी भाव में होता है, जब कोई तरंग नहीं होती विचार की; कोई कल्पना, कोई वासना, कोई स्मृति मन को कंपाती नहीं, मन निष्कंप झील जैसा होता है; 'अनमने किसी भाव में होता है,' इतना ही कह सकते हैं कि जहां मन नहीं होता वहां होता है, जहां मैं नहीं होता वहां होता है।

गहरे किसी चाव में होता है'। किसी गहरी प्रीति में, किसी गहरी श्रद्धा में, किसी गहरी भक्ति में होता है। लेकिन ध्यान रखना, भक्ति का अर्थ ही होता है कि भक्त मिटा। भक्त और भक्ति, दोनों साथ नहीं होते। जब तक भक्त होता है तब तक भक्ति कहां है? तब तक भक्त बाधा बना रहता है। जब भक्त चला जाता है, तो भक्ति। गहरे किसी चाव में होता है। मगर ये बातें सांकेतिक हैं।

हां, घाव में भी होता है
मगर वह सिर्फ अपना न हो
कोरा कोई सपना न हो!

किसी दूसरे की पीड़ा में भी हो जाता है। किसी दूसरे के दुख को अनुभव करने में भी हो जाता है। क्यों? क्योंकि जब तुम किसी दूसरे के दुख को गहरा अनुभव करते हो, तो मिट जाते हो। असल में दूसरे का दुख अनुभव करने के लिए तुम्हें मिटना ही होगा। वह फिर अहंकार का ही त्याग है। जब तक तुम हो, तब तक तुम

दूसरे का दुख अनुभव न कर सकोगे। तुम मिटे, तो दूसरे का दुख अनुभव होता है।

जीसस भी ठीक ही कहते हैं कि सेवा से होता है। सेवा का अर्थ है—दूसरे के दुख की प्रतीति। ऐसे जैसे अपना हो। इतनी समानुभूति।

हां, घाव में भी होता है
मगर वह सिर्फ अपना न हो

क्योंकि अपना घाव हो तो वह अहंकार में ही अटका रहता है। अपना घाव अपना ही घाव है। मैं की तड़फ मैं की ही तड़फ है।

मगर वह सिर्फ अपना हो
कोरा कोई सपना न हो

सत्य हो, वास्तविक हो; सहानुभूति झूठी न हो, कोरी न हो, बात-बात की न हो, हार्दिक हो, अस्तित्वगत हो, तो कभी-कभी तब भी हो जाता है। चाव में हो जाता है गहरे, घाव में हो जाता है गहरे, अनमने भाव में हो जाता है, प्रयत्न के अभाव में हो जाता है।

पूछते हो—प्रसाद से प्रभु-उपलब्धि कैसे? यह कैसे होती है? इतना ही कहा जा सकता है प्रयत्न की व्यर्थता समझो। प्रयत्न की असारता समझो। शांडिल्य कहते हैं—दृष्टत्वाच्च। ऐसा ही देखने में आता है। कैसा देखने में आता है? कभी तुमने देखा, किसी आदमी को राह पर देखा, चेहरा पहचान में आ गया, जबान पर नाम रखा है, तुम कहते हो—जीभ पर नाम रखा है, और फिर भी याद नहीं आता। और चेहरा याद आ रहा है और नाम भी याद आ रहा है और कहते हो जीभ पर रखा है—और फिर भी याद नहीं आ रहा है, बड़ी मजे की बात कह रहे हो! जीभ पर रखा है तो बोलते क्यों नहीं? फिर भी मैं मानता हूं कि तुम ठीक ही कह रहे हो—जीभ पर रखा है, वह भी अनुभव है, और नहीं आता, यह भी साथ है; और आदमी पहचाना हुआ है, यह भी पक्का है। तुम बड़ी उधेड़बुन करते हो। तुम बड़ा सिर मारते हो। तुम पहेली बूझने की कोशिश करते हो—इधर से, उधर से; स्मृति में ताकते हो, झांकते हो, उधेड़बुन करते हो, पर्तें उलटते हो, गड्ढा खोदते हो स्मृति में कि कहीं से सूत्र मिल जाए, कहीं से कोई सहारा मिल जाए, और जितना तुम सहारा खोजते हो उतना ही मुश्किल होता है, बात तो साफ होने लगती है,कि याद है, याद है, जबान पर रखा है, बिलकुल रखा है, अभी निकल पड़े ऐसा है, और फिर भी पकड़ में नहीं आता।

फिर तुम थक गए। फिर तुमने सोचा—छोड़ो भी, भाड़ में जाने दो, करना भी क्या है। तुम मुंह फेरकर अपने घर चल पड़े और अचानक—जब तुम कोई प्रयास नहीं कर रहे थे, छोड़ ही चुके थे बात, भूल ही चुके थे बात, राह में लगे फिल्म का पोस्टर पढ़ रहे थे—अचानक नाम याद आ गया है। क्या हुआ? तुमने जब प्रयत्न किया तो तुम बहुत चिंतित हो गए। जब तुमने बहुत प्रयास किया याद करने का तो तुम्हारी चेतना बड़ी संकीर्ण हो गयी। सिकुड़ गयी, तन गयी; चिंता ने तुम्हें घेर लिया, तुम मुक्त न रहे। तुम्हारे भीतर पड़ा था नाम, उठना भी चाहता था, लेकिन तुम इतने सिकुड़ गए, इतना तनाव से भर गए कि जगह न रही नाम को ऊपर आने की। फिर

तुमने छोड़ दिया प्रयास, फिर तुम विश्राम को पा गए, फिर तनाव ढीला हो गया, संकीर्णता खो गयी, सरलता से नाम ऊपर तिर आया, सतह पर आ गया। ऐसा अनुभव तुम्हें रोज होता है—प्रयास से नहीं हुआ, अप्रयास से हो गया।

परमात्मा पाना नहीं है, परमात्मा तुम्हारे भीतर मौजूद है। सिर्फ उसकी स्मृति खो गयी है, स्मृति लानी है। बुद्ध ने कहा है—सम्मासती। उसकी सम्यक् स्मृति लानी है। या नानक, कबीर कहते हैं—सुरति लानी है। विस्मरण हो गया है, भूल गए हैं; पहचान थी, जबान पर रखा है, मगर भूल गए हैं, बीच में कुछ धुंधले पर्दे आ गए हैं, धुआं आ गया है—सदियां हो गयीं मुलाकात हुए। परमात्मा को तुम जानते तो हो ही, क्योंकि उससे ही आए हो। वह पक्षी जो खुले आकाश से आया है, खुले द्वार से आया है, खुले आकाश को जानता है। जानता है खुले आकाश को, इसीलिए तो भागने की कोशिश कर रहा है। चोट कर रहा है बंद खिड़की पर कि निकल जाऊं बाहर। तुम भी जन्मों से बंद दरवाजों पर चोटें कर रहे हो। और एक दरवाजा सदा खुला हुआ है। वह एक दरवाजा अप्रयास का है, सब दरवाजे प्रयास के हैं। वह एक दरवाजा विश्राम का है, सब दरवाजे श्रम के हैं। वह एक दरवाजा समर्पण का है, सब दरवाजे संकल्प के हैं।

तुम थोड़ा विश्राम करो, तुम खिड़की पर सिर मत मारो, यह पक्षी अगर थोड़ी देर रुक जाए, बैठ जाए, एक दफा पुनर्विचार कर ले कि क्या हुआ; मैं आया कहां से? किस दिशा से आया? कैसे आया? उसी से क्यों न लौट चलूं! परमात्मा भविष्य में मिलने वाला लक्ष्य नहीं है, अतीत में खो गया स्रोत है। परमात्मा आगे नहीं है, पीछे है। तुम्हारे भीतर खड़ा है। तुम चारों दिशाओं में भागे जा रहे हो। जितना भागते हो उतना चूकते हो।

प्रसाद का अर्थ होता है—अब नहीं भागूंगा, अब नहीं खोजूंगा, अब अपने पर भरोसा और नहीं करूंगा।

मुझसे कहो उठो मैं उठूंगा
कहो मुझसे चलो मैं चलूंगा
गाओ कहोगे तो
वह मेरे लिए सहज है
शाम से भोर तक
धरती से आसमान के छोर तक
गाऊंगा, उठूंगा, चलूंगा
घुमाऊंगा जैसे धरती को
तुम्हारे इशारे पर

अपने को हटा लेता हूं। मुझसे कहो उठो, मैं उठूंगा; मुझसे कहो चलो, मैं चलूंगा; मैं अपने को बीच से हटा लेता हूं। तुम्हारी मर्जी अब से मेरा जीवन होगा। अब से न मैं हूं, न मेरी कोई मर्जी है।

ऐसे किसी भाव में, अनमने भाव में ऐसे किसी चाव में, ऐसे किसी गहरे चाव

में, प्रयत्न के अभाव में, ऐसे किसी घाव में प्रसाद घटता है।

तुम थोड़ी जगह खाली करो, तुम जरा बीच से हटो, तुम्हारे अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है। और उलझाव बढ़ता चला जाता है, क्योंकि तुम इसी बाधा को साधन बना रहे हो। उलझाव बढ़ता चला जाता है कि जो बीमारी है, उसी को तुम औषधि समझ रहे हो। व्याधि को जिसने औषधि समझ लिया, उसकी विडंबना भयंकर है। समझकर तो तुम पीते हो औषधि, और पीते हो व्याधि; तो व्याधि बढ़ती चली जाती है। तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारा और कोई दुश्मन नहीं है। मगर तुम सोचते हो कि मैं मेरा मित्र, और सारी दुनिया मेरी दुश्मन। तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारे और परमात्मा के बीच और दीवार नहीं है। तुम और हजार तरह की दीवालें कल्पना करते हो, मगर यह एक दीवाल तुम नहीं देखते कि तुम्हारे अतिरिक्त और कोई दीवाल नहीं है। तुम न मालूम कहां-कहां की व्याख्याएं खोज लाते हो, बड़ी दूर की कौड़ियां तलाश लाते हो! कभी कहते हो कि पिछले जन्मों के कर्मों के कारण, बहुत पाप किए होंगे, इसलिए परमात्मा नहीं मिल रहा है। मगर एक बात तुम नहीं छोड़ते कि मेरे करने की ही बात है—पाप किए थे इसलिए नहीं मिलता, मगर कृत्य मेरा है। पुण्य करूंगा तो मिलेगा। मैं को नहीं छोड़ते।

तुम्हारा साधु भी मैं को नहीं छोड़ता, तुम्हारा असाधु भी मैं को नहीं छोड़ता। इसीलिए तो मैं कहता हूं—तुम्हारे साधु-असाधु में बहुत फर्क नहीं है। तुम्हारे साधु-असाधु में इतना ही फर्क है कि एक आदमी पैर के बल खड़ा है और उसी के बगल में दूसरा आदमी वैसा का वैसा आदमी सिर के बल खड़ा हो गया है। बस, इतना ही फर्क है। तुम्हारे पापी में और तुम्हारे पुण्यात्मा में कोई फर्क नहीं है। पापी सोचता है पाप कर रहा हूं, पुण्यात्मा सोचता है पुण्य कर रहा हूं, मगर कर्ता का भाव दोनों में अवशिष्ट है। और जो रोक रहा है, वह कर्ता का भाव है।

मेरा मन
एक वन है इस घड़ी
जिसमें से
गंधवाही तुम्हारे
समीकण का झोंका
गुजर रहा है
उसे करते हुए अस्थिर
और भरते हुए उसमें
प्रवालवर्णी
छंद
वेणु-बंधी
स्वर

तुम अपने को ऐसा समझो जैसा बांसों का वन। हवा का झोंका गुजर रहा है—सारे वन को कंपाता हुआ, नए स्वरों को जगाता हुआ। एक-एक पत्ते से संगीत

झर रहा है, नाद हो रहा है, ओंकार जग रहा है। तुम अपने को ऐसा ही समझो—वेणुवन; जिसमें ऊर्जा परमात्मा की है, जिसमें प्रवाह उसका है—वही बोलता, वही चलता, वही उठता। तुम अपने को हटा लो। और तुम अपने को हटाते ही पाओगे—बन गए तुम वेणु; गीत उसके तुमसे बरसने लगे, बन गए तुम वेणु। वेणु बनने की कला प्रसाद पाने की कला है। खाली, भीतर से कोरे। बांसुरी में भीतर कुछ भी नहीं होता—पोला बांस ही तो बांसुरी है। पोलापन ही तो उसका सारा राज है। पोली है बांसुरी, इसीलिए तो गीत को ले आती है।

जिस दिन तुम पोले बांस की तरह हो जाओगे, उसी दिन परमात्मा का गीत तुमसे झरने लगेगा। गीत तो अभी भी बहने को तत्पर है, मगर तुम भरे हो। और तुम किससे भरे हो? तुमसे ही भरे हो। मैं के अतिरिक्त तुम्हारा और कोई भराव नहीं। मैं गया कि तुम शून्य हुए। उस महाशून्य में प्रसाद की वर्षा है। उस महाशून्य में तुम्हारे हाथ पसर जाएंगे, सारा ब्रह्मांड तुम पर बरस उठेगा।

सब मिल सकता है—एक तुम खो जाओ। इतनी कीमत चुका दो। भक्ति का सारा सार इतनी छोटी सी बात में है—भक्त मिट जाए, तो भगवान हो जाए।

दूसरा प्रश्न: नारद और शांडिल्य, दोनों ने भक्ति-सूत्र कहे हैं। आप नारद के भक्ति-सूत्र पर बोल चुके और अब शांडिल्य के भक्ति-सूत्र पर विमर्श कर रहे हैं। मेरे जैसे सामान्य मानस को दोनों के दृष्टिकोण में बड़ा भेद दिखायी पड़ता है। एक ही मार्ग पर इतना भेद क्यों?

अभेद की हमारी इतनी आकांक्षा क्यों है? हम भेद को बर्दाश्त क्यों नहीं कर पाते हैं? हम सारे जगत को एक रंग में क्यों रंग देना चाहते हैं? और क्या सारे फूल एक रंग के होंगे तो यह जगत इतना सुंदर होगा? क्या सारे गायक एक ही गीत गुनगुनाएगें, ऊब पैदा नहीं होगी? सारी वीणाओं से एक ही स्वर उठेगा और एक ही स्वर, और एक ही स्वर गूंजता रहेगा, तो तुम आत्मघात करने की नहीं सोचने लगोगे?

अभेद की हमारी इतनी आकांक्षा क्यों? हम भेद से इतने भयभीत क्यों हैं? इतने वृक्ष हैं; कोई इस ढंग का है, कोई उस ढंग का है। कोई छोटा है, कोई बड़ा है। किसी पर छोटे सफेद फूल आते, किसी पर रंगीन फूल आते—नीले, पीले, लाल, कितने फूल हैं! कितनी हरियालियां हैं! कितने पक्षी हैं! कितने उनके कंठगान हैं—जगत वैविध्य है। वैविध्य में सौंदर्य है। वैविध्य में संपदा है। जरा सोचो—एक ही जैसे वृक्ष, एक ही जैसे लोग, एक ही जैसे पक्षी, जीवन बड़ा दरिद्र हो जाएगा।

शांडिल्य शांडिल्य हैं। नारद नारद हैं। नारद ने अपने ढंग से बात कही है। जो जाना वह तो एक है, लेकिन जब नारद कहेंगे तो नारद के ढंग से ही कहेंगे। शांडिल्य कहेंगे, शांडिल्य के ढंग से कहेंगे। और अगर शांडिल्य का अपना कोई ढंग न हो कहने को, तो शांडिल्य कहेंगे ही क्यों? नारद ने कह दिया, बात खतम हो गयी।

परमात्मा चुकता नहीं। अनंत-अनंत लोगों ने कहा है, फिर भी अनकहा रह गया है। अनंत-अनंत लोग आगे भी कहेंगे, और फिर भी अनकहा रह जाएगा। चुकता ही नहीं। हम एक तस्वीर बनाते हैं, तस्वीर बन नहीं पाती कि हम पाते हैं कि परमात्मा ने चेहरा बदल लिया, कि परमात्मा नया हो गया। फिर तस्वीर बनाओ, फिर सूत्र रचो, फिर गीत गाओ। परमात्मा सतत प्रवाही है। परमात्मा कोई बंद तालाब की तरह नहीं है, बहती हुए गंगा की धारा है। रोज नयी उमंग है, रोज नया उल्लास है। एक तरंग नारद की उठी, एक तरंग शांडिल्य की। सागर में कितनी लहरें हैं, दो लहरें एक जैसी होती हैं? हालांकि एक ही सागर की हैं, फिर भी दो लहरें एक जैसी नहीं होतीं। और अच्छा ही है कि नहीं होतीं।

तुम यह चिंता ही छोड़ दो कि सब ज्ञानियों को एक जैसी बात कहनी चाहिए। अक्सर ऐसा होता है, अज्ञानी एक जैसी बात कहते हैं। जैसे, एक अज्ञानी हिंदू और दूसरे अज्ञानी हिंदू की बात में कोई फर्क पाओगे? एक अज्ञानी मुसलमान और दूसरे अज्ञानी मुसलमान की बात में तुम कोई फर्क पाओगे? अज्ञानी तो एक-दूसरे को दोहराते हैं, फर्क हो कैसे सकता है? अज्ञानी तो तोते हैं, उधार हैं, फर्क हो कैसे सकता है? लेकिन एक हिंदू ज्ञानी और दूसरे हिंदू ज्ञानी में फर्क हो जाता है। क्योंकि दोनों मूल स्रोत से लाते हैं, दोहराते नहीं किसी को; किसी की पुनरुक्ति नहीं करते। कोई ज्ञानी किसी की कार्बन कापी नहीं होता, मूल होता है, मौलिक होता है। जानकर आता है मूल स्रोत से। और जब दोहराता है, तो उसका गीत ऐसा होता है जैसा पहले कभी किसी ने नहीं गाया—इसीलिए तो गाने योग्य होता है। नहीं तो शांडिल्य क्यों परेशान हों? कह दिया नारद ने, शांडिल्य कह देते बस ठीक है, वही ठीक है।

तुमने उस वकील की कहानी सुनी? होशियार आदमी था। घर में उसके एक मेहमान हुआ, एक मित्र आया, रात दोनों एक ही कमरे में सोए। मित्र बड़ा हैरान हुआ, वकील बैठा रहा। मित्र ने पूछा, क्या करते हो? वकील ने कहा—प्रार्थना; और आकाश की तरफ हाथ उठाया, बिजली बुझायी और कहा—डिट्टो, और जल्दी से सो गया। मित्र ने पूछा कि यह कैसी प्रार्थना? बहुत प्रार्थनाएं सुनी हैं, डिट्टो! वकील ने कहा—रोज-रोज वही-वही क्या दोहराना? कल भी की थी, परसों भी की थी, एक दफे कर दी अब रोज तो डिट्टो कह देते हैं, वह समझ जाते होंगे। भगवान को इतनी अकल तो होगी ही! अब उसी को क्या दोहराना!

अगर नारद की ही बात शांडिल्य को कहनी थी तो कह देते—डिट्टो; बात खतम हो गयी। नारद के सूत्र पर अपने दस्तखत भी कर देते! लेकिन शांडिल्य को अपना गीत गाना था। यह जगत बड़ा सृजनात्मक है। और जब तक शांडिल्य अपना गीत न गा लें, तब तक चैन नहीं होगा। जब तक नारद अपना गीत न गा लें, तब तक चैन नहीं होगा।

मैंने एक किरण देखी है
जो सविता है
मैंने एक हंसी सुनी है

जो कविता है
एक फूल देखा है मैंने
जो सचमुच कमल है
एक रंग देखा है मैंने
जो ठीक धवल है
सारे रंग जिसमें समाए हुए हैं
तपाए हुए सोने से अलग
हर तरह के होने से अलग
यह किरन यह हंसी
यह फूल यह रंग
मगर आनंद नहीं है मेरे जीवन का
क्योंकि मैं इसे
देखता रह गया हूं
छंद नहीं कर पाया हूं अभी

देख लेने से ही कुछ नहीं होता, जब तक छंद न कर पाओ। जब तक बांध न पाओ अभिव्यक्ति। परमात्मा का गीत सुन लेने से कुछ नहीं होता, जब तक गीत तुमसे बहे न, और पहुंच न जाए लोगों तक, तब तक अधूरा रहता है। तब तक बात पूरी नहीं हुई। जब तक तुम कह न दो जो तुमने सुना है, तब तक तुमने सुना है इस पर भी तुम्हें भरोसा नहीं आता। और जब तक सुना है या नहीं सुना, इसकी स्पष्ट प्रतीति नहीं होती—जब ज्ञानी बोलता है, तभी स्वयं भी उसके सामने स्पष्ट होता है कि क्या उसने देखा, क्योंकि जो देखा वह तो बड़ा विराट था, अराजक था, एक नीहारिका थी अनंत, जो देखा वह तो बहुत बड़ा था; उस देखे को जब वह सार-सूत्र में बांधने लगता है, तब स्वयं भी स्पष्ट होता है।

एक बड़ी प्रसिद्ध मिश्री कहावत है कि दुनिया में किसी बात को सीखने का सबसे अच्छा ढंग उसे दूसरों को सिखाना है। बात में कुछ सार है। सार यही है कि जब तुम किसी दूसरे को सिखाने बैठते हो, तब तुम्हारे सामने भी चीजें साफ होनी शुरू होती हैं। तुमने भी देखा होगा—प्रकरणात्त्च—कभी-कभी तुम्हें भी ऐसा अनुभव हुआ होगा कि जब तुम किसी को कुछ समझा रहे थे, तब तुम्हारे सामने बात पहली दफे साफ हुई। हालांकि तुम्हारे अनुभव में थी, लेकिन धुंधली-धुंधली थी, प्रकट नहीं थी, स्पष्ट नहीं थी। किसी को समझाते थे, तब अचानक स्पष्ट हो गयी। किसी को समझाते थे, तब तुम भी समझ गए। इसीलिए तो संवाद का इतना आनंद है। इसीलिए तो सत्संग का इतना अर्थ है। इसीलिए तो ज्ञानियों ने कहा है—जब दो भक्त मिलें आपस में, तो प्रभु की प्रशंसा करें। प्रभु की स्तुति एक-दूसरे से करें। क्यों? क्योंकि उस स्थिति में उन्हें भी साफ होगा, दूसरे के भीतर भी उमंग उठेगी। तुमने जो जाना हो, उसे कहना। कहते-कहते तुम पाओगे तुमने और भी जाना। कहकर तुम पाओगे बात अब तक धुंधली थी, आज प्रकट हुई, साफ हुई, रेखाबद्ध हुई।

और एक अनिवार्य है सत्य की अनुभूति में बात कि उसे कहना ही पड़ेगा। जो जाना है, उसे बांटना पड़ेगा। नहीं तो फूल अपनी गंध को अपने भीतर ही रख लेते। नहीं तो दीया अपनी रोशनी को अपने भीतर ही बंद कर लेता। नहीं तो बादल अपने जल पर पहरा बिठा देते। लेकिन बादल बरसेंगे, बरसना ही होगा। तुम यह मत सोचना कि जब धरती प्यासी होती है तो धरती ही तड़फती है बादलों के लिए, बादल भी तड़फते हैं प्यासी धरती के लिए। उतनी ही तड़फ दोनों तरफ, आग दोनों तरफ। इधर धरती तड़फती है कि पानी मिले, उधर बादल तड़फता है कि कोई प्यासा मिले। बादल भी बोझिल हो जाता है।

तो जब बुद्ध पचास वर्षों तक गांव-गांव घूमते हैं, वह प्यासी धरती की तलाश है। महावीर चालीस वर्षों तक निरंतर उपदेश देते हैं, वह फूल की गंध है जो नासापुटों की तलाश कर रही है। नारद और शांडिल्य ने यह सूत्र कहे हैं, यह दीए की किरणें हैं, जो आंखों की खोज कर रही हैं। कोई आंख मिले, तो पहचान हो। अक्सर तुमने एक तरफ से ही बात देखी है, तुमने देखा कि शिष्य खोजता है, तुमने यह नहीं देखा कि गुरु भी खोजता है। शिष्य तो खोजता है, क्योंकि उसे मिला नहीं। गुरु खोजता है, क्योंकि उसे मिल गया।; दोनों खोजते हैं। और जब दोनों मिल जाते हैं तो अपूर्व आनंद होता है—शिष्य को आनंद होता है कि जो उसे नहीं था दिखा जो उसके पास नहीं था, मिला; और गुरु को आनंद है कि जो था, उसे बांट सका। उऋण हुआ। परमात्मा ने उसे दिया था, उसने किसी को दे दिया। प्रसाद में जो मिला है, वह जब तुम प्रसाद की तरह बांट दोगे तभी उऋण होओगे, नहीं तो ऋण रह जाएगा। ऋणी हो जाओगे। इतना परमात्मा ने दिया है, उसे क्या करोगे अब? उसे किसी को दे दो।

यह मार्ग है परमात्मा तक उसे वापस लौटा देने का—क्योंकि दूसरे भी परमात्मा हैं।

जब गुरु अपने शिष्य को कुछ देता है, तो वह परमात्मा को ही लौटा रहा है—शिष्य के बहाने, शिष्य के निमित्त। त्वदीयं वस्तु गोविंद तुभ्यमेव समर्पयेत्। वह यह कह रहा है कि ठीक, अब गोविंद तुम आ गए शिष्य बनकर, यह लो, सम्हालो। तुम्हारी चीज तुम्हीं को लौटा देते हैं।

देखते हो, आकाश में बादल उठे, बरसे हिमालय पर, गंगा में भर गया जल ही जल और चली गंगा सागर में उलीचने। और फिर सागर में बादल उठेंगे और फिर गंगा में भरेंगे और फिर गंगा उलीचेगी अपने को, ऐसा वर्तुल है। जीवन एक वर्तुल है। जो मिला है, देना पड़ेगा। गंगा कहेगी—क्यों दूं, बामुश्किल तो मिलता है; महीनों प्रतीक्षा करती हूं, तब कहीं वर्षा के मेघ घिरते हैं, अषाढ़ आता है। नहीं दूंगी, रोक रखूंगी। गंगा अगर रोक रख ले, तो वर्तुल टूट जाएगा। फिर बादल नहीं आएंगे, अषाढ़ में बादल भी नहीं आएंगे। अषाढ़ में बादल इसीलिए आते हैं, क्योंकि गंगा जाती है और गंगा सागर में लीन हो जाती है। तो सागर से फिर बादल उठते हैं।

परमात्मा ने नारद को दिया, नारद ने फिर गंगा में डाल दिया। फिर कोई नारद उठेगा, परमात्मा फिर नारद में बरसेगा। इस जीवन की वर्तुलाकार प्रक्रिया को समझो।

मगर हर एक का भेद होगा। गंगा की अपनी चाल है, गंगा का अपना लहजा है; सिंधु की अपनी चाल है, अपनी मौज, अपना ढंग। सब की अपनी शैली। गंगा अपने ढंग से बहती, ब्रह्मपुत्र अपने ढंग से बहती। सब सागर की तरफ जातीं और सब सागर से ही पातीं, लेकिन यह वैविध्य सुंदर है। नहीं तो जीवन बड़ी ऊब हो जाए।

भेद अभिव्यक्ति का है, अनुभूति का नहीं। जो जाना है, वह एक है। इसलिए शास्त्र कहते हैं—जानने वालों ने एक को जाना, लेकिन बहु विधि से कहा है। विविधता कथन में है।

तीसरा प्रश्न : दर्शनशास्त्र में इतनी उलझनें क्यों हैं?

दर्शन में उलझन नहीं है, शास्त्र में तो उलझन होगी। शास्त्र का मतलब ही होता है—उलझन। शास्त्र का अर्थ होता है—सिद्धांत, तर्क शब्द। दर्शन तो सीधा-साफ है। दर्शन का तो अर्थ होता है—दृष्टि, देखने की क्षमता, आंख। जब आंख खाली होती है, अहंकार से शून्य होती है, विचार से मुक्त होती है, मन बाधा नहीं डालता, तब जो घटता है वह दर्शन। जैसा है, उसको वैसा ही देख लेना दर्शन है। दर्शन और दर्शनशास्त्र के भेद को याद रखना। दर्शनशास्त्र दर्शन नहीं है, दर्शनशास्त्र ऊहापोह है। दर्शन दृष्टि है, अनुभव है। दर्शनशास्त्र में तो झंझट होगी। दर्शनशास्त्र में तो एक-एक प्रश्न में हजार प्रश्न लगेंगे और एक-एक उत्तर से हजार प्रश्न उठेंगे। और दर्शनशास्त्र में कभी किसी प्रश्न का कोई हल नहीं हो पाता। पांच हजार साल के इतिहास में दर्शनशास्त्रियों ने एक प्रश्न भी हल नहीं किया है। पांच हजार साल में उन्होंने बहुत प्रश्न पूछे हैं, लेकिन एक भी उत्तर नहीं दिया है। वे दे ही नहीं सकते।

दर्शनशास्त्री तो करीब-करीब ऐसा ही है, जैसे तुमने कहानी सुनी होगी कि पांच अंधे एक हाथी को देखने गए थे। आंख तो पास नहीं, तो टटोला। किसी ने हाथी के पैर को टटोला तो उसने कहा, खंभे की भांति है, स्तंभवत। और किसी ने हाथी के कान को टटोला और उसने कहा, सूप की भांति है। और किसी ने कुछ, किसी ने कुछ। पांचों अंधों में बड़ा विवाद हो गया। जो जिसने टटोला था, उस ने उसी को पूरा हाथी सिद्ध करने की कोशिश की। पूरा किसी ने देखा नहीं, क्योंकि पूरा देखने के लिए आंख चाहिए—बड़ा विवाद मच गया।

वे अंधे अब भी विवाद कर रहे हैं। उन्हीं पांचों ने सारे दर्शनशास्त्र रचे हैं। जिनको हम दार्शनिक कहते हैं वे और कोई नहीं, वे ही अंधे हैं। और उनके विवाद का कोई अंत कभी नहीं होना है।

मैं विश्वविद्यालय में भर्ती हुआ, विद्यार्थी था, दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी था। मेरे जो वृद्ध प्रोफेसर थे, उन्होंने पहले ही दिन अपना जो पहला व्याख्यान दिया, वह बड़ा प्यारा था। वेदांती थे, वे और मानते थे कि जगत माया है। मगर मेरे साथ उनकी झंझट हो गयी। उन्होंने उदाहरण बड़ा अच्छा लिया था। उन्होंने उदाहरण लिया था

जगत को माया सिद्ध करने के लिए, बड़ा वैज्ञानिक उदाहरण लिया था। उन्होंने कहा—जैसे समझो, न्याग्रा का जलप्रपात। हजारों साल से गिर रहा था, शून्य था और शांत था, आवाज नहीं थी।...सुनने वाले हम सब चौंके भी थे कि आवाज नहीं थी, न्याग्रा के पास तो भयंकर आवाज होती है। इतनी ऊंचाई से गिरता है, इतना जलधार गिरती है, चट्टानों पर गिरता है—पहाड़ तोड़ डाले हैं न्याग्रा ने, इससे बड़ा कोई प्रपात नहीं है, आवाज नहीं! लेकिन फिर जल्दी ही समझ में आया कि उनका मतलब क्या है—वह विज्ञान का सहारा ले रहे थे। फिर उन्होंने कहा कि हजारों-हजारों साल तक कोई आवाज नहीं हुई, सन्नाटा था। फिर एक जंगली आदमी न्याग्रा के पास पहुंचा। जैसे ही वह पास पहुंचा कि सारा जगत न्याग्रा के उदघोष से भर गया। मतलब कि जब तक कान न हो, तब तक आवाज नहीं हो सकती? बात तो ठीक है, आवाज हो ही कैसे सकती है! न्याग्रा गिरता रहे, लेकिन जब तक कोई कान न आए पास...तुम थोड़ा सोचो तो तुम्हें समझ में आ जाएगा कि आवाज हो ही कैसे सकती है; आवाज के लिए कान बिलकुल जरूरी है, अनिवार्य है।

हम सब विद्यार्थी चौंके थे कि बात तो ठीक है। फिर उन्होंने कहा—और अब तक कोई रंग न था न्याग्रा में। रंग भी नहीं हो सकता बिना आंख के। ये वृक्ष हरे हैं, ऐसा मत कहो, तुम जब चले जाते हो तब ये हरे नहीं रह जाते। तुम जब चले गए—आंख चली गयी तो फिर कैसे हरे? हरे में तो संबंध है वृक्ष और तुम्हारी आंख का। जो पीलिया से बीमार है, उसको ये पीले दिखायी पड़ते हैं—वह दूसरे ढंग की आंख है, उसका संबंध दूसरा बनता है। जब कोई आंख नहीं होती, तब वृक्ष अपना रंग छोड़ देते हैं, क्योंकि रंग किसके लिए होगा? रंग तो आंख का संबंध है।

हम सब जानते थे कि वे वेदांती हैं और इस जगत को माया सिद्ध करना चाहते हैं। तो उन्होंने कहा कि देखते हो; न तो रंग है न्याग्रा में कोई, न ध्वनि है कोई। ध्वनि और रंग, दोनों आदमी के सिर में हैं। वह जो आदमी आया था, दोनों घटनाएं उसके सिर में घटीं।

मुझे झंझट की आदत रही है, मैं खड़ा हो गया। मैंने उनसे पूछा कि आप कहते हैं कि ध्वनि नहीं बाहर। उन्होंने कहा—ठीक। रंग नहीं बाहर। उन्होंने कहा—ठीक। वे बहुत प्रसन्न थे कि एक विद्यार्थी शिष्य मिला। मैंने पूछा—सब सिर के भीतर। उन्होंने कहा—बिलकुल ठीक। और मैंने कहा—सिर? सिर सिर के बाहर है या सिर के भीतर? वे थोड़े बेचैन हुए। अब झंझट! अगर कहें सिर सिर के बाहर है, तो बाहर को स्वीकार करना पड़ेगा। अगर कहें सिर सिर के भीतर है, तो भी झंझट होगी। क्योंकि किसके भीतर कौन? भीतर होने के लिए कुछ बाहर होना चाहिए। उन्होंने एक क्षण सोचा, फिर उन्होंने कहा कि सिर भी सिर के ही भीतर है। तो मैंने कहा—तब दो सिर हो गए। भीतर होने के लिए एक सिर, जिसके भीतर है, और एक सिर, जो भीतर है। एक सिर बाहर हो गया। जो बाहर सिर है, वह बाहर है, जो भीतर सिर है, वह भीतर है।

वे थोड़े बेचैन हो आए, उनको पसीना आ गया; उन्होंने कहा—तुम बाहर

चले जाओ। मैंने कहा—कहां है बाहर? आपके सिर में कि मेरे सिर में? मैं जाऊं कहां?

वे तो इतने नाराज हो गए—सब वेदांत वगैरह भूल गए! वे चिल्लाने लगे—निकल जाओ! मैंने कहा—आप चिल्लाते रहें, मगर में निकलकर जाऊं कहां? आपकी आवाज भी मेरे सिर के भीतर है, बाहर भी मेरे सिर के भीतर है, आप भी मेरे सिर के भीतर हैं। मैं आपके सिर के भीतर हूं, बहुत झंझट है, उलझाव है बहुत।

मैंने उनसे कहा—यह तो ऐसा हुआ कि एक चूहा अपनी पोल में घुसा और जब पोल में घुस गया तो उसने खींचकर अपनी पोल को भी अपने भीतर कर लिया। अब मैं पूछता हूं कि पोल चूहे के भीतर है कि चूहा पोल के भीतर है? पहले चूहा पोल के भीतर गया, तब तक बात ठीक है। फिर उसने खींचकर पोल को भी अपने भीतर कर लिया। अब जिस पोल को उसने अपने भीतर किया, उसके वह भीतर था, तो अब चूहा कहां है?

वह तो एकदम क्लास छोड़ दिए। उन्होंने तो जाकर इस्तीफा लिख दिया, उन्होंने कहा—या तो यह विद्यार्थी पढ़े, या मैं पढ़ाऊं, दोनों साथ नहीं चल सकते हैं। यह झंझटी है।

मुझे बुलाया प्रिंसिपल ने, उन्होंने कहा कि क्या झंझट है? मैंने कहा—झंझट नहीं, यह दर्शनशास्त्र है। झंझट उन्होंने ही खड़ी की है। मैं तो बिलकुल चुप ही था। मैं तो न्याग्रा प्रपात था, चुप बैठा था, घंटेभर वह बोले। जब मैंने प्रिंसिपल को सारी उलझन समझायी तो उन्होंने कहा—मेरा सिर घुमा दोगे। मैं समझ गया कि वह क्यों छोड़कर चले गए हैं। जब मैंने उनको कहा कि चूहा पोल के भीतर कि पोल चूहे के भीतर? तो उन्होंने कहा—भई! मैं बिलकुल दार्शनिक नहीं हूं। और जब तुमने उनका सिर घुमा दिया तो मेरा घुमा दोगे। अच्छा हो कि तुम छोड़ दो यह कालेज। मैंने कहा—फिर मैं दर्शनशास्त्र कहां पढ़ूंगा? अफवाह पूरे नगर में—जहां मैं पढ़ता था—सब जगह धीरे-धीरे खबर पहुंच गयी, तीन दिन तक वह कालेज नहीं आए, उन्होंने तो जिद ही कर ली। और उनकी जिद ठीक भी थी। मैं भी जानता हूं कि उन्होंने ठीक ही किया, क्योंकि यह बात आगे बढ़ नहीं सकती थी, मैं वहीं अटकाए रखता। या तो उनको स्वीकार करना पड़े कि बाहर है—जो वह कर नहीं सकते थे। वह बड़े बर्कले के मानने वाले और शंकर के मानने वाले वेदांती थे, विज्ञानवादी थे, वह मान नहीं सकते थे। और जब तक वह मान न लें, तब तक मैं छोड़ सकता था।

प्रिंसिपल ने मुझे बहुत समझाया कि बूढ़े आदमी हैं वह और मैं जानता हूं कि तुम्हारा कोई कसूर नहीं है। उन्होंने ही समस्या उठायी, यह भी ठीक है, लेकिन उनको हम छोड़ना भी नहीं चाहते, प्रतिष्ठित हैं। तुम किसी दूसरे कालेज में भर्ती हो जाओ। मुझे कोई दूसरा कालेज जगह देने को राजी नहीं—वे कहें, पहले यह लिखकर दो कि प्रश्न तो नहीं उठाओगे।

दर्शनशास्त्र तो झंझट है। तुमने प्रश्न उठाया कि झंझट शुरू हुई। उत्तर दिया

कि झंझट और बढ़ी। फिर कोई अंत नहीं। लेकिन दर्शन झंझट नहीं है।

धर्म का रस दर्शन में है, दर्शनशास्त्र में नहीं। और भक्ति का रस तो दर्शन से भी गहरा जाता है—देखने में ही नहीं, होने में। ये बड़ी अलग बातें हैं। दर्शनशास्त्र का रस तो सिर्फ यही है कि सोचो, विचारो, जिज्ञासा करो, तर्क बिठाओ; समाधान; समस्याएं, कहीं पहुंचता नहीं आदमी, यह जाल बढ़ता चला जाता है। यह ढेर बड़ा हो जाता है। इसमें आदमी विक्षिप्त हो सकता है। इसलिए अगर दार्शनिक विक्षिप्त हो जाते हैं, तो कुछ आश्चर्य नहीं। दार्शनिक होने के लिए बड़ी प्रगाढ़ मेधा चाहिए, नहीं तो विक्षिप्त हो ही जाओगे।

धर्म की आकांक्षा दर्शन में है—देखना चाहता है धर्म; सोचना नहीं, देखना। भक्ति की आकांक्षा और भी गहरी है—देखना भी क्या, देखने से भी क्या होगा। सोचने से गहरा है देखना, देखने से भी गहरा है होना; भक्त तो भगवान होना चाहता है, भक्त तो भगवत्ता को अनुभव करना चाहता है। देखा, वह भी तो दूर रह गया।

इसलिए शांडिल्य ने कहा कि भक्त चाहता है—न ज्ञान, न दर्शन—समस्त रूप से एक हो जाना, एकात्मभाव।

चौथा प्रश्न: सूत्र 'अथातो भक्तिजिज्ञासा' में भक्ति के लिए जिज्ञासा शब्द का उपयोग करना कुछ अजीब लगता है। क्योंकि जिज्ञासा में कुछ बौद्धिक गंध है। क्या जिज्ञासा जिज्ञासा में फर्क है—ज्ञान की जिज्ञासा में और भक्ति की जिज्ञासा में? क्या प्रेम भी विस्मय और रस-विभोरता की जगह जिज्ञासा बन सकता है?

शब्द में कोई अर्थ नहीं होता। अर्थ तो तुम डालते हो—वही हो जाता है। शब्द तो कृत्रिम हैं, कामचलाऊ हैं। अगर शब्दों में ही कोई अर्थ होता होता, तब तो तुम चीनी भाषा पहली दफे सुनते और समझ जाते। शब्द तो सुनायी पड़ते हैं, लेकिन अर्थ पकड़ में नहीं आता। शब्दों में कोई अर्थ नहीं हैं। शब्दों में अर्थ तो निरंतर अभ्यास से डाला जाता है। तुम बार-बार उस शब्द का वही अर्थ मानकर चलते हो, बार-बार वही अर्थ प्रयोग करते हो, तो धीरे-धीरे वही अर्थ घनीभूत हो जाता है। लेकिन शब्द में कोई अर्थ नहीं है। एक ही शब्द का अलग-अलग लोग अलग-अलग अर्थ कर सकते हैं। और अलग-अलग परंपराएं एक ही शब्द का अलग-अलग अर्थ करती हैं।

जैसे जिज्ञासा शब्द। ज्ञानी इसका उपयोग करता है खोजबीन के अर्थ में, बौद्धिक अर्थ में। भक्त इसका अर्थ करता है खोजबीन के ही अर्थ में, लेकिन अस्तित्वगत खोजबीन। जानना ही नहीं चाहता, होना चाहता है—होने की जिज्ञासा।

शब्द अपने आप में कोई नियत अर्थ नहीं रखते हैं। अर्थ तो प्रयोग से निर्णीत होता है। इसलिए तुम ऐसा भी पाओगे कि जो शब्द एक परंपरा में एक अर्थ रखता है, दूसरी परंपरा में दूसरा अर्थ रखता है। जैसे दर्शन शब्द। हिंदू-परंपरा में अर्थ रखता है—दृष्टि। जैन-परंपरा में अर्थ रखता है—श्रद्धा। सम्यक् दर्शन का जहां जैन-परंपरा

उपयोग करती है वहां अर्थ होता है—सम्यक श्रद्धान। वहां दृष्टि अर्थ नहीं होता। उनका भी कारण है। वे कहते हैं—जो देख लिया, उसमें श्रद्धा आ जाती है। वह फिर दृष्टि नहीं रह जाती, श्रद्धा बन जाती है। जो देख लिया ठीक से, वह श्रद्धा का अंग हो गया।

सुकरात ने कहा है—ज्ञान क्रांति है, ज्ञान मुक्ति है, ज्ञान शक्ति है, ज्ञान का सुकरात का अर्थ अपना है, शांडिल्य से बहुत भिन्न है। ज्ञान का अर्थ होता है, जिसने वस्तुतः जागकर देख लिया, जान लिया, जिसका सारा अज्ञान मिट गया, जिसके भीतर ज्ञान की ज्योति जगमगा उठी। तो ठीक कह रहा है सुकरात कि ज्ञान शक्ति है, ज्ञान मुक्ति है, ज्ञान क्रांति है।

लेकिन शांडिल्य कहते हैं—ज्ञान से क्या होगा? ज्ञान का अर्थ शांडिल्य करते हैं—जानकारी। इनफर्मेशन, सूचना। तुम ईश्वर के संबंध में कितना ही जान लो, इससे क्या होगा? जब तक ईश्वर को न जानो। तुम सूरज के संबंध में कितना ही जान लो, इससे क्या होगा? जब तक तुम्हारी आंख अंधी है, जब तक तुम्हारी आंख न खुले।

अब फर्क हो गया। सुकरात जब ज्ञान का उपयोग करता है, तो उसका अर्थ यही है कि आंख खुलकर जो दिखे। और शांडिल्य जब ज्ञान का उपयोग करते हैं, तो उनका अर्थ यह होता है कि अंधा भी प्रकाश के संबंध में जान सकता है—वह ज्ञान; और आंख वाला जो जानता है, वह ज्ञान नहीं, वह तो एकात्म हो गया, वह लीन हो गया।

शब्द-शब्द का भेद स्मरण रखना।

तुम पूछते हो: सूत्र 'अथातोभक्तिजिज्ञासा' में भक्ति के लिए जिज्ञासा शब्द का उपयोग करना कुछ अजीब लगता है। वह अजीब तुम्हें अपनी आदत के कारण लगता होगा। तुम्हें शांडिल्य के साथ चलना पड़ेगा। तुम्हें शांडिल्य के शब्दों का अर्थ पकड़ना होगा। शांडिल्य के साथ सहानुभूति रखनी होगी। तुम अपना अर्थ मत डालो, नहीं तो शांडिल्य के साथ संबंध टूट जाएगा। तुम कहते हो: क्योंकि जिज्ञासा में कुछ बौद्धिक गंध है...। वह बौद्धिक गंध तुम्हें दिखायी पड़ रही है, शांडिल्य को नहीं है। शांडिल्य को बुद्धि से कुछ लेना-देना नहीं है। शांडिल्य की सारी जिज्ञासा हार्दिक है।

तीन तल हो सकते हैं जिज्ञासा के—बौद्धिक, हार्दिक, अस्तित्वगत। शांडिल्य की जिज्ञासा हार्दिक है। भक्ति हृदय से शुरू होती है, अस्तित्व पर पूर्ण होती है। ज्ञान का मार्ग मस्तिष्क से शुरू होता है, हृदय में प्रवेश करता है, अस्तित्व पर पहुंचता है। भक्ति का मार्ग बुद्धि को छोड़ ही देता है एक किनारे। वह शुरू ही हृदय से होता है और सीधा अस्तित्व की यात्रा करता है। ध्यान का मार्ग हृदय से भी शुरू नहीं होता। वह बुद्धि को भी छोड़ देता है, हृदय को भी छोड़ देता है। वह सीधी छलांग लेता है अस्तित्व में। वह सीढ़ियों को हटा ही देता है, छलांग है। तो जब ध्यानी कहेगा जिज्ञासा, तो उसका अर्थ होगा—अस्तित्व की जिज्ञासा। प्रेमी कहेगा जिज्ञासा, उसका अर्थ होगा—हृदय की, भाव की जिज्ञासा। ज्ञानी कहेगा जिज्ञासा, उसका अर्थ

होगा—विचारणा, ऊहापोह।

एक डाक्टर की प्रेक्टिस काफी चलती थी। जगह छोटी पड़ने लगी, तो उसे दूसरी मंजिल पर—उसी मकान में—बड़ा स्थान मिल गया। तो वह पहली मंजिल से हटकर दूसरी पर चल गया। लेकिन दूसरी पर जाने के बाद उसकी प्रेक्टिस एकदम मर गयी। लोग आते ही न। उसके अपने मरीज भी दूसरों के पास जाने लगे। वह बड़ा हैरान था। उसने एक दिन एक मरीज से पूछा कि बात क्या है—राह पर मिल गया मरीज—कि बात क्या है? तुमने मेरे पास आना बंद क्यों कर दिया? औरों ने भी बंद कर दिया है। उस मरीज ने कहा—इसका कारण है सीढ़ियों पर लगी हुई पटिया। डाक्टर ने कहा—सीढ़ियों पर लगी पटिया! उससे क्या लेना-देना! मरीज ने कहा—लेना-देना है। डाक्टर ने पूछा, मतलब? उसने कहा, उस पटिया पर लिखा है, ऊपर जाने का रास्ता। अब ऊपर कोई जाना नहीं चाहता है इसीलिए तो हम आते हैं डाक्टर के पास। अब यह ऊपर जाने का रास्ता, मरीज डर गए हैं: गांव में खबर फैल गयी है कि भाई! जरा सावधान।

कौन ऊपर जाना चाहता है!

एक धर्मसभा में धर्मगुरु ने लोगों को समझाया कि कौन-कौन स्वर्ग जाना चाहते हैं, हाथ उठा दें। सब ने हाथ उठा दिए, सिर्फ मुल्ला नसरुद्दीन बैठा रहा। उसने दुबारा पूछा, वह जरा हैरान हुआ, उसने कहा नसरुद्दीन, सुना या नहीं? झपकी लेते हो? स्वर्ग जाना है कि नहीं? नसरुद्दीन फिर भी बैठा रहा। तब उसने दूसरा सवाल पूछा कि जो नर्क जाना चाहते हैं, वे हाथ उठा दें। किसी ने हाथ नहीं उठाया—मुल्ला ने भी नहीं उठाया। तब उस धर्मगुरु ने पूछा कि तुम आखिर जाना कहां चाहते हो? उसने कहा, मैं अपने घर जाना चाहता हूं। जब घर से चलने लगा तो पत्नी ने कहा था—मस्जिद से सीधे घर आना नहीं तो टांग तोड़ दूंगी। कोई स्वर्ग जाए, कोई नर्क जाए, मुझे घर जाना है। मैं टांग नहीं तुड़वाना चाहता।

अपने-अपने भाव हैं, अपने-अपने शब्दों के अर्थ हैं।

मैंने यह पिछले दो या तीन दिन पहले भक्ति का अर्थ कहा—माधुर्य, कि भक्ति तो ऐसे है जैसे सभी मिठाइयों में माधुर्य है। जैसे सभी मिठाइयों में शक्कर। कमल ने दूसरे दिन एक प्रश्न लिखकर भेज दिया कि पहले आश्रम के भोजनालय में दही में शक्कर मिलती थी, अब क्यों नहीं मिलती? उसको याद आ गयी होगी शक्कर शब्द सुनकर। मैं किस शक्कर की समझा रहा हूं, तुम्हें कौन सी शक्कर याद आ रही है! मगर अपने-अपने अर्थ हैं।

एक संवाददाता जब एक फिल्म के सेट पर पहुंचा, तो देखा खंडहरों का सेट लगा हुआ है। बेहोश अभिनेत्री पड़ी है, टूटी कुर्सियां, टूटी मेजें, सेट की टूटी हुई दीवारें, और खिड़कियों के बीच हांफता हुआ हीरो खड़ा है। निर्देशक भी बेहोश है। असिस्टेंट, लाइटमैन वगैरह सब चुप खड़े हैं। सिर्फ हीरो का सेक्रेटरी निश्चिंत खड़ा सिगरेट पी रहा है। संवाददाता ने पूछा—यह सब क्या? सेट की दीवारें टूटी हुई हैं, लोगों की यह हालत, यह सब कैसे हुआ? हीरो का लड़ाई के दृश्य में इन्वाल्वमेंट

बढ़ गया था, सेक्रेटरी बोला। इतना ज्यादा इन्वाल्वमेंट कैसे हो गया? सेक्रेटरी ने कहा—इंस्टालमेंट नहीं मिला था।

अपने शब्द हैं, अपने अर्थ हैं।

वित्त-विभाग के एक अधिकारी को, जो अविवाहित थे, किसी भी विभाग की धन संबंधी मांगों में बड़ा अड़ंगा लगाने की आदत थी। वह विभागों द्वारा आयी हुई फाइलों पर यह लिखकर कि 'यह बताने का कष्ट करें कि पहले आपका काम कैसे चलता था' वापस कर देते थे। इसी बीच उनका विवाह निश्चित हुआ, उन्होंने सभी को शादी के कार्ड भेजे, दूसरे दिन सभी कार्ड वापस आ गए और सब पर यही लिखा था 'यह बताने का कष्ट करें कि पहले आपका काम कैसे चलता था?'

शब्दों का अर्थ संदर्भ में होता है। शब्दों का अर्थ संदर्भ के बाहर नहीं होता। शांडिल्य का जिज्ञासा से अर्थ है—हार्दिक जिज्ञासा।

आखिरी प्रश्न : : संन्यास लेना चाहता हूं लेकिन मित्र और प्रियजन बाधा बन रहे हैं! मैं क्या करूं?

वे मित्र न होंगे, और वे प्रियजन भी नहीं। जो तुम्हें स्वतंत्रता न दें स्वयं होने की, वे मित्र भी नहीं हो सकते, प्रियजन भी नहीं हो सकते। मित्रता का अर्थ ही यही है कि हम दूसरे को इतना चाहते हैं कि वह जो होना चाहे, हम उसे स्वतंत्रता देंगे। और प्रियजन का अर्थ यही है कि तुम जिस दिशा में जाना चाहो, जहां तुम्हारा आनंद हो, हमारे आशीर्वाद तुम्हारे साथ होंगे—चाहे हम विचार से राजी न भी हों।

प्रेम मुक्ति देता है। और जो मुक्ति न दे, वह प्रेम नहीं है।

मैं तुमसे कहता नहीं कि तुम संन्यास लो। मैं तुमसे इतना ही कहना चाहूंगा—जो तुम्हारी अंतर्भावना हो, हिम्मत से उस पर बढ़ो। संन्यास की हो तो, संसार की हो तो। दूसरे को निर्णायक मत बनाओ। दूसरे के हाथ में निर्णय मत दो, अन्यथा तुम अपने जीवन को नष्ट कर लोगे। तुम्हारा जीवन तुम्हारा है, तुम इसे अपने ढंग से जीओ।

मैं जो हूं
मुझे वही रहना चाहिए
यानी
वन का वृक्ष
खेत की मेंड
नदी की लहर
दूर का गीत
व्यतीत
वर्तमान में
उपस्थित

भविष्य में
मैं जो हूं
मुझे वही रहना चाहिए
तेज गर्मी
मूसलाधार बर्षा
कड़ाके की सर्दी
खून की लाली
दूब का हरापन
फूल की जर्दी
मैं जो हूं
मुझे वही रहना चाहिए
मुझे अपना
होना
ठीक-ठीक सहना चाहिए
तपना चाहिए
अगर लोहा हूं
तो हल बनने के लिए
बीज हूं
तो गड़ना चाहिए
फूल बनने के लिए
मैं जो हूं
मुझे वही बनना चाहिए
धारा हूं अंतःसलिला
तो मुझे कुएं के रूप में
खनना चाहिए
ठीक जरूरत मंद हाथों से
गान फैलाना चाहिए मुझे
अगर मैं आसमान हूं
मगर मैं
कब से ऐसा नहीं
कर रहा हूं
जो हूं
वही होने से डर रहा हूं

जीवन में एक ही असफलता है—तुम जो हो, वही होने से डरना। और जीवन में एक ही सफलता है—वही हो जाना, जो तुम्हारी अंतःप्रेरणा है। तुम जो होना चाहो, हो जाओ। सब झंझट मोल लो, सब कीमत चुकाओ, यही साहस है। डरपोक

रहे, जीवन से चूक जाओगे। कायर रहे, जीवन की संपदा तुम्हारी कभी भी न हो सकेगी। विजेता बनना हो तो एक बात तय कर लेनी चाहिए कि कुछ भी हो परिणाम, सारा संसार साथ हो कि विपरीत, मैं अपनी डगर पर चलूंगा। फिर चाहे मेरी डगर नर्क ही क्यों न जाती हो। मैं अपने हृदय की सुनूंगा।

और जो व्यक्ति अपनी सुनकर नर्क भी जाए, वह स्वर्ग पहुंच जाता है। और जो दूसरे की सुनकर स्वर्ग भी जाए, वह निश्चित ही नर्क पहुंच जाता है।

आज इतना ही।

सातवां प्रवचन

स्वानुभव ही श्रद्धा है

7

प्रागुक्तं च ।।१६।।

एतेन विकल्पोऽपि प्रत्युक्तः ।।१७।।

देवभक्तिरितरस्मिन् साहचर्य्यात् ।।१८।।

योगस्तूभयार्थमपेक्षणात्प्रयोजवत् ।।१९।।

गौण्यातु समाधिसिद्धिः ।।२०।।

भक्ति परम है। उसके पार कुछ और नहीं, भगवान भी नहीं।

भक्ति है वह बिंदु जहां भक्त और भगवान का द्वैत समाप्त हो जाता है; जहां सब दुई मिट जाती है; जहां दो-पन एक-पन में लीन हो जाता है। ऐसे एक-पन में अगर उसे एक भी कहें तो ठीक नहीं। क्योंकि जहां दो ही न रहे, वहां एक का भी क्या अर्थ? ऐसी शून्य-दशा है भक्ति, या ऐसी पूर्ण-दशा है भक्ति। नकार से कहो तो शून्य, विधेय से कहो तो पूर्ण, बात एक ही है। लेकिन भक्ति के पार और कुछ भी नहीं।

जैसे बीज होता, फिर बीज से अंकुर होता, फिर अंकुर से वृक्ष होता, फिर वृक्ष में फूल लगते और फिर फूल से गंध उड़ती—गंध है भक्ति जीवन का अंतिम चरण, जहां जीवन परिपूर्ण होता, सुगंध, आखिरी घड़ी आ गयी, इसके पार अब कुछ होने को नहीं, इसलिए सुगंध में संतोष है। न पार होने को कुछ है, न पार की आकांक्षा हो सकती। आकांक्षा करने वाला भी गया, आकांक्षा की जा सकती थी जिसकी वह भी समाप्त हुआ। ऐसी निष्कांक्षा, ऐसी वासना-शून्य, ऐसी रिक्त-दशा है भक्ति। रिक्त, अगर संसार की तरफ से देखें—तो सारा संसार समाप्त हुआ। भरी-पूरी, लबालब, अगर उस तरफ से देखें, परमात्मा की तरफ से देखें—क्योंकि शून्य घट में ही परमात्मा का पूर्ण भर पाता है।

शांडिल्य ने कहा : प्रागुक्तं च।

मैं जो कहता हूं, नया नहीं है, ऐसा पूर्व में भी कहा गया है। सदा-सदा कहा गया है। प्रागुक्तं च का अर्थ होता है—पूर्व में भी ऐसा ही कहा गया; जिन्होंने जाना उन्होंने भी ऐसा ही कहा है; जब भी जाना, तभी ऐसा कहा गया है; भविष्य में भी जो जानेंगे, ऐसा ही कहेंगे। अभिव्यक्तियां भिन्न होंगी, शब्द अलग होंगे, भाषाएं पृथक होंगी, पर जो कहा गया है सार में वह यही है।

अज्ञानी एक जैसी बातें कहें तो भी बातें भिन्न-भिन्न होती हैं, क्योंकि अज्ञान निजी है, वैयक्तिक है, सबका अलग-अलग है, जैसे सपने सबके अलग-अलग होते हैं, झूठ सबके अलग-अलग होते हैं। सपना यानी झूठ। जो सपना तुमने देखा है, वह दुनिया में कोई कभी नहीं देखेगा। तुम अपने सपने में किसी को निमंत्रण भी नहीं दे सकते कि आओ, मेरा सपना देखो। बिलकुल निजी है। अपने प्रीतम को भी नहीं बुला सकते, अपने निकटतम मित्र को भी नहीं कह सकते कि मेरे सपने में आज आ जाना, वहां बस तुम अकेले हो—पृथक, अस्तित्व से टूटे हुए, अपने में बंद। इसीलिए तो सपना झूठ है, क्योंकि उसका कोई गवाह भी नहीं है। तुम एक गवाह नहीं खोज सकते अपने सपने के लिए। इसलिए तो सपना झूठ है, क्योंकि उसका कोई साक्षी नहीं है।

जिस जगत में हम संगी-साथी खोज लेते हैं, वह ज्यादा सच है। इसलिए जो

वृक्ष तुमने आंख खोलकर देखा है, वह ज्यादा सच है—क्योंकि तुमने भी देखा', तुम्हारे पड़ोसी ने भी देखा, तुम्हारे मित्रों ने भी देखा, तुम्हारे शत्रुओं ने भी देखा। लेकिन जो सपने का वृक्ष है, आंख बंद करके तुमने देखा, बस तुमने देखा—शत्रुओं की तो बात दूर, मित्र भी उसे देख नहीं सकते। मित्रों की तो बात दूर, तुम भी उसे दुबारा देखना चाहो तो असमर्थ हो। तुम्हारे भी हाथ में नहीं है। एक तरंग थी झूठ की; तुम नींद में सोए थे, तुम इतने सोए थे कि झूठ को झूठ की तरह न देख पाए और सच मान लिया। नींद के कारण झूठ सच लगा।

अज्ञानियों की भाषा चाहे एक हो, चाहे उनके वक्तव्य एक हों, मगर वे अलग-अलग बात कहते हैं। अलग-अलग ही कहेंगे, क्योंकि वे अलग-अलग हैं। उन्होंने अभी एकात्म नहीं जाना; सर्व के साथ संबंध नहीं जाना, अभी सेतु ही नहीं बना। अभी सब अपने-अपने में बंद, द्वार-दरवाजे बंद किए बैठे हैं।

अज्ञानी एक सा भी बोलें तो उनकी बात का अर्थ एक नहीं होता—हो ही नहीं सकता। ज्ञानी अलग-अलग बोलें—अलग-अलग ही बोलते हैं—फिर भी उनकी बात का अर्थ एक ही होता है।

शांडिल्य कहते हैं : प्रागुक्तं च।

'ऐसा ही पहले भी कहा गया है।' ऐसा ही आगे भी कहा जाएगा। ऐसा ही कहा जा सकता है। सत्य को अन्यथा कहने का उपाय नहीं है। फिर गीता कहे कि बाइबिल कि कुरान। जिनके पास आंख है, वे गीता कुरान और बाइबिल में एक की ही उदघोषणा पाएंगे, एक ही ओंकार का नाद पाएंगे।

कृष्ण का वचन है :

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति कांक्षति,
समः सर्वेषु भूतेषु मद्‌भक्तिं लभते पराम्।

'ब्रह्मभाव प्राप्त कर के जब मनुष्य प्रसन्नात्मा होता हुआ सब प्रकार की वासनाओं से मुक्त हो जाता है, उस समय सर्वभूत में समदर्शी होने पर वह मेरी पराभक्ति को प्राप्त होता है।' अर्थात समस्त साधनाओं का एकमात्र फल भक्ति है। जब सारी आकांक्षाएं गिर जाती हैं, सारा सोच-विचार शांत हो जाता है—ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति। ध्यान रखना, वासना है इसलिए विचार है।

मेरे पास अनेक बार लोग आते हैं, वे कहते हैं—विचार कैसे बंद करें? विचार बंद नहीं होगा जब तक वासना है। वासना है तो विचार उठता ही रहेगा। ऐसे ही जब तक वायु का प्रचंड वेग है, झील पर लहरें उठती रहेंगी। लहरों को कैसे बंद करोगे? वायु का वेग रुके तो लहरें अपने आप शांत हो जाएंगी, बंद करनी भी नहीं पड़ेंगी। विचार तो तरंगें हैं वासना के वेग में उठी।

तुमने देखा, चुपचाप बैठे हो शांत बैठे हो, एक सुंदर स्त्री निकल गयी और वासना उठी, और तत्क्षण विचारों से घिर गए तुम—इधर आयी वासना, उधर विचारों का प्रवाह आया; हजार-हजार तरंगें आ गयीं। वासना का जरा सा कंकड़ गिर जाए तुम्हारी चेतना की झील में, कि तरंग और तरंग और तरंग उठ आती है। चुपचाप बैठे

थे, एक कार गुजर गयी, मन में वासना उठी कि पाऊं, बस, विचार का तांता शुरू हुआ—कतार बंधी। तुम अपने भीतर निरीक्षण करोगे तो इस सत्य को पकड़ पाओगे कि अगर विचार से मुक्त होना हो तो वासना से मुक्त होना पड़ेगा। विचार वासना के पीछे आता है—अनुसंगी है, छाया है।

कृष्ण कहते हैं—जब कोई न सोचता, न वासना करता, तब प्रसन्नात्मा हो जाता है। सोचने वाला, वासना और विचार में ग्रस्त हमेशा अवसन्न रहेगा—उदास, हारा-थका, विषादग्रस्त, चिंतामग्न, संताप से भरा। क्यों? क्योंकि जितनी तुम्हारी वासना होगी, उतनी ही तुम्हें अपनी दीनता अनुभव होगी। वासना तुम्हें बताएगी क्या-क्या तुम्हारे पास नहीं है। किस-किस बात का अभाव है। जितनी ज्यादा वासनाएं होंगी, उतना अभाव मालूम होगा। तुम उतने ही दरिद्र होते हो जितनी तुम्हारी वासनाएं होती हैं, क्योंकि हर वासना खबर देती है कि यह मेरे पास नहीं। जिस दिन तक तुमने नहीं सोचा था कि एक बड़ा महल बनाऊं, उस दिन तक तुम महल में ही थे। तुम जहां भी थे महल था, झोपड़ा ही महल था। लेकिन जिस दिन यह वासना उठी कि एक बड़ा महल बनाऊं, उसी दिन से तुम झोपड़े में हो गए—क्योंकि अब उस महल की तुलना में यह झोपड़ा अखरता है, खटकता है, काटता है। रूखी-सुखी रोटी मिल जाती थी, सुस्वादु थी; जिस दिन वासना उठी, उसी दिन स्वाद खो गया, उसी दिन से तुम भूखे हो। अब पेट नहीं भरता रूखी-सूखी रोटी से।

स्वामी राम कहते थे कि मैं बादशाह हूं। किसी ने पूछा—क्यों? तो उन्होंने कहा—इसीलिए कि मेरी कोई वासना नहीं। जितनी वासनाएं कम होती गयीं, उतनी मेरी बादशाहत बढ़ती गयी। और जिस दिन मेरी कोई वासना न रही, उस दिन मैंने पाया कि मैं सबसे बड़ा बादशाह हूं; सम्राट हूं, शहंशाह हूं। क्योंकि जहां हूं, वहां कोई अभाव नहीं है अब।

अभाव पता ही चलता है वासना से। वासना की लकीर बड़ी होती जाती है, तुम्हारे जीवन की लकीर छोटी होती चली जाती है। वासना की लकीर को मिटा दो और तुम पाओगे कि तुम प्रसन्नात्मा हो।

कृष्ण कहते हैं जिसकी वासना गयी, विचार गया, वह प्रसन्नात्मा हो जाता है। और जो प्रसन्नात्मा है, वह ब्रह्मभूत होने में समर्थ हो जाता है। वह परमात्मा में लीन होने के करीब आ गया। अब बाधा न रही। बाधा थी अभाव की; बाधा थी दीनता, दरिद्रता की।

मैं निरंतर तुमसे कहता हूं—भिखारी की तरह से उसके द्वार पर मत जाना। जो भिखारी की तरह उसके द्वार पर गया है, वह खाली हाथ लौटा है। खाली हाथ जाओगे, खाली हाथ लौटोगे। तुमने ही अगर तय कर रखा है कि खाली हाथ रखने हैं, तो परमात्मा भी तुम्हारे हाथ नहीं भर सकेगा। सम्राट की तरह जाना उसके द्वार पर। लेने और मांगने मत जाना, अपने को देने जाना। जिस दिन तुम्हारी प्रार्थना मांग नहीं होती, दान होती है, उसी दिन पूरी हो जाती है। जिस दिन तुम परमात्मा को देने को तत्पर होते हो, उस दिन फिर कोई अभाव नहीं रह जाएगा।

प्रसन्नात्मा दे सकता है। जो आनंद-उल्लास से भरा है, वही दे सकता है। जिसकी श्वास-श्वास उत्सव हो गयी है, वही दे सकता है। जो प्रसन्नात्मा है, उस में और ब्रह्म में दूरी नहीं रह गयी। पास आने लगा घर। नदी उतरने लगी सागर में, जल्दी ही लीन हो जाएगी। ब्रह्मभाव उपलब्ध होगा।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति। समः सर्वेषु...और जिसको ब्रह्मभाव उपलब्ध हुआ, वह सभी में भी अपने को पाएगा। फूल में भी अपने को पाएगा। अपने को विस्तीर्ण होता पाएगा। सारा अस्तित्व उस की देह बन जाएगा।

तुमने छोटी सी देह में अपने को बांध रखा है, क्योंकि तुमने छुद्र वासनाओं में अपने को कस रखा है। जैसे-जैसे वासना के बंधन गिरते हैं, तुम विराट होने लगते हो। ऐसा नहीं है कि परमात्मा कहीं से आता है, सिर्फ तुम्हारे बंधन गिर जाते हैं। तुम परमात्मा हो—बंधे हुए—बंधन गिर जाते हैं। अचानक अनुभव होता है कि जो मैं सदा से था, वही हूं, सिर्फ भेद इतना पड़ा है बंधन गिर गए। बुद्ध एक सुबह अपने भिक्षुओं के सामने आए और उन्होंने अपने हाथ में एक रूमाल ले रखा था, और उन्होंने सबके सामने खड़े होकर उस रूमाल में पांच गांठें बांधी, और फिर एक भिक्षु से पूछा कि क्या तुम कह सकते हो यह रूमाल वही है जैसा मैं लाया था, या भिन्न हो गया? उस भिक्षु ने कहा—भगवान, आप उलझन की बात पूछते हैं। सही उत्तर यही हो सकता है कि एक अर्थ में तो रूमाल वही है, और एक अर्थ में रूमाल बदल गया। इस अर्थ में रूमाल वही है, क्योंकि रूमाल में कुछ नया नहीं हुआ है—गांठ से कुछ नया नहीं हो गया है। गांठ से क्या नया होगा! रूमाल बिलकुल वही है। लेकिन फिर भी यह कहना ठीक नहीं कि बिलकुल वही है, क्योंकि गांठ ने थोड़ा फर्क तो कर दिया। गांठ पहले नहीं थी, अब है। तुम गांठ लगे रूमाल हो। तुम गांठ लगे भगवान हो। गांठ खुल जाए, भगवान कहीं और से आता नहीं—ग्रंथि खुल जाए। ग्रंथियां विचार की हैं, वासना की हैं। उनके कारण अभाव, विषाद, संताप। उनके कारण नर्क। जितना बड़ा तुम्हारा विषाद है, उतनी परमात्मा से दूरी है। दुख में कोई परमात्मा से नहीं जुड़ पाता। और आदमी ऐसा मूढ़ है कि दुख में याद करता है, सुख में भूल जाता। और दुख में कभी कोई नहीं जुड़ा—सुना ही नहीं, ऐसी घटना ही नहीं घटी कि दुख में कोई छलांग लगा गया हो परमात्मा में। दुख में तो तुम सिकुड़ जाते हो, गांठ और मजबूत हो जाती है। गांठ ही गांठ रह जाती है, रूमाल बचता ही नहीं; पांच नहीं; पचास गांठ हो जाती हैं कि हजार गांठ हो जाती हैं—सारा रूमाल गांठों में दब जाता है। गांठों पर गांठें लग जाती हैं। ग्रंथियों पर ग्रंथियां। पता लगाना ही मुश्किल हो जाता है कि कभी यह रूमाल खुला भी था, कभी तुम मुक्त भी थे, कभी तुम निर्विकार भी थे, कभी तुम्हारी स्लेट पर कुछ भी न लिखा था; शांति थी, कोई धब्बा न पड़ा था।

दुख में आदमी भगवान को याद करता है। और दुख सर्वाधिक दूरी है मनुष्य और भगवान के बीच। प्रसन्नात्मा पहुंचता है। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं—नाचो, गाओ; रोते हुए मत जाओ, हंसते हुए जाओ। हंसते हुए ही कोई पहुंचता है। नाचते हुए जाओ। पहाड़ मत ढोओ चिंताओं के अपने सिर पर।

अक्सर ऐसा हो जाता है, ये पहाड़ ढोने वाले लोग ही तुम्हें संत-महात्मा मालूम होते हैं। ये बहुत दूर हैं, इन्हें कुछ भी पता नहीं है। कहीं कोई मस्त होकर नाचता हो, चाहे परमात्मा की उसे याद भी न हो तो भी परमात्मा के करीब है। मस्ती में सार है। कहीं कोई रस-निमग्न है, कहीं कोई डूबा है, सब भांति भूलकर, वहीं समझना कि परमात्मा का द्वार करीब है—चूकना मत, वहां सत्संग करना। जहां मस्ती में डूबे हुए लोग मिल जाएं, जहां मस्तों की मधुशाला मिल जाए, वहीं मंदिर है। उस क्षण याद किया तो काम आ जाता है—क्योंकि उस वक्त हम बहुत करीब होते हैं। जरा सी आवाज दी कि वहां तक पहुंच जाती है। आनंद के पंखों पर चढ़कर ही प्रार्थनाएं परमात्मा तक पहुंचती हैं। दुख तो पंख हीन है। पंख कटे जटायु सा। उस पर चढ़कर कोई यात्रा नहीं होती।

जो ब्रह्मभूत हो गया, आनंदमग्न होकर सोच-विचार-वासना से मुक्त हुआ, उसे सब में एक ही का वास दिखायी पड़ने लगता है। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्। और इस अवस्था का नाम परा भक्ति है। भगवान ही भगवान, शैतान में भी भगवान। राम ही राम, रावण में भी राम। जिस क्षण भगवान के अतिरिक्त कुछ और दिखायी ही न पड़े—चाहो तो भी दिखायी न पड़े, खोजो तो भी न पा सको; जहां उल्टो, जिस पत्थर को पल्टो, वही मिल जाए; जिस लकड़ी को तोड़ो वही मिल जाए; आंख खोलो तो वही, आंख बंद करो तो वही; जिस दिन जहां जाओ वहीं काबा, वहीं काशी; जिस दिन जहां झुको वहीं मंदिर; जहां बैठ रहो वहीं तीर्थ...कबीर ने कहा है : खाऊं-पीयूं सो सेवा; उठूं-बैठूं सो परिक्रमा। वही है, तो अब अलग से भोग लगाने की भगवान को जरूरत नहीं रही, तुमने जो खाया-पीया वह भी उसी को भोग लगा गया—'खाऊं-पीयूं सो सेवा।' 'उठूं-बैठूं सो परिक्रमा है—आती-जाती श्वास; यह आती-जाती श्वास उसी का निनाद है, यह आती-जाती श्वास उसी का ओंकार है, यह उसी का भजन है।

इस परमदशा को कृष्ण ने भक्ति कहा है। ठीक कहते हैं शांडिल्य—प्रागुक्तं च। पूर्व में भी ऐसा ही कहा गया है।

और दूसरे भक्ति के तत्वज्ञ नारद ने कहा है ॐ फल रूपत्वत्। वह भक्ति सब साधनों का फलरूप है। अंतिम है। पराकाष्ठा है। उसके पार और कुछ भी नहीं है। शेष सब रूप साधनाओं के उसी तरफ ले जाते हैं। शेष सब मार्ग हैं, साधन हैं, भक्ति साध्य है।

एतेन विकल्पोऽपि प्रत्युक्तः।

'इससे विकल्प का नाश भी हो गया।'

साधारणतः इस वचन का अर्थ किया जाता है कि चूंकि शास्त्रों में भी ऐसा कहा है, आप्त-पुरुषों ने भी ऐसा कहा है, जानने वालों के ऐसे ही वचन हैं इसलिए अब कोई संदेह की बात न रही, अब सब विकल्प समाप्त हो गए, अब श्रद्धा की जा सकती है। मैं इतने से अर्थ से राजी न होऊंगा। यह अर्थ ठीक है, पर बहुत ऊपर-ऊपर है। क्योंकि शांडिल्य जैसा ज्ञानी सिर्फ शास्त्रों का उल्लेख करके ऐसा नहीं कह सकता कि सब

विकल्प समाप्त हो गए। सब विकल्प तो समाप्त होते हैं, तभी जब अनुभव हो जाए। शास्त्रों से कैसे विकल्प समाप्त हो जाएंगे? और शांडिल्य तो ऐसा कह ही नहीं सकते, क्योंकि अभी-अभी तो हमने देखे उनके और सूत्र जिनमें उन्होंने ज्ञान की व्यर्थता कही है; जिनमें उन्होंने कहा कि ज्ञान कचरा है; ज्ञान से कोई भक्ति तक नहीं पहुंचता। कृष्ण ने क्या कहा गीता में और नारद ने क्या कहा भक्ति-सूत्रों में, इसको जानने से कोई शांति होगी, विकल्प समाप्त होंगे? इसके जानने से समाधान होगा? समाधि के बिना कोई समाधान न हुआ है कभी, न हो सकता है।

शास्त्र कहते रहें कितना ही, जब तक तुम्हारा अंतशास्त्र न जाग उठे, तब तक सब विश्वास है, श्रद्धा नहीं। और विश्वास झूठी श्रद्धा का नाम है। तुम मान लो कि कृष्ण ने कहा तो ठीक ही कहा होगा, लेकिन पहले तो तुम्हें यह मानना पड़ता है कि कृष्ण ठीक हैं, फिर तुम्हें यह मानना पड़ता है कि जब ठीक व्यक्ति ने कहा है तो ठीक ही कहा होगा। मगर सारी बात अंधी है। तुम्हें कैसे पक्का पता हो कि कृष्ण ठीक है। शांडिल्य कहते हैं इसलिए कृष्ण ठीक नहीं हो सकते क्योंकि फिर यह पक्का होना चाहिए कि शांडिल्य ठीक हैं। तुम रुकोगे कहां? तुम जिस जगह से शुरू करोगे? जहां से भी शुरू करोगे वहीं से अंधापन होगा। तुम कहोगे। परंपरा कहती है। लेकिन परंपरा गलत हो सकती है। कहीं भ्रांति हो गयी हो, कहीं भूल हो गयी हो। जब तक तुम्हारा अंतर्अनुभव गवाही न दे, तब तक दुनिया की कोई चीज प्रमाण नहीं बन सकती। हां, मान ले सकते हो, सांत्वना होगी, थोड़ी राहत मिलेगी, मगर राहत और सत्य एक ही नहीं हैं। अक्सर तो ऐसा हो जाता है जो आदमी राहत पाने का बहुत आदी हो जाता है, वह सत्य से सदा के लिए वंचित रह जाता है। क्योंकि वह व्यर्थ की बातों में ही राहत कर लेता है। सत्य सुविधा नहीं है, राहत नहीं है, अपने को समझा-बुझा लेना नहीं है। सत्य अनुभव है। और अनुभव में जलना पड़ता है। सत्य अग्नि है। सत्य आग्नेय है। तुम्हें जलायेगा, निखारेगा, तभी तुम कुंदन बनोगे, तभी तुम्हारा सोना शुद्ध होगा।

मान लेने से यह नहीं हो सकता। मानने के कारण ही तो इतने लोग भटके हुए हैं। मानते तो सभी हैं—कोई कृष्ण को, कोई क्राइस्ट को, कोई मुहम्मद को, कोई महावीर को, मानते तो सभी हैं। फिर जो मुहम्मद को मानता है वह महावीर को नहीं मान सकता। जो महावीर को मानता है वह मुहम्मद को नहीं मान सकता। फिर इनमें से कौन आप्त-पुरुष है? महावीर को मानने वाला मुहम्मद के मानने वाले के मन में संदेह तो पैदा करायेगा ही—कौन आप्त-पुरुष है? आखिर कुछ लोग हैं जो महावीर को मानते हैं, कुछ लोग जो मुहम्मद को मानते हैं; कुछ लोग जो क्राइस्ट को, कुछ लोग जो कृष्ण को, इनमें कौन सच है? इस तरह की श्रद्धा विकल्पों से मुक्ति नहीं ला सकती।

इसलिए जिन्होंने शांडिल्य के इस सूत्र 'एतेन विकल्पोऽपि प्रत्युकतः, इससे विकल्प का नाश हो गया'—इसका ऐसा अर्थ किया है कि चूंकि सत्य-पुरुषों ने कहा है, चूंकि सद्शास्त्र दोहराते हैं, इसलिए अब कोई शंका-संदेह का कारण नहीं रहा, ऐसा अर्थ मैं नहीं करना चाहूंगा। इतनी आसानी से संदेह नहीं मिटते, संदेह बडे गहरे

हैं। सच तो यह है कि स्वयं परमात्मा भी तुम्हारे सामने खड़ा हो तो भी संदेह नहीं मिटते, जब तक कि परमात्मा तुम्हारे भीतर खड़ा न हो जाए। उतनी दूरी भी रहे कि वह सामने खड़ा है, उतना भी फासला रहे—हाथ भर का फासला—तो भी संदेह उठते ही चले जाते हैं। पता नहीं धोखा हो; पता नहीं कोई चालबाज हो; पता नहीं कोई माया हो; पता नहीं मैं कोई सपना देख रहा हूं, कल्पना कर ली है; भरोसा कैसे आए? भरोसा स्वानुभव से ही आता है। स्वानुभव ही श्रद्धा है।

तो मैं इसका क्या अर्थ करूं?

मैं इसका अर्थ करना चाहूंगा कि जहां न भक्त बचता, न भगवान, ऐसी पराभक्ति में विकल्प समाप्त होते हैं। एतेन विकल्पोऽपि प्रत्युक्तः। उस पराभक्ति में जाकर विकल्प समाप्त हो जाते हैं। जहां तुम्हारे सब विकल्प समाप्त हो जाएं, समझना कि पराभक्ति आयी। जहां कोई विकल्प न बचे।

जब तक दो हैं, तब तक विकल्प रहेंगे। जब तक मैं हूं और तू है, तब तक विकल्प रहेंगे। तब तक संघर्ष चलेगा। जब एक ही बचता है—न मैं, न तू—जब वह बचता है—तत्—तब विकल्प बचने की कोई जगह न रही। अब विकल्प किस में उठेंगे—न भक्त है, न भगवान है, भगवत्ता रही। उस भगवत्ता में, उस पराभक्ति में, उस परम अवस्था में, जहां बीज गया, वृक्ष गया, फूल गया, सिर्फ सुगंध रही—अदृश्य सुगंध—वहीं जाकर विकल्प शांत होते हैं।

'देव भक्तिः इतर अस्मिन साहचर्य्यात्—ईश्वर में भक्ति के सिवाय और देवताओं की जो भक्ति है वह पराभक्ति नहीं हो सकती, क्योंकि इस प्रकार की भक्ति की नाईं और-और साधनों में भी भक्ति देख पड़ती है।' और जो मैंने अर्थ किया, वह इस आने वाले सूत्र से और भी स्पष्ट हो जायेगा, और भी पुष्ट हो जायेगा। शांडिल्य कहते हैं—ईश्वर में भक्ति के सिवाय और देवताओं की जो भक्ति है वह पराभक्ति नहीं है। क्या अर्थ होगा? हिंदू को मैं धार्मिक नहीं कहता; और मुसलमान को भी धार्मिक नहीं कहता, और जैन को भी नहीं, और बौद्ध को भी नहीं। जब तक जैन-हिंदू-मुसलमान-ईसाई मौजूद हैं तब तक कोई धार्मिक नहीं होता। क्योंकि ईसाई का अपना परमात्मा है, हिंदू का अपना परमात्मा है। अभी तो परमात्मा तक कोई हैं। अभी तो परमात्मा में भी भेद है। अभी तो भक्त और भगवान का भेद मिटने का तो सवाल ही दूर तो भगवानों में भेद है। अभी तो भगवान भी एक नहीं हैं, भक्त का उससे एक होना तो बहुत दूर की बात है, दूर का सपना है। जब हिंदू झुकता है तो वह भगवान के चरणों में नहीं झुकता, वह हिंदू-भगवान के चरणों में झुकता है।

कहानी है कि तुलसीदास को कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया जब वह वृंदावन गए, वह झुके नहीं। कृष्ण के सामने और तुलसीदास झुकें। नहीं झुके। उन्होंने कहा कि जब तक धनुष-बाण हाथ न लोगे तब तक मैं नहीं झुकूंगा। यह मजा देखते हैं! यह अहंकार देखते हैं! भक्त भगवान पर भी शर्त लगा रहा है। भक्त यह कह रहा है कि मेरी शर्त के अनुकूल होओगे तो झुकूंगा। धनुष-बाण हाथ लो, तो तुलसी का माथा झुके। मैं धनुष-बाण वाले राम को मानता हूं, मैं यह बांसुरी वाले कृष्ण को नहीं

मानता। तुलसीदास के पास भी आंखें नहीं मालूम होती, नहीं तो जिसने धनुष-बाण लिया है, उसी ने बांसुरी भी बजायी है। और ये तो दोनों ही हिंदू थे—ये कृष्ण और राम की दोनों धारणाएं हिंदू थीं। जरा मस्जिद में सोचो तुलसीदास की क्या गति होती! भीतर ही न घुसते। मंदिर में चले गए, यह उनकी बड़ी कृपा ! कम से कम भीतर तो चले गए! इतना अनुग्रह तो किया परमात्मा पर, कि कृष्ण को एक मौका तो दिया कि अगर झुकवाना हो मुझे, धनुष-बाण हाथ ले लो! लेकिन मस्जिद में क्या करते, वहां तो हाथ ही नहीं है। बांसुरी लेने वाला तो धनुष-बाण भी कभी ले सकता है, मगर मस्जिद में तो हाथ ही नहीं है, कोई प्रतिमा नहीं, वहां क्या करते? वहां तो भीतर जा ही नहीं सकते थे।

अगर किसी जैन मंदिर में गए होते और महावीर खड़े थे, तो महावीर से यह कहना कि धनुष-बाण हाथ लो, बड़ी बेहूदी बात हो जाती। क्योंकि वह आदमी धनुष-बाण के बिलकुल विपरीत था। अहिंसा परमो धर्मः। वह धनुष-बाण हाथ में लेने की ही वजह से तो राम जैनों को स्वीकार नहीं हो सकते। जैन नहीं झुक सकता राम के मंदिर में। कैसे झुके? यह धनुष-बाण लिए खड़े हैं। और यह धनुष-बाण तो पाप का प्रतीक है, हिंसा का प्रतीक है। और हिंसा से कहीं हिंसा मिटी है! हिंसा से तो और हिंसा जन्मती है। जैन-शास्त्रों में राम की कथायें हैं—उनको महापुरुष कहा है, लेकिन भगवान नहीं। बस उतने दूर तक जैन उनको मान सकते हैं—एक महापुरुष हैं, जैसे और बहुत महापुरुष हैं, लेकिन भगवान नहीं। बुद्ध का भी नाम अगर जैन उल्लेख करते हैं तो उनको महात्मा कहते हैं, भगवान नहीं। महात्मा मान सकते हैं। लेकिन भगवान! धारणा उनकी है, अपनी। हर एक की अपनी धारणा है। और जब तक तुम्हारी धारणा है तब तक तुम भगवान से न जुड़ सकोगे—धारणा ही बाधा है। तब तक हिंदू हिंदू-भगवान के सामने झुक रहा है—और हिंदू-भगवान कहीं है? भगवान तो बस भगवान है—न हिंदू, न मुसलमान, न ईसाई

मैंने एक कहानी सुनी है। एक फकीर रात सोया। उस ने एक सपना देखा कि वह स्वर्ग पहुंच गया, और बड़ी भीड़-भड़क्का है; स्वर्ग बड़ा सजा है और बड़ा जुलूस निकल रहा है—शोभायात्रा! उस ने पूछा—वह भी खड़ा हो गया भीड़ में—कि क्या बात है? किसीने कहा, आज भगवान का जन्मदिन है, किसी राहगीर ने कहा, उत्सव मनाया जा रहा है। उस ने कहा अच्छे भाग्य मेरे कि ठीक दिन आया स्वर्ग। जुलूस निकलते हैं। निकले रामचंद्र जी धनुष-बाण लिए और लाखों-करोड़ों लोग उनके पीछे। फिर निकले मुहम्मद अपनी तलवार लिए, और लाखों-करोड़ों लोग उनके भी पीछे। और फिर निकले बुद्ध, और फिर निकले महावीर, और जरथुस्त्र, और निकलते गए, निकलते गए और अखीर में जब सब निकल गए तो एक आदमी एक बूढ़े-से मरियल-से घोड़े पर सवार निकला। जनता भी जा चुकी थी, लोग भी जा चुके थे, उत्सव समाप्त होने के करीब था, आधी रात हो गयी, इस फकीर को इस आदमी को देख कर हंसी आने लगी कि यह भी सज्जन खूब हैं, यह काहे के लिए निकल रहे हैं अब! और इनके पीछे कोई भी नहीं। उस ने पूछा, आप कौन हैं और

घोड़े पर किसलिए सवार हैं? और यह कैसी शोभायात्रा है, आपके पीछे कोई नहीं! उस ने कहा, मैं क्या करूं, मैं भगवान हूं। कुछ लोग हिंदुओं के साथ हो गए हैं, कुछ बौद्धों के साथ, कुछ ईसाइयों के साथ, कुछ मुसलमानों के साथ, मेरे साथ कोई भी नहीं, मैं अकेला हूं। मेरा जन्मदिन मनाया जा रहा है, तुम्हें मालूम नहीं? घबड़ाहट में फकीर की नींद खुल गयी।

तुम भी सोचोगे तो घबड़ाहट में तुम्हारी भी नींद खुल जाएगी। शांडिल्य का सूत्र बड़ा अदभुत है, शांडिल्य कहते हैं—

देव भक्तिः इतर अस्मिन साहचर्य्यात्।

ईश्वर में भक्ति के सिवाय और-और देवताओं की जो भक्ति है वह पराभक्ति नहीं है। और-और देवता अर्थात् विशेषण वाले भगवान। और-और देवता अर्थात् धारणाओं में आबद्ध, सीमाओं में आबद्ध। भगवान का अर्थ होता है—जो एक है, जो समस्त में व्याप्त है। तुम हिंदू होना छोड़ो तो ही उससे संबंध जुड़े। तुम मुसलमान होना छोड़ो तो ही उससे संबंध बने। यही मेरी शिक्षा है। यही मैं सिखा रहा हूं सुबह-शाम कि तुम मंदिर और मस्जिद और गुरुद्वारे से मुक्त हो जाओ, तो तुम्हें उसका मंदिर मिले। और तुम धनुष वाले राम और बांसुरी वाले कृष्ण और नग्न खड़े महावीर से मुक्त हो जाओ, तो तुम्हें उस की झलक मिले। नहीं तो झलक असंभव है।

खयाल रखना, अगर तुम्हारे भगवान की धारणा किसी दूसरे के भगवान की धारणा विपरीत पड़ती है, तो यह, यह भगवान सच्चा नहीं हो सकता। ऐसे भगवान को खोजो, जिसमें सभी धारणाएं लीन हो जाती हैं। जो धारणातीत हो। जो शब्दों के पार है। जो सिद्धांतों की पकड़ में नहीं आता। शास्त्र जिसकी तरह इंगित करते हैं मगर जिसकी व्याख्या नहीं कर पाते हैं। महर्षि जिसकी चर्चा करते हैं, लेकिन जो चर्चा में बंध नहीं पाता। समझाते हैं और नहीं समझ पाते।

लाओत्सु ने कहा है—उसका क्या नाम है मुझे मालूम नहीं, काम चलाने के लिए उस को मैं 'ताओ' कहूंगा। काम चलाने का! उसका क्या नाम है मुझे मालूम नहीं। वह अनाम है। काम चलाने को 'ताओ' कहूंगा। अब ताओ कहो, कि भगवान कहो; प्रभु कहो, निर्वाण कहो; धर्म कहो, कुछ भेद नहीं पड़ता, सब कामचलाऊ हैं, सब नाम कामचलाऊ हैं। जरा गौर से देखो, तुम पैदा हुए तब अनाम पैदा हुए। मगर काम तो चलाना पड़ेगा, तो तुम्हारा एकनाम रखा। नाम रखा हुआ है—जरूरत थी, बिना नाम के अड़चन आती, चिट्ठी-पत्री आती तो कैसे तुम तक पहुंचाते, और कोई पुकारता तो कैसे पुकारता, और इतनी भीड़-भाड़ है, इतने लोग हैं! अभी मैंने देखा, अमरीका की एक अदालत ने फैसला दिया—एक आदमी अपना नाम बदलना चाहता था—अदालत ने इनकार कर दिया कि नाम नहीं बदल सकते। आदमी अपना नाम बदलना चाहता था और नाम ही जगह नंबर चाहता था—'एक हजार एक'। अदालत मुश्किल में पड़ी, क्योंकि इसके पहले कोई घटना नहीं है कि किसीने कभी नंबर अपना नाम रखा हो। बड़ा सोच-विचार किया और फैसला दिया कि नहीं, यह हो नहीं सकेगा, क्योंकि पहले यह कभी हुआ नहीं। अब यह बड़ी मूढ़ता की बात है। जब मैंने

यह निर्णय देखा तो मुझे बड़ी हैरानी हुई—पहले यह हुआ नहीं, तो यह हो नहीं सकता। तो फिर यह होगा कैसे? और पहले भी अगर आता यह आदमी, तब भी तुम यही कहते कि पहले हुआ नहीं। अब तो यह कभी हो ही नहीं सकता। एक बार तो कम से कम होने दो, तब 'पहले' हुआ,. फिर सुविधा बन जाएगी। एक आदमी को तो पहले होने दो! मगर अदालत की भी झंझट थी। झंझट यह थी—और उस आदमी की थोड़ी गलती थी, अगर वह मुझसे सलाह ले तो उस को मैं कहूं कि तू थोड़ी-सी सुधार इसमें कर। उस ने अंक लिखे थे; अंक नहीं लिखने चाहिए। अक्षर लिखता तो रास्ता बन जाता। उस ने लिखे—एक हजार एक, अंक। अंक इसमें झंझट है। क्योंकि इसको कोई कैसा पढ़ेगा, इस पर निर्भर है। तो नाम में अड़चन हो जाएगी। कोई पढ़ सकता है—दस सौ एक; कोई पढ़ सकता है—एक हजार एक; तो यह तो दो नाम हो गए एक नाम में! और इसमें कठिनाई खड़ी हो सकती है। उसे भाषा में लिखना था, अक्षरों में लिखना था—एक हजार एक। तो कानूनी झंझट नहीं आती।

मगर अदालत मूढ़ मालूम होती है—सभी अदालतें मूढ़ होती हैं। मूढ़ इसलिए होती हैं कि वे अतीत से बंधी होती हैं। उनके पास भविष्य की कोई योजना नहीं होती। चूंकि पहले कभी नहीं हुआ, इसलिए नहीं होने देंगे, यह भी कोई बात हुई! यह इस आदमी का कसूर है कोई कि पहले किसीने नहीं चाहा! इसकी इस आदमी की तो कहीं भी भूल नहीं है। सिर्फ इस कारण कि पहले किसीने नहीं किया, तुम भी नहीं कर सकोगे, तब तो भविष्य को मार डालोगे तुम। इसलिए सब कानून भविष्य-विरोधी होते हैं। और सब सिद्धांत अतीत-आग्रही होते हैं। और जितना सिद्धांतों और नियमों का जाल होता है उतना ही भविष्य के जन्म में अड़चन पड़ती है। इसका कोई गलत मामला नहीं है, ठीक अच्छी बात है, एक हजार एक सही। मगर नाम तो चाहिए ही पड़ेगा। बिना नाम के काम नहीं चलेगा। नंबर हो तो चलेगा, लेकिन कुछ न कुछ नाम चाहिए, कुछ प्रतीक चाहिए। यद्यपि भीतर तुम नामरहित हो।

लाओत्सु ठीक कहता है कि उसका कोई नाम नहीं है और मुझे पता नहीं है कि उसका कोई नाम हो सकता है, इसलिए काम चलाने के लिए 'ताओ' कहूंगा। काम चलाने को किसीने राम कहा है, और काम चलाने को किसीने कृष्ण कहा है; और काम चलाने को किसीने ईसा कहा है, यह सब काम चलाना है। उसका कोई नाम नहीं। तुम अनाम में उतरो तो ही भक्ति का जन्म होगा।

ईश्वर में भक्ति के सिवाय—उस अनाम तत्व में डूबने के सिवाय—और-और देवताओं की जो भक्ति है वह पराभक्ति नहीं है। कोई गणेश की भक्ति कर रहा है, कोई कालीमाता को पूज रहा है; कोई मस्जिद जाता है, कोई मंदिर जाता, कितने-कितने देवी-देवता हैं! जब इस देश की संख्या तैंतीस करोड़ हुआ करती थी तब लोग कहते थे कि तैंतीस करोड़ देवी-देवता हैं; अब तो संख्या साठ करोड़ है, अब देवी-देवता भी साठ करोड़ हो गए होंगे। क्योंकि हर आदमी का अपना देवी-देवता है। हर आदमी की अपनी धारणा है। हर आदमी का अपना मन है। उसी से तो देवी-देवता निर्मित होते हैं। इन देवी-देवताओं में उलझे तो तुम अपने अहंकार

के पार कभी न जा सकोगे—ये तुम्हारे अहंकार की ही छायाएं हैं। इनसे मुक्त हो जाना। तुम क्यों जैन-मंदिर जाते हो? क्योंकि बचपन से, संयोग से, संयोग की बात थी तुम ऐसे घर में पैदा हुए जहां लोग जैन-मंदिर जाते थे, बस इतनी-सी बात है। इसमें कुछ और ज्यादा सार नहीं है। अगर तुम पैदा हुए थे तभी उठाकर तुम्हें मुसलमान-घर में रख दिया होता, तो तुम कभी भूलकर जैन-मंदिर न गये होते। खून की बात हो गयी। और अगर तुम्हें रूस भेज दिया गया होता पैदा होते ही से, तो तुम मस्जिद भी नहीं जाते और जैन-मंदिर भी न जाते, तुम मानते कि ईश्वर है ही नहीं। तुम्हें जो सिखाया जाता है वही तुम मानते हो। जो तुम्हें सिखाया गया है उससे मुक्त होना पड़ेगा, तो तुम वह जान सकोगे जो है। जिसे कम्यूनिज्म सिखाया गया है जन्म से, दूध में घोंट कर पिलाया गया है, उसे कम्यूनिज्म से मुक्त होना पड़ेगा। और जिसे हिंदूइज़्म सिखाया गया है, उसे हिंदूइज़्म से मुक्त होना पड़ेगा। 'इज़्म' से मुक्त होना ही पड़ेगा, वाद से मुक्त होना ही पड़ेगा। वादी कभी सत्य तक नहीं पहुंचता है। वहां तो निर्विवाद चित्त चाहिए।

शांडिल्य कहते हैं—इस प्रकार की भक्ति पराभक्ति नहीं हो सकती, क्योंकि इस प्रकार की भक्ति की नाईं और-और स्थानों में भी भक्ति देख पड़ती है।

इसे समझना।

छोटे-छोटे बच्चे लड़ पड़ते हैं कि मेरे पिता तुम्हारे पिता से ज्यादा ताकतवर हैं कि मेरी मां तुम्हारी मां से ज्यादा सुंदर है, कि मेरी अध्यापिका तुम्हारी अध्यापिका से ज्यादा बुद्धिमान है। यही झगड़ा जारी रहता है जिंदगी भर, कि मेरा मंदिर तुम्हारे मंदिर से ज्यादा पवित्र, कि मेरा गुरु तुम्हारे गुरु से ज्यादा सच्चा, कि मेरा शास्त्र तुम्हारे शास्त्र से ज्यादा प्रामाणिक। ये बचकानी बातें हैं। ये चित्त के विकास के लक्षण नहीं हैं, अप्रौढ़ता के लक्षण हैं। और इन सबके पीछे अहंकार है, जब कोई बच्चा कहता है कि मेरे पिता तुम्हारे पिता से ज्यादा ताकतवर, तो वह यह क्या कह रहा है—कि मैं ताकतवर पिता का बेटा हूं, मैं ताकतवर! वह पिता के बहाने अपनी घोषणा कर रहा है। जब तुम कहते हो मेरा धर्म सबसे प्राचीन धर्म दुनिया का, तो तुम यह कह रहे हो कि मेरा धर्म है, कोई साधारण बात है! मेरा है, प्राचीन होना ही चाहिए! मेरी किताब दुनिया की सबसे अच्छी किताब होनी ही चाहिए। फिर वह किताब कोई भी हो। तुम्हारी किताब है तो सबसे अच्छी होनी ही चाहिए। ये अहंकार की छिपी हुई घोषणाएं हैं। यह भक्ति नहीं है। यह कई रूपों में प्रकट होती हैं—माता की भक्ति, पिता की भक्ति, गुरु की भक्ति, देश भक्ति : मेरा देश!

सभी देशों में वही भ्रांति है। भारत में रहने वाले लोग सोचते हैं कि यह पुण्य-भूमि है, और सारी भूमियां पाप-भूमियां हैं—और भूमियां जैसे अलग-अलग हैं! जैसे हिंदुस्तान और पाकिस्तान कहीं कटे हैं भूमि से! और मजा यह है कि पाकिस्तान भी उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले पुण्य-भूमि हुआ करता था, अब नहीं है! उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले वह भी भारत था, तो पुण्य-भूमि था। जब से नक्शे पर एक लकीर खिंच गयी—नक्शे पर खिंची है, जमीन पर नहीं; जमीन पर कौन लकीर

खींच सकेगा, जमीन तो अविभाज्य है—नक्शे पर एक लकीर खिंच गयी, तब से पाकिस्तान पुण्य-भूमि नहीं है। तब से वहां पापी रहने लगे। और भी इसी भ्रांति में हैं—इसीलिए तो पाकिस्तान कहते हैं उस को—पाकिस्तान, मतलब पवित्र-भूमि, पाक! वे भी यही कह रहे हैं कि तुम हिंदुस्तान में रहते हो! हम पाकिस्तान में रहते हैं! हिंदुस्तान में रखा क्या है? ये पाक-भूमि है, यह पवित्र-भूमि है। एक-सी मूढ़ताएं हैं। चीनियों से पूछो तो वह कहते हैं, हमारी संस्कृति सबसे प्राचीन है। और हिंदुओं से पूछो तो वह कहते हैं, हमारी संस्कृति सबसे प्राचीन है। और मिश्रियों से पूछो तो वह कहते हैं, तुम हो क्या हमारे सामने, हम बहुत प्राचीन हैं। सब अपनी किताबों को प्राचीन सिद्ध करते हैं, सब अपने झंडों को ऊंचा करते हैं—झंडा ऊंचा रहे हमारा। जो भी तुम्हें कभी आदमी मिल जाए झंडा लिए हुए, समझ लेना पागल है। और जो कहे झंडा ऊंचा रहे हमारा, समझना कि इस आदमी के पास बुद्धि नाम की चीज ही नहीं है। झंडा ऊंचा रहे हमारा! इससे ज्यादा मूढ़ता की और क्या बात होगी? मगर इस पर झगड़े हो जाते हैं, युद्ध हो जाते हैं। लोग मारे जाते हैं, कट जाते हैं—मातृभूमि पर हमला हो गया। मेरी मातृभूमि!

शांडिल्य कहते हैं—इस तरह की भ्रांतियां और-और जगह भी देखी जाती हैं, यह कोई भक्ति नहीं है। देश भक्ति भक्ति नहीं है। और नहीं देवता की भक्ति भक्ति है। फिर भक्ति क्या है? शांडिल्य कहते हैं, भक्ति तो सिर्फ एक है—विराट के साथ तुम लीन हो जाओ, जैसे बूंद सागर में गिर जाती है। अनाम में अनाम हो जाओ! उसके साथ सेतु जोड़ लो। दावेदार मत बनो तुम, दावेदार बन कैसे सकते हो? जब तक दावा है तब तक दूरी है, जब तक दूरी है तब तक भक्ति कहां!

'देव भक्तिः इतर अस्मिन साहचर्य्यात्। ईश्वर में भक्ति के सिवाय—ईश्वर' अर्थात् न हिंदू का, न मुसलमान का; न जैन का, न बौद्ध का; न हिंदुस्तान का, न चीन का; ईश्वर यानी वह अनाम परम तत्व जिससे हम सब आए और जिसमें हम सब एक दिन लीन हो जाएंगे; जो हमारा स्त्रोत है और हमारा गंतव्य है; जो हमारा बीज है और जो हमारा फल है; जिसमें हम इस क्षण भी जी रहे हैं; जो हममें अभी भी सांस फूंक रहा है; जो हमारा प्राणों का प्राण है; उस परात्पर में लीन हो जाने का नाम भक्ति है।

पराभक्ति है परम की, परात्पर की घोषणा। मेरा-तेरा वहां नहीं। मैं ही वहां नहीं है तो तेरा हो ही नहीं सकता। मेरा देवता, मेरा भगवान, ऐसी वृत्ति छुद्र है। जो भगवान सबका नहीं, वह भगवान ही नहीं। जो भगवान किसी का है, उसी मात्रा में कम भगवान हो गया। शब्दों से ऊपर उठो। छुद्र सीमाओं को तोड़ो। इन सीमाओं के कारण ही तुम कष्ट में हो विस्तार से, विराट से आनंद उपजेगा। तुम छुद्र से अपने को बांध रहे हो। छोटे-छोटे बिलों में घुस गए हो—वहां तड़प रहे हो, और निकलते भी नहीं, और बिल को छोटे से छोटे करते चले जाते हो; आखिर में तुम्हीं बचते हो, सिर्फ तुम्हारा अहंकार ही बचता है अखिर में। अगर छोटे होते चले जाओगे तो अहंकार ही बचेगा अखीर में, अगर बड़े होते चले जाओगे तो सब बचेगा। और ये दो

ही संभावनाएं हैं—या तो मैं, या सर्व। सर्व के लिए मैं को समर्पित कर दो। और मैं है भी व्यर्थ। मैं है भी झूठा। लेकिन झूठ से हमारे मोह ज्यादा है। हम सत्य को समर्पित करने को तैयार हैं, झूठ को छोड़ने को नहीं। इस झूठ से हमारे बड़े लंबे संबंध हैं, बड़े पुराने संबंध हैं। इसी झूठ को हम नए-नए ढंग से स्थापित करते चले जाते हैं। नयी-नयी तरकीबें खोज लेते हैं, नए-नए निमित्त खोज लेते हैं, मगर झूठ पुराना है, वही का वही है।

तुम देखो, अपने भीतर जांच करना, तुम जिन-जिन बातों की घोषणा करते हो यह श्रेष्ठ, वहां अपने मैं को छिपा हुआ पाओगे। वेद श्रेष्ठ, जब कोई कहे, तो तुम जान ले सकते हो कि यह आदमी हिंदू है। बाइबिल श्रेष्ठ, तो तुम जान सकते हो यह आदमी ईसाई है। क्योंकि आदमी अपनी ही श्रेष्ठता की घोषणाएं करते हैं—बहाने कुछ भी हों। अक्सर ऐसा हो जाता है कि जो वेद की श्रेष्ठता की घोषणा कर रहा है, वेद शायद पढ़ा ही न हो।

एक बार एक वृद्ध सज्जन मुझे मिलने आए, अमृतसर के निवासी थे। कहने लगे, वेद तो परम है। आर्यसमाजी थे। मैंने उनसे पूछा—वेद आपने कभी पढ़ा? थोड़ा तिलमिलाये। कहा कि नहीं, पढ़ा तो नहीं। तो मैंने कहा—घोषणा कैसे कर रहे हैं? सामने ही आलमारी में वेद की किताब रखी थी, मैं वह निकाल कर लाया, मैंने उनसे कहा कोई भी पन्ना खोलिये और एक पन्ना पढ़ डालिए—जोर से। वह कहने लगे—क्यों? मैंने कहा—उससे सिद्ध हो जाएगा कि श्रेष्ठता क्या है। जो पन्ना खुल जाए—यह भी नहीं कहता कि कोई खास पन्ना। उन्होंने किताब खोली और पन्ना पढ़ा—बीच में ही रुक गए। क्योंकि वेद में निन्यानबे प्रतिशत तो कचरा है। हीरे हैं, मगर मुश्किल से कहीं-कहीं। क्योंकि वेद सिर्फ हीरो का संग्रह नहीं है, उस दिन की सारी बातों का संग्रह है। अखबार में भी कभी-कभी हीरा मिल जाता है। वेद उस दिन का अखबार है। उस दिन का इतिहास भी उस में है, उस दिन की कविता भी उस में है, उस दिन का पुराण भी उस में है, उस दिन का धर्म, दर्शन भी उस में है, उस दिन के, उस दिन जो भी था उस सबकी झलक उस में है। उस में हीरे ही हीरे नहीं हो सकते। उस दिन की राजनीति, कूटनीति, धोखाधड़ी, सब उस में है। वह उस दिन का दर्पण है। यही तो उस की खूबी है।

एक पन्ना पढ़ा, बीच में ही रुक गए, कहने लगे कि यह तो मैंने सोचा ही नहीं था कि इस तरह की बातें...। तुमने भी नहीं सोची होंगी कि वेद में कोई ब्राह्मण प्रार्थना कर रहा है परमात्मा से कि मेरी गाय के थन बड़े हो जाएं! तुम कहोगे—यह कोई बात हुई? और यहीं तक बात नहीं रुकती, मेरे दुश्मन की गाय के थन छोटे हो जाएं। मगर मैं कहता हूं—यह वेद सिर्फ प्रतिफल है मनुष्य का। ऐसा आदमी है। वेद ईमानदार हैं। मैं तो प्रशंसा करता हूं इस बात की कि वेद ईमानदार हैं। उस ने बताया कि आखिर ऋषि भी तुम्हारे तुम जैसे ही हैं। उनके भी पैर मिट्टी के हैं, और उनकी खोपड़ी में भी कुछ तुमसे ऊंची बातें नहीं उठतीं। उनकी प्रार्थनाएं भी छुद्र आकांक्षाओं से भरी हैं, कि मेरे खेत में वर्षा ज्यादा हो जाए, और पड़ोसी के खेत में बिलकुल न

हो। यही तो तुम भी चाहते हो कि तुम्हारे खेत में वर्षा हो जाए और पड़ोसी के खेत में वर्षा न हो। यही तो आदमी की सामान्य आकांक्षा है।

मैंने सुना है, एक आदमी ने बहुत भक्ति की, बहुत भक्ति की और परमात्मा प्रकट हुआ; उस ने कहा—मांग ले तू क्या मांगता है! उस ने कहा—जो मैं मांगूं, वह मुझे मिल जाए। परमात्मा ने कहा—ठीक, लेकिन एक शर्त मेरी भी, तुझसे दुगना तुम्हारे पड़ोसियों को मिल जाएगा। तू जो मांग वह तुझे मिलेगा, मगर तत्क्षण तुझसे दुगना तेरे पड़ोसियों को मिल जाएगा। उस आदमी ने छाती पीट ली, उस ने कहा मार डाला!

भगवान तो तिरोहित हो गया। अब वह आदमी बड़ी मुश्किल में। मांगना चाहे कि लाख रुपए चाहिए, मगर लाख मांगे तो पड़ोसियों को दो लाख मिल जायेंगे! आखिर उस ने किसी वकील की तलाश की—वकील तो मिल ही जाते हैं। उस ने खोजा किसी को कि कोई तरकीब निकालो, इस शर्त में से कोई रास्ता निकालो। वकील ने कहा, क्या रखा है! तू मांग कि तेरे घर के समाने एक कुआं खुद जाए। उस ने कहा—इससे क्या होगा? उस ने कहा तू पहले कुआं तो खुदने दे! उस ने मांगा कि मेरे घर के सामने एक कुआं खुद जाए। कुआं खुद गया—और पड़ोसियों के सामने दो-दो कुएं। और वकील ने कहा—अब तू मांग कि मेरी एक आंख फूट जाए। पड़ोसियों की दो-दो आंखें फूट गयीं। और सामने दो-दो कुएं! तो जो गति हो गयी उस गांव की! मगर वह आदमी बड़ा प्रसन्न था। घूमता था बस्ती में—अकेले ही बचा, अंधों में कनवा राजा—और लोग तड़फ रहे हैं, कुओं में गिरे हैं, वह देख रहा है मजा, कि यह रहा मजा!!

भगवान ने भी न सोचा होगा कि वकील रास्ता निकाल लेंगे। लेकिन उस आदमी ने लाख रुपए नहीं मांगे सो नहीं मांगे। उस ने महल मांगना चाहा था वह नहीं मांगा। मांगने का मजा ही चला गया। मांगने का मजा ही इसमें है कि पड़ोसी से ज्यादा तुम्हारे पास हो। तो वह जो वेद की ऋचा है वह मनुष्य की सहज, स्वाभाविक, पाशविक छुद्र आकांक्षा की प्रतीक है। मैं तो कहता हूं यह सुंदर है। मगर वह वेद के पोषक एकदम बेचैन हो गए। उन्होंने कहा—मैंने तो नहीं सोचा था इस तरह की छोटी बातें वेद में होंगी। इस तरह की छोटी बातें बाइबिल में भी हैं। इस तरह की छोटी बातें कुरान में भी हैं। मगर जो जिस शास्त्र की घोषणा करता है, वह हर चीज को ठीक सिद्ध करना चाहता है। शायद इसी डर से वह पढ़ता भी नहीं कि कहीं कुछ ऐसा मिल जाए कि जिससे मेरी श्रेष्ठता की घोषणा में अड़चन पड़े—पढ़ने-वढ़ने की झंझट में भी नहीं पड़ता। लोग लड़ने को तैयार होते हैं, पढ़ने को कौन तैयार है!

तुम अपने भीतर जांचना, निरीक्षण करना, जब भी तुम किसी बात की घोषणा करते हो कि यह ठीक, यह श्रेष्ठ, तो क्या परोक्षरूपेण तुम अपने अहंकार की घोषणा नहीं कर रहे हो? और जहां अहंकार की घोषणा है, वहीं पाप है। और जागकर धीरे-धीरे अपने अहंकार की सारी घोषणाओं को विलीन कर दो। जिस दिन तुम्हारे अहंकार की सारी घोषणाएं जा चुकी होंगी, उस क्षण तुम पाओगे भगवान से संबंध होना शुरू हुआ।

फिर न वेद बाधा है, न बाइबिल, न कुरान; फिर न कृष्ण, न राम, न अल्लाह। फिर दिखायी पड़ेगा वह, लाओत्सु कहता है उसका क्या नाम है मुझे मालूम नहीं, काम चलाने को 'ताओ' कहता हूं। फिर काम चलाने को तुम 'राम' कह लेना, कोई हर्जा नहीं। मगर काम चलाने को, याद रहे, भूल मत जाना। यह काम चलाने की बात है।

'योगस्तूभयार्थमपेक्षणात्प्रयाजवत्।'

और योग तो वाजपेय यज्ञ में प्रयाज की भांति भक्ति और ज्ञान का अंग स्वरूप है। और शांडिल्य कहते हैं कि जैसे ज्ञान समझ हो तो सहयोगी हो सकता है भक्ति में, समझ हो तो, ज्ञान अपने-आप में सहयोगी नहीं होता। समझ लेना ठीक से, समझ हो तो जहर भी अमृत हो सकता है। और ज्ञान जहर है! जरा भी नासमझी की औषधि नहीं रह जाएगी; उसी से व्याधि पैदा हो जाएगी। ज्ञान समझपूर्वक हो। समझ का मतलब ही यह है, यह बात याद रहे कि जो मैंने नहीं जाना है वह सिर्फ जानकारी है। यह बात याद रहे कि औरों ने जाना है, मुझे खोजना है अभी।

ज्ञान से प्यास जगे सत्य की, तो तो समझ है। और ज्ञान से तृप्ति होने लगे कि पा लिया, जान लिया, तो मृत्यु। तो तुम मारे गए। तो तुमने आत्महत्या कर ली। ज्ञान की फांसी लगा ली। ज्ञान में बोध होना चाहिए। यह याद सदा ही रहे कि यह मेरा जाना हुआ नहीं है। बुद्ध ने कहा है। बुद्ध ने कहा तो ठीक ही कहा होगा। शांडिल्य ने कहा है। शांडिल्य ने कहा तो ठीक ही कहा होगा। लेकिन मैं नहीं जानता हूं। और जब तक मैं नहीं जानता हूं मैं कैसे गवाह बनूं? मुझे खोजना है अभी। और शांडिल्य ने कहा है, बुद्ध ने कहा है, नारद ने कहा है, कृष्ण ने कहा है, इतने लोगों ने कहा है तो खोजना होगा। फिर बैठूं न, जीवन गंवाऊं न, मैं भी इस खोज पर निकलूं। और इन सबने कहा परम आनंद है उस उपलब्धि से, तो मेरा जीवन ऐसे ही रेगिस्तान न रह जाए, मरुद्यान बनाऊं, एक बगिया लगाऊं, फूल खिलाऊं। मगर मेरे फूल खिलेंगे तभी गवाही दे सकूंगा, तभी कह सकूंगा बुद्धों से कि हां, ठीक कहा है। जब तक मेरे फूल न खिलेंगे तब तक तुम्हारी बात सुन कर अपनी प्यास को जगाऊंगा, अपनी खोज को त्वरा दूंगा, तीव्रता लाऊंगा, और भी बल लगाऊंगा, अपनी सारी ऊर्जा समर्पित कर दूंगा कि जब इतने महापुरुषों ने कहा है तो पाने योग्य कुछ होगा, खोजू, लेकिन जब तक स्वयं न पा लूं तब तक यह न कहूंगा कि मैंने जान लिया है। क्योंकि वह तो झूठ होगा। वह तो ज्ञान के साथ अन्याय होगा। ज्ञान अगर बोधपूर्वक हो तो भक्ति में सहयोगी बन जाता है। शांडिल्य कहते हैं ऐसे ही योग भी सहयोगी बन जाता है, अगर समझपूर्वक हो। योग बड़ी महिमापूर्ण प्रक्रिया है, साधन है। योग साध्य नहीं है, भक्ति साध्य है। ज्ञान साध्य नहीं है, भक्ति साध्य है। ज्ञान का उपयोग कर लेना प्यास जगाने के लिए। और योग का क्या उपयोग करोगे? योग का उपयोग करना अपने को शुद्ध करने के लिए। परमात्मा के आने के पूर्व तैयारी करनी होगी न! घर में मेहमान आता है तो स्वच्छता करते हो न! झाड़ू-बुहारी लगाते हो न! कूड़ा—करकट साफ करते हो न! योग वही है। उस परम प्रिय को पुकारा है तो घर की तैयारी कर लेनी जरूरी है। उसके योग्य आसन बिछाओगे न! उसके योग्य स्वच्छता चाहिए, पुनीतता चाहिए,

पवित्रता चाहिए। धूप-दीप जलाओगे न! वही योग है। योग का इतना ही अर्थ है, जो कल्मष है, उसे धो डालूं। जो दीवालें गंदी हो गयी हैं मेरे जीवन के अनाचरण से, मेरे जीवन के अज्ञान से, मेरे जीवन की मूर्च्छा से, सब धब्बे साफ कर डालूं। स्वच्छ कर लूं घर, ताकि उसे सुविधा न हो। जब तुम्हारे पात्र में अमृत भरने को हो, तो जो जहर के दाग लग गए हैं उन्हें छुड़ाओगे न; बस वही है योग।

समझ हो तो योग की प्रत्येक प्रक्रिया अनूठी है। शुद्धि का अपूर्व मार्ग है। तुम्हारे रोएं-रोएं को शुद्ध कर जाएगी, पुनीत कर जाएगी, पावन कर जाएगी। तुम्हें तैयार कर जाएगी, तुम्हें मंदिर बना देगी, जिसमें कि विराजमान हो सके परमात्मा। तुम्हें सिंहासन बना देगी, जिस पर वह हृदयों का सम्राट आए और बैठे। मगर अक्सर ऐसा होता है कि समझ है कहां। ज्ञान इकट्ठा करे आदमी पंडित हो जाता है, प्रज्ञावान नहीं होता। और योग की प्रक्रियाओं में पड़कर आदमी गोरखधंधे में पड़ जाता है। बस वह फिर व्यर्थ की बातें ही करता रहता है। आसन लगाये रहता है, आसन जमाये जाता है, उल्टे-सीधे व्यायाम करता रहता है, सिर के बल खड़ा होता रहता है; धीरे-धीरे यही उस की जीवनचर्या हो जाती है, वह भूल ही जाता है कि मेहमान को भी बुलाना है; वह मंदिर ही बनाने में इतना मशगूल हो जाता है कि मेहमान द्वार पर भी आकर खड़ा हो जाए तो भी वह आंख उठा कर नहीं देखता, वह मंदिर ही बनाने में लगा रहता है। वह सफाई ही करता रहता है। सफाई का फिर कोई अंत नहीं है। फिर तुम करते ही चले जाओ।

यह देह पूर्ण शुद्ध तो हो ही नहीं सकती। यह देह अशुद्धि से बनी है। शुद्ध हो सकती हो, पूर्ण शुद्ध कभी नहीं हो सकती। स्वस्थ हो सकती है, पूर्ण स्वस्थ कभी नहीं हो सकती। पूर्णता का देह से संबंध नहीं जुड़ सकता। देह तो अपूर्ण रहेगी, सीमा में बंधी रहेगी। इसमें तो व्याधियां-आंधियां रहेंगी। समाधि इसमें फलानी है। इसलिए जितनी व्याधियां कम हों, उतना अच्छा। लेकिन तुम इसी फिक्र में मत पड़ जाना कि जब व्याधियां समाप्त हो जाएंगी तब देखेंगे समाधि। तो फिर तुम कभी न देख पाओगे समाधि। एक व्याधि हटेगी, दूसरी पैदा होगी, दूसरी हटेगी, तीसरी पैदा होगी। इससे तो गोरखधंधा शब्द पैदा हुआ, वह गोरखनाथ से पैदा हुआ। गोरखनाथ महायोगी हुए। उन्होंने योग की प्रक्रियाओं का जैसा प्रयोग किया, किसीने कभी नहीं किया था। पतंजलि भी देखते तो सिर ठोंक लेते! क्योंकि गोरखनाथ ने बड़ी प्रक्रियाएं, कृच्छ साधनाएं खोजीं। सुबह से लेकर सांझ तक लगे ही रहते थे—और दूसरों को भी लगाये रखते थे। उसी से गोरखधंधा शब्द पैदा हुआ। भूल ही गए असली बात, इसी में लग गए; गौण में उलझ गए।

अगर समझ हो, तो गौण में मत उलझना। और खयाल रखना, गोरखधंधा स्वयं उलझ गए ऐसा नहीं है, गोरखनाथ के मानने वाले उलझ गए। गोरखनाथ ने तो जो प्रक्रियाएं दी थीं—यद्यपि बहुत प्रक्रियाएं दी थी—वह अलग-अलग साधकों के लिए दी थीं। किसी को एक, प्रक्रिया दी थी, किसी को दूसरी दी थी, किसी को तीसरी दी थी। धीरे-धीरे यह हुआ कि साधकों को तो लोभ पैदा होता है, उन्होंने सोचा कि

फलां फलां कर रहा है, फलां फलां कर रहा है, वह भी सब कर डालें।

यहां शिविर में तुम पांच ध्यान करते हो, उनमें से एक चुन लेना है। वे सिर्फ चुनाव के लिए हैं। एक सज्जन मेरे पास आए कुछ महीने पहले, उनकी हालत बहुत खराब हुई जा रही है, कहने लगे कि ध्यान से बड़ी हालत खराब हुई जा रही है। मैंने पूछा कि कौन-सा ध्यान करते हो? उन्होंने कहा, कौन-सा क्या, दस ध्यान करता हूं। जितना आपने बताए हैं, सब करता हूं। सुबह चार बजे से लेकर रात बारह बजे तक, लगा ही रहता हूं। हालत तो खराब हो ही जाएगी! अब मेरा कसूर नहीं है। मैंने तुमसे कहा कब कि तुम सब करना? और सब करोगे तो और कब बचेगा कुछ करने को? भगवान को आने की थोड़ी-बहुत जगह भी दोगे, वह द्वार पर ही खड़ा रहेगा? कभी तुम कुंडलिनी कर रहे, कभी तुम सक्रिय कर रहे हो कभी तुम नादब्रह्म कर रहे हो और कभी तुम सूफी कर रहे हो और कभी तुम कुछ कर रहे, वह बाहर ही खड़ा रहेगा कि भई, तुम चुको, तुम्हारी झंझट से मुक्त होओ तो मैं भी आऊं! दो बात तुमसे कर लूं! मगर तुम्हें फुरसत कहां है? थक जाओगे, तब सो जाओगे। और सुबह फिर उठोगे, फिर अपने गोरखधंधे में लग जाओगे—वह गोरखधंधा हो गया! गोरखनाथ ने गोरखधंधा नहीं दिया था, गोरखनाथ ने तो अलग-अलग साधकों को अलग-अलग प्रक्रियाएं दी थीं। मगर लोभ पकड़ता है कि कहीं ऐसा न हो कि इस प्रक्रिया से न मिले तो उससे मिल जाए, उससे न मिले तो उससे मिल जाए, सभी कर डालो। आदमी बड़ा लोभी है। उस लोभ से गोरखधंधा पैदा हुआ। अज्ञानी जो भी करेगा उस में से कुछ न कुछ उपद्रव निकाल लेता है। तुम इससे सावधान रहना।

शांडिल्य कहते हैं—

'योगस्तूभयार्थमपेक्षणात्प्रयाजवत्।

और योग तो वाजपेय यज्ञ में प्रयाज की भांति भक्ति और ज्ञान का अंग स्वरूप है।' जब कोई यज्ञ करता है तो पहले यज्ञ की तैयारी करनी होती है। उस तैयारी का नाम है, प्रयाज—पूर्व तैयारी, भूमिका। हवनकुंड बनाना होगा, भूमि शुद्ध करनी होगी ,बंदनवार बांधने होंगे—वह सब जो तैयारी है, उसका नाम प्रयाज। बिना तैयारी के यज्ञ नहीं हो सकेगा। ऐसे ही शांडिल्य कहते हैं—भक्ति तो यज्ञ है, योग प्रयाज है—पूर्व तैयारी, भूमिका। मगर भूमिका ही है। भूमिका में ज्यादा मत उलझ जाना। अगर तुमने जार्ज बर्नार्ड शॉ की कोई किताब देखी तो तुम चकित होओगे, किताब से बड़ी भूमिका है। किताब है सौ पन्ने की, भूमिका दो सौ पन्ने की। अब भूमिका का मतलब ही यह होता है कि उस में सार-इशारा होना चाहिए, किताब के संबंध में कुछ संकेत होना चाहिए, ताकि जो आदमी किताब पढ़ने को उत्सुक है, वह दो पन्ने भूमिका की पढ़कर यह सोच ले कि यह मेरे काम की है या नहीं। अब दो सौ पन्ने भूमिका के पढ़ने हैं। इससे तो सौ पन्ने की किताब ही सीधी पढ़ लेना ज्यादा सस्ता है। लेकिन बर्नार्ड शॉ को वैसी आदत थी—बहुत लोगों को वैसी आदत है। उनकी भूमिका लंबी होती है। अक्सर वे भूल ही जाते हैं कि भूमिका में ही जीवन व्यतीत हो जाता है।

ऐसे बहुत लोग हैं जो सुख से जीना चाहते हैं; सुख से जीने के लिए धन

पवित्रता चाहिए। धूप-दीप जलाओगे न! वही योग है। योग का इतना ही अर्थ है, जो कल्मष है, उसे धो डालूं। जो दीवालें गंदी हो गयी हैं मेरे जीवन के अनाचरण से, मेरे जीवन के अज्ञान से, मेरे जीवन की मूर्च्छा से, सब धब्बे साफ कर डालूं। स्वच्छ कर लूं घर, ताकि उसे सुविधा न हो। जब तुम्हारे पात्र में अमृत भरने को हो, तो जो जहर के दाग लग गए हैं उन्हें छुड़ाओगे न; बस वही है योग।

समझ हो तो योग की प्रत्येक प्रक्रिया अनूठी है। शुद्धि का अपूर्व मार्ग है। तुम्हारे रोएं-रोएं को शुद्ध कर जाएगी, पुनीत कर जाएगी, पावन कर जाएगी। तुम्हें तैयार कर जाएगी, तुम्हें मंदिर बना देगी, जिसमें कि विराजमान हो सके परमात्मा। तुम्हें सिंहासन बना देगी, जिस पर वह हृदयों का सम्राट आए और बैठे। मगर अक्सर ऐसा होता है कि समझ है कहां। ज्ञान इकट्ठा करे आदमी पंडित हो जाता है, प्रज्ञावान नहीं होता। और योग की प्रक्रियाओं में पड़कर आदमी गोरखधंधे में पड़ जाता है। बस वह फिर व्यर्थ की बातें ही करता रहता है। आसन लगाये रहता है, आसन जमाये जाता है, उल्टे-सीधे व्यायाम करता रहता है, सिर के बल खड़ा होता रहता है; धीरे-धीरे यही उस की जीवनचर्या हो जाती है, वह भूल ही जाता है कि मेहमान को भी बुलाना है; वह मंदिर ही बनाने में इतना मशगूल हो जाता है कि मेहमान द्वार पर भी आकर खड़ा हो जाए तो भी वह आंख उठा कर नहीं देखता, वह मंदिर ही बनाने में लगा रहता है। वह सफाई ही करता रहता है। सफाई का फिर कोई अंत नहीं है। फिर तुम करते ही चले जाओ।

यह देह पूर्ण शुद्ध तो हो ही नहीं सकती। यह देह अशुद्धि से बनी है। शुद्ध हो सकती हो, पूर्ण शुद्ध कभी नहीं हो सकती। स्वस्थ हो सकती है, पूर्ण स्वस्थ कभी नहीं हो सकती। पूर्णता का देह से संबंध नहीं जुड़ सकता। देह तो अपूर्ण रहेगी, सीमा में बंधी रहेगी। इसमें तो व्याधियां-आंधियां रहेंगी। समाधि इसमें फलानी है। इसलिए जितनी व्याधियां कम हों, उतना अच्छा। लेकिन तुम इसी फिक्र में मत पड़ जाना कि जब व्याधियां समाप्त हो जाएंगी तब देखेंगे समाधि। तो फिर तुम कभी न देख पाओगे समाधि। एक व्याधि हटेगी, दूसरी पैदा होगी, दूसरी हटेगी, तीसरी पैदा होगी। इससे तो गोरखधंधा शब्द पैदा हुआ, वह गोरखनाथ से पैदा हुआ। गोरखनाथ महायोगी हुए। उन्होंने योग की प्रक्रियाओं का जैसा प्रयोग किया, किसीने कभी नहीं किया था। पतंजलि भी देखते तो सिर ठोंक लेते! क्योंकि गोरखनाथ ने बड़ी प्रक्रियाएं, कृच्छ साधनाएं खोजीं। सुबह से लेकर सांझ तक लगे ही रहते थे—और दूसरों को भी लगाये रखते थे। उसी से गोरखधंधा शब्द पैदा हुआ। भूल ही गए असली बात, इसी में लग गए; गौण में उलझ गए।

अगर समझ हो, तो गौण में मत उलझना। और खयाल रखना, गोरखधंधा स्वयं उलझ गए ऐसा नहीं है, गोरखनाथ के मानने वाले उलझ गए। गोरखनाथ ने तो जो प्रक्रियाएं दी थीं—यद्यपि बहुत प्रक्रियाएं दी थी—वह अलग-अलग साधकों के लिए दी थीं। किसी को एक, प्रक्रिया दी थी, किसी को दूसरी दी थी, किसी को तीसरी दी थी। धीरे-धीरे यह हुआ कि साधकों को तो लोभ पैदा होता है, उन्होंने सोचा कि

फलां फलां कर रहा है, फलां फलां कर रहा है, वह भी सब कर डालें।

यहां शिविर में तुम पांच ध्यान करते हो, उनमें से एक चुन लेना है। वे सिर्फ चुनाव के लिए हैं। एक सज्जन मेरे पास आए कुछ महीने पहले, उनकी हालत बहुत खराब हुई जा रही है, कहने लगे कि ध्यान से बड़ी हालत खराब हुई जा रही है। मैंने पूछा कि कौन-सा ध्यान करते हो? उन्होंने कहा, कौन-सा क्या, दस ध्यान करता हूं। जितना आपने बताए हैं, सब करता हूं। सुबह चार बजे से लेकर रात बारह बजे तक, लगा ही रहता हूं। हालत तो खराब हो ही जाएगी! अब मेरा कसूर नहीं है। मैंने तुमसे कहा कब कि तुम सब करना? और सब करोगे तो और कब बचेगा कुछ करने को? भगवान को आने की थोड़ी-बहुत जगह भी दोगे, वह द्वार पर ही खड़ा रहेगा? कभी तुम कुंडलिनी कर रहे, कभी तुम सक्रिय कर रहे हो कभी तुम नादब्रह्म कर रहे हो और कभी तुम सूफी कर रहे हो और कभी तुम कुछ कर रहे, वह बाहर ही खड़ा रहेगा कि भई, तुम चुको, तुम्हारी झंझट से मुक्त होओ तो मैं भी आऊं! दो बात तुमसे कर लूं! मगर तुम्हें फुरसत कहां है? थक जाओगे, तब सो जाओगे। और सुबह फिर उठोगे, फिर अपने गोरखधंधे में लग जाओगे—वह गोरखधंधा हो गया! गोरखनाथ ने गोरखधंधा नहीं दिया था, गोरखनाथ ने तो अलग-अलग साधकों को अलग-अलग प्रक्रियाएं दी थीं। मगर लोभ पकड़ता है कि कहीं ऐसा न हो कि इस प्रक्रिया से न मिले तो उससे मिल जाए, उससे न मिले तो उससे मिल जाए, सभी कर डालो। आदमी बड़ा लोभी है। उस लोभ से गोरखधंधा पैदा हुआ। अज्ञानी जो भी करेगा उस में से कुछ न कुछ उपद्रव निकाल लेता है। तुम इससे सावधान रहना।

शांडिल्य कहते हैं—

'योगस्तूभयार्थमपेक्षणात्प्रयाजवत्।

और योग तो वाजपेय यज्ञ में प्रयाज की भांति भक्ति और ज्ञान का अंग स्वरूप है।' जब कोई यज्ञ करता है तो पहले यज्ञ की तैयारी करनी होती है। उस तैयारी का नाम है, प्रयाज—पूर्व तैयारी, भूमिका। हवनकुंड बनाना होगा, भूमि शुद्ध करनी होगी ,बंदनवार बांधने होंगे—वह सब जो तैयारी है, उसका नाम प्रयाज। बिना तैयारी के यज्ञ नहीं हो सकेगा। ऐसे ही शांडिल्य कहते हैं—भक्ति तो यज्ञ है, योग प्रयाज है—पूर्व तैयारी, भूमिका। मगर भूमिका ही है। भूमिका में ज्यादा मत उलझ जाना। अगर तुमने जार्ज बर्नार्ड शॉ की कोई किताब देखी तो तुम चकित होओगे, किताब से बड़ी भूमिका है। किताब है सौ पन्ने की, भूमिका दो सौ पन्ने की। अब भूमिका का मतलब ही यह होता है कि उस में सार-इशारा होना चाहिए, किताब के संबंध में कुछ संकेत होना चाहिए, ताकि जो आदमी किताब पढ़ने को उत्सुक है, वह दो पन्ने भूमिका की पढ़कर यह सोच ले कि यह मेरे काम की है या नहीं। अब दो सौ पन्ने भूमिका के पढ़ने हैं। इससे तो सौ पन्ने की किताब ही सीधी पढ़ लेना ज्यादा सस्ता है। लेकिन बर्नाड शॉ को वैसी आदत थी—बहुत लोगों को वैसी आदत है। उनकी भूमिका लंबी होती है। अक्सर वे भूल ही जाते हैं कि भूमिका में ही जीवन व्यतीत हो जाता है।

ऐसे बहुत लोग हैं जो सुख से जीना चाहते हैं; सुख से जीने के लिए धन

इकट्ठा करने में लगते हैं, फिर धन ही इकट्ठा करते-करते मर जाते हैं—सुख से जीने का मौका ही नहीं आता; भूमिका ही पूरी नहीं होती।

सिकंदर सारी दुनिया को जीत कर सुख से जीना चाहता था। मगर सारी दुनिया को जीत कर। फकीर डायोज़नीज़ ने उससे कहा था कि मेरी समझ में यह तर्क नहीं आता। सुख से ही जीना है न, तो अभी क्यों नहीं सुख से जीते? सिकंदर ने कहा—अभी कैसे जी सकता हूं, पहले दुनिया जीतनी है! डायोजनीज ने कहा—अभी क्यों नहीं जी सकते, मैं जी रहा हूं, और मैंने पूरी दुनिया नहीं जीती। पूरी दुनिया की तो बात और, जो मेरे पास था वह भी मैंने छोड़ दिया, क्योंकि उससे झंझट होती थी। देखो मैं मजे में लेटा हूं—वह लेटा ही था नग्न; नदी के तट पर धूप ले रहा था सुबह की—उस ने सिकंदर से कहा, तुम क्यों परेशान होते हो? इस टीन के पोंगरे में मैं रहता हूं, इसमें जगह काफी है, इसमें एक कुत्ता भी रहता है, मैं भी रहता हूं तुम भी रह सकते हो।

वह जो म्युनिसिपैलिटी का कचरा इकट्ठा करने के लिए टीन का बड़ा डब्बा रखा होता है, वही डब्बा उस को मिल गया था एक पुराना डब्बा; म्युनिसिपैलिटी ने फेंक दिया होगा, उस ने उसीको साफ कर लिया, वह उसीमें रहने लगा था; नदी के किनारे उस को रख लिया था, जब छाया की जरूरत होती अंदर चला गया, जब धूप की जरूरत होती बाहर आ गया। एक भिक्षापात्र उसके पास था केवल। वह भी उस ने एक दिन फेंक दिया। क्योंकि एक दिन पानी पीने जा रहा था नदी की तरफ अपना भिक्षापात्र लिए, उसी के साथ-साथ एक कुत्ता भागता हुआ आया, इसके पहले कि वह पात्र में पानी भरे, कुत्ते ने झटके से जल्दी से अपनी जीभ से सीधा-सीधा पानी पी लिया। उसे बड़ी हार मालूम हुई, उस ने कहा, कुत्ता हमसे आगे निकल गया! हम नाहक यह भिक्षापात्र लिए फिरते हैं! इसके पास कोई पात्र वगैरह भी नहीं है, यह हमसे महात्यागी है, उस ने वहीं नदी में पात्र बहा दिया। उस ने कहा जब कुत्ता चला लेता है काम, तो हम भी चला लेंगे। वह उस की आखिरी संपदा थी। उस ने सिकंदर को कहा कि उस दिन से मेरे पास कुछ है ही नहीं, मगर मैं बड़े मजे में हूं। और निश्चित वह मजे में था! उतना मस्त आदमी लोगों ने देखा नहीं। वह यूनान का महावीर है। नग्न था और मस्त था।

एक बार कुछ लोगों ने उसे पकड़ लिया एक जंगल में। मस्ती देख कर और नग्न देख कर उन्होंने सोचा कि अच्छा है, बजार में बेच देंगे—उन दिनों गुलाम बिकते थे। जब उन्होंने उसे पकड़ा तो उस ने जल्दी से अपने हाथ उनके सामने कर दिए, वे तो बड़े हैरान हुए, क्योंकि उन्होंने सोचा था कि यह झंझट-झगड़ा करेगा तो चार को पस्त कर देगा। मगर उस ने जल्दी से हाथ कर दिए और उस ने जल्दी से जंजीरें डलवा लीं, उस ने कहा तुम नाहक जंजीर डाल रहे हो, तुम कहां जाना चाहते हो, मैं तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूं; जंजीर काहे को तुम झंझट करते हो! वह उनके साथ हो लिया। रास्ते में जो भी मिलता उस को लोग नमस्कार करते, वे चार तो उसके गुलाम जैसे मालूम पड़ते। किसीने पूछा कि ये लोग कौन हैं, उस ने कहा कि ये मेरे गुलाम

है। उन्होंने कहा तुम बात क्या कर रहे हो? उस ने कहा तुम देख लो, तुम कोई से भी पूछ लो, मालिक कौन मालूम पड़ रहा है? तुम चोर जैसे मालूम पड़ते हो, मैं मालिक हूं। फिर उसे वे बजार ले गए। वहां बजार में जब उसे टिकटी पर खड़ा किया गया—जिस पर खड़े होकर गुलाम बिकते थे—उस ने जोर से आवाज लगायी कि एक मालिक आज बिकने आया है, किसी गुलाम को खरीदना हो तो खरीद ले। और था वह आदमी मालिक। उस की शान वैसी थी! जिसकी कोई इच्छा न रही हो वह मालिक हो ही जाता है। उस की गरिमा!

लेकिन सिकंदर ने कहा कि ठीक तुम कहते हो कि मैं भी आराम कर सकता हूं, मगर मुश्किल है। पहले तो मैं दुनिया जीतूंगा। डायोजनीज ने कहा, तो तुम एक बात मेरी याद रखना, दुनिया तो शायद जीतोगे कि नहीं, मगर आराम कभी न कर पाओगे। दुनिया जीतने के पहले मर जाओगे। और यही हुआ। सिकंदर जब हिंदुस्तान से वापिस लौटता था तो यूनान वापिस नहीं पहुंच पाया, रास्ते में मर गया। जिस दिन मरा, उस दिन उसे डायोजनीज की याद आयी। उस दिन उसके आंख से आंसू गिरे। और किसीने पूछा कि तुम क्यों रोते हो? उस ने कहा, मैं उस फकीर के लिए रोता हूं, उस ने ठीक कहा था, वह आदमी सच कहता था।

भूमिका में ही जिंदगी निकल जाती है।

तो योग को कहीं इतना मत पकड़ लेना कि नेति, धोती और आसन, व्यायाम और प्राणायाम और करते-करते ही मर जाओ। योग भूमिका है, समाधि लक्ष्य है। न मालूम कितने लोग भूमिका में ही मर जाते हैं। समाधि पर ध्यान रखना है। शांडिल्य ठीक कहते हैं कि योग का उपयोग हो सकता है सहयोग की तरह।

'गौण्यातु समाधिसिद्धः।

गौणी भक्ति के द्वारा समाधि की सिद्धि होती है।' दो तरह की भक्तियां शांडिल्य ने कही हैं—गौणी भक्ति और पराभक्ति। गौणी भक्ति का अर्थ होता है—अभी भक्त मौजूद है, भगवान मौजूद है, दोनों आमने-सामने खड़े हैं; रस बह रहा है, अपूर्व आनंद है, मस्ती बंधी है, लौ से मिल गयी है, मगर अभी द्वैत कायम है; गौण भक्ति। पराभक्ति का अर्थ है—भगवान भक्त में खो गया, भक्त भगवान में खो गया, अब दो नहीं।

पहली जो गौणी भक्ति है, उससे जो समाधि मिलती है, पतंजलि का शब्द उपयोग करें तो उसका नाम है—सबीज समाधि। और जो पराभक्ति है, उसके लिए पतंजलि का शब्द उपयोग करें तो उसका नाम है—निर्बीज समाधि। सबीज समाधि में बीज अभी कायम है; वृक्ष खो गया, लेकिन अभी कायम है। मौका बीज से फिर वृक्ष पैदा हो सकता है। गौणी भक्ति से जो समाधि मिलती है, वह खो सकती है। तुम भगवान के सामने खड़े हो, लेकिन अभी दूरी है, चाहे इंच भर की दूरी हो मगर दूरी है। और जो इंच भर की दूरी है, वह मील की दूरी हो सकती है, योजनों की दूरी हो सकती है, फिर दूरी बढ़ सकती है, फिर भेद हो सकता है, फिर भटकाव हो सकता है। अभी बीज कायम है, द्वैत कायम है। तो या तो उसे सबीज समाधि कहें—अभी

गिरना हो सकता है, या सविकल्प समाधि कहें—अभी विचार कायम है, अनुभव हो रहा है कि आनंद आ रहा है, मैं हूं और मुझे आनंद आ रहा है।

जब तक तुम्हें ऐसा लगे कि आनंद आ रहा है, तब तक समझना—गौणी भक्ति, छोटी समाधि; अभी अनुभव करने वाला शेष है। फिर अंतिम चरण में होती है—पराभक्ति; बीज भी मिट गया, बीज दग्ध हो गया, अब कभी लौटना न हो सकेगा, अब कोई वापसी नहीं होगी, संसार समाप्त हुआ। अब अनुभव भी नहीं हो सकता कि मैं आनंद में हूं—मैं ही नहीं हूं, आनंद ही आनंद है। इसलिए गौणी भक्ति से तो अनुभव होता है, पराभक्ति में अनुभव नहीं होता।

कृष्णमूर्ति ठीक कहते हैं कि वह जो परमदशा है, उस को अनुभव नहीं कहा जा सकता। उसे ज्ञान भी नहीं कहा जा सकता। उसे दर्शन भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि दर्शन, ज्ञान अनुभव, सभी में दो की अपेक्षा है—जानने वाला अलग होता है जाना जाने वाले से; ज्ञेय अलग है ज्ञाता से; द्रष्टा अलग होता है दृश्य से। उस परमदशा में द्रष्टा और दृश्य एक है। वह पराभक्ति, वह निर्बीज समाधि, निर्विकल्प समाधि। वही लक्ष्य है।

गौणी भक्ति से समाधि की सिद्धि हो सकती है। लेकिन उससे तृप्त मन हो जाना। उससे भी पार जाना है। ऐसी जगह जाना है जिसके पार और जाना न रहे। उस स्थिति को पाना है जिसके पार और कोई स्थिति नहीं है। फूल ही बन कर समाप्त मत हो जाना—फूल यानी गौणी भक्ति; अभी आकार है, अभी रूप है, अभी रंग है; सुवास होकर समाप्त होना। सुवास मुक्त हो गयी आकार से, रूप से, रंग से। सुवास आकाश में ली हो गयी। सुवास आकाश हो गयी। उसे शांडिल्य ने पराभक्ति कहा है। गौणी भक्ति में भक्त और भगवान होते हैं और भक्ति में भक्त और भगवान होते हैं और भक्ति होती है, पराभक्ति में न कोई भक्त होता, न कोई भगवान होता, बस भक्ति होती है, भगवत्ता होती है।

ऐसे ये अपूर्व सूत्र हैं। शांडिल्य को सुनकर तुममें प्यास जगे, इसलिए इन सूत्रों की व्याख्या कर रहा हूं, ज्ञान न जमा लेना। ज्ञान जमा लिया, चूक गए। प्यास जगाना। तुम्हारे भीतर गहन आकांक्षा उठे, अभीप्सा जगे, एक लपट बन जाए कि पाकर रहूं, कि इस अनुभव को जानकर रहूं, कि इस अनुभव को जाने बिना जीवन अकारथ है। ऐसी ज्वलंत आग तुम्हारे भीतर पैदा हो जाए तो दूर नहीं है गंतव्य। उसी आग में अहंकार जल जाता है। उसी आग में बीज दग्ध हो जाता है और तुम्हारे भीतर जन्मों-जन्मों से छिपी हुई सुवास मुक्त आकाश में विलीन हो जाती है। उसे मोक्ष कहो, निर्वाण कहो, जो नाम देना चाहो दो—उसका कोई नाम नहीं, है; लाओत्सु ठीक कहता है, उसका कोई नाम नहीं है, काम चलाने को 'ताओ' कहता हूं।

आज इतना ही।

आठवां प्रवचन

प्रीति की पराकाष्ठा भक्ति है

8

मनुष्य की आस्था धर्म से क्यों उठ गयी है?

★

शांडिल्य ज्ञान और योग को भक्ति का सहायक बताते हैं।
वैसे ही ज्ञान और योग के प्रस्तोता भक्ति को
अपना सहायक मानते हैं या नहीं?

★

क्या भक्त भी कभी भगवान से झगड़ता है?

★

संन्यासी के संबंध में नीत्से का कथन—
कहां तक सही, कहां तक गलत?

★

समर्पण यानी क्या?

पहला प्रश्न : मनुष्य की आस्था धर्म से क्यों उठ गयी है?

धर्मों के कारण ही। धर्मों का विवाद इतना है, धर्मों की एक-दूसरे के साथ छीना-झपटी इतनी है, धर्मों का एक-दूसरे के प्रति विद्वेष इतना है कि धर्म धर्म ही न रहे। उन पर श्रद्धा सिर्फ वे ही कर सकते हैं जिनमें बुद्धि नाममात्र को नहीं है। अब सिर्फ मूढ़ ही पाए जाते हैं मंदिरों में, मस्जिदों में। जिसमें थोड़ा भी सोच-विचार है, वहां से कभी का विदा हो चुका है। क्योंकि जिसमें थोड़ा सोच-विचार है, उसे दिखायी पड़ेगा कि धर्म के नाम से जो चल रहा है वह धर्म नहीं, राजनीति है; कुछ और है।

जीसस चले जब जमीन पर तो धर्म चला, पोप जब चलते हैं, तो धर्म नहीं चलता, कुछ और चलता है। बुद्ध जब चले तो धर्म चला; अब पंडित हैं, पुजारी हैं, पुरोहित हैं, वे चलते हैं। उनके चलने में वह प्रसाद नहीं। उनकी वाणी में अनुभव की गंध नहीं। उनके व्यक्तित्व में वह कमल नहीं खिला जो प्रतीक है धर्म का। उनके हृदय बंद हैं और उतनी ही कालिख से भरे हैं जितने किसी और के, शायद थोड़े ज्यादा ही।

धर्म के नाम पर वैमनस्य है, ईर्ष्या है, हिंसा है, खून-खराबा है; मस्जिद और मंदिर ने इतना लड़वाया है कि कोई भरोसा भी करना चाहे तो कैसे करे? और शास्त्र सब आज नहीं कल झूठे हो जाते हैं। सत्य तो शास्ता में होता है, शास्त्रों में नहीं। सत्य तो बुद्ध में है, धम्मपद में नहीं; मुहम्मद में है, कुरान में नहीं—यद्यपि कुरान मोहम्मद से पैदा हुई है। तो तब तक कुरान मोहम्मद के ओंठों पर थी तब तक उसमें मोहम्मद की श्वास थी, मोहम्मद की प्राण-ऊर्जा प्रतिफलित होती थी, जैसे ही शब्द मोहम्मद के ओठों से हटे, मुर्दा हो गए। स्रोत से टूटे, कुछ के कुछ हो गए। फिर तुम्हारे हाथ में पड़े तुमने उन्हें वह अर्थ दिया जो तुम दे सकते हो। तुम वह अर्थ तो कैसे दोगे जो मोहम्मद देना चाहते थे? मोहम्मद हुए बिना वह अर्थ नहीं दिया जा सकता। वह अर्थ मोहम्मद के होने में है। तुमने अपने अर्थ दिए। तुम्हारे अर्थ किसी प्रयोजन के नहीं। लाभ तो नहीं हो सकता, हानि सुनिश्चित होगी। अनातोले फ्रांस का प्रसिद्ध वचन है कि कोई बंदर अगर दर्पण में झांकेगा तो बंदर को ही पाएगा।

मुल्ला नसरुद्दीन एक रास्ते से गुजरता था। एक दर्पण पड़ा हुआ मिल गया। उसने कभी दर्पण नहीं देखा था, उठाकर देखा, खुद की तस्वीर दिखायी पड़ी। खुद की तस्वीर कभी देखी नहीं थी, सोचा कि हो न हो मेरे पिता की तस्वीर है। पिता को देखा था। पिता को तो मरे हुए वक्त हो गया था। सोचा, मगर वृद्ध हो गयी, यह मैंने कभी

सोचा न था कि वे इतने रंगीन तबीयत के थे कि तस्वीर बनवायेंगे! पोंछ-पांछकर, सम्हालकर घर ले आया; छुपाकर रख दिया एक संदूक में; पत्नी चुपचाप देखती रही—जैसी पत्नियां देखती हैं कि क्या कर रहा है! शक उसे हुआ कि कुछ गड़बड़ है, कुछ दाल में काला है। जब चला गया नसरुद्दीन तो उसने खोली संदूक, तस्वीर उठाकर देखी, अपना चेहरा दिखायी पड़ा; तो उसने कहा—अच्छा, तो इस खड्डूस के पीछे दीवाना है! उसने भी कभी अपनी तस्वीर न देखी थी।

दर्पण में वही दिखायी पड़ता है जो तुम हो। शास्त्रों में भी वही दिखायी पड़ता है जो तुम हो। जिसके हाथ में शास्त्र पड़ा, उसका ही हो गया। मोहम्मद के हाथ में जब तक था तब तक कुरान थी, तुम्हारे हाथ में पड़ी कुछ की कुछ और हो गयी। और फिर तुम्हारे हाथों से भी चलती रही। हजारों साल बीत जाते हैं, एक हाथ से दूसरे हाथ, दूसरे हाथ से तीसरे हाथ, गंदी होती चली जाती है। किताबें गंदी हो जाती हैं।

ध्यान रहे, इस जगत में प्रत्येक चीज का जन्म होता है और प्रत्येक चीज की मृत्यु होती है। धर्म तो शाश्वत है। लेकिन कौन सा धर्म? वह धर्म, जो जीवन का धारण किए है, वह शाश्वत है। लेकिन बुद्ध ने जब कहा, कहा शाश्वत को ही, लेकिन जब विचार में बांधा तो शाश्वत समय में उतरा। और समय के भीतर कोई भी चीज शाश्वत नहीं हो सकती। समय के भीतर तो पैदा हुई है, मरेगी। जन्मदिन होगा, मृत्यु भी आएगी। जब कोई सत्य शब्द में रूपायित होता है तो सबसे पहले लोग उसका विरोध करते हैं। क्यों? क्योंकि उनकी पुरानी मानी हुई किताबों के खिलाफ पड़ता है। खिलाफ न पड़े तो कम से कम भिन्न तो पड़ता ही है। लोग विरोध करते हैं।

सत्य का पहला स्वागत विरोध से होता है—पत्थरों से, गालियों से। सत्य पहले विद्रोह की तरह मालूम होता है। खतरनाक मालूम होता है। बहुत सूलियां चढ़नी पड़ती हैं सत्य को, तब कहीं स्वीकार होता है। लेकिन उन सूलियां चढ़ने में ही समय बीत जाता है और सत्य जो संदेश लाया था वह धूमिल हो चुका होता है। जब तक तुम सत्य को स्वीकार करते हो, तब तक वह सत्य ही नहीं रह जाता। इतनी देर लगा देते हो स्वीकार करने में, लड़ने-झगड़ने में विवाद में इतना समय गंवा देते हो कि तब तक सत्य पर बहुत धूल जम जाती है। धूल जम जाती है तभी तुम स्वीकार करते हो। क्योंकि तब सत्य तुम्हारे शास्त्र जैसा मालूम होने लगता है। तुम्हारे शास्त्र पर भी धूल जमी है बहुत।

जब बुद्ध पहली दफा बोले, तो जो गीता को मानते थे उन्होंने विरोध किया, जो वेद को मानते थे उन्होंने विरोध किया, बुद्ध दुश्मन की तरह मालूम पड़े, संघातक। फिर धीरे-धीरे बुद्ध के वचनों पर भी धूल जम गयी, धम्मपद ने भी धूल इकट्ठी कर ली; जब धम्मपद पर धूल की पर्त इकट्ठी हो गयी, तो धूल और धूल तो सब एक जैसी होती हैं, उसके नीचे क्या दबा है—वेद दबा है, कि धम्मपद, कि कुरान—क्या फर्क पड़ता है? जब धूल की पर्त खूब गहरी हो जाती है तब तुम्हारा मन भर जाता है, तब तुम कहते हो—अब ठीक है, अब अपने शास्त्र जैसा लगने लगा।

एक मकान पर एक आदमी ने दस्तक दी। वह कुछ किताबें बेचने लाया था।

उसने घर की महिला से कहा कि यह नया से नया निकला हुआ शब्दकोश है, खरीद लें, बच्चों के काम आएगा, और बड़ों के भी काम का है। महिला उसे टालना चाहती थी, उसने कहा—शब्दकोश हम क्या करेंगे, वह रखा है शब्दकोश, टेबल पर; हमारे पास शब्दकोश है, धन्यवाद! लेकिन वह भी एक ही आदमी था, उसने कहा, टेबल पर जो रखा है वह शब्दकोश नहीं है, बाइबिल है। वह स्त्री तो बड़ी हैरान हुई; क्योंकि टेबल दूर कोने में रखी थी, उतनी दूर से दिखायी भी नहीं पड़ता था कि बाइबिल हो सकती है। उसने कहा, तुमने कैसे जाना? उसने कहा, धूल जमी है, उसी से पता चलता है। शब्दकोश को तो कोई कभी उलटता-पलटता भी है, बाइबिल को कौन खोलता है?

जब धूल जम जाती है शास्त्रों पर समय की, जब शास्त्र परंपरा बन जाता है, जब शास्त्र सत्य को जन्माता नहीं, सत्य की कब्र बन जाता है, तब तुम स्वीकार करते हो—इसीलिए तुम स्वीकार करते हो। कब्रें कब्रें सब एक जैसी होती हैं। कब्रों में क्या फर्क? जिंदा आदमियों में फर्क होते हैं। कब्रों में तो सिर्फ नाम का ही फर्क रह जाता है, कि किसकी कब्र, पत्थर पर लिखा होता है, बस, इतना ही फर्क होता है। और तो कोई फर्क नहीं होता है। धम्मपद जब कब्र बन जाता है तो गीता की कब्र और कुरान की कब्र और वेद की कब्र से कुछ फर्क नहीं होता तब तुम स्वागत कर लेते हो। तुम पुराने का स्वागत करते हो। सत्य जब नया होता है तब सत्य होता है। जितना नया होता है, उतना सत्य होता है। क्योंकि उतना ही ताजा-ताजा परमात्मा से आया होता है। जैसे गंगा गंगोत्री में जैसी स्वच्छ है, फिर वैसी काशी में थोड़े ही होगी? हालांकि तुम काशी जाते हो पूजने! काशी तक तो बहुत गंदी हो चुकी, बहुत नदी-नाले गिर चुके, बहुत अर्थ मिश्रित हो चुके, न मालूम कितने मुर्दे बहाए जा चुके। काशी तक आते-आते तो गंगा अपवित्र हो गयी, कितनी ही पवित्र रही हो गंगोत्री में। जैसे वर्षा होती है तो जब तक पानी की बूंदें जमीन नहीं छुईं तब तक वह परम शुद्ध होती हैं, जैसे ही जमीन छुईं, कीचड़ हो गयीं। कीचड़ के साथ एक हो गयीं।

बुद्ध जब जानते हैं, या शांडिल्य जब जानते हैं, जब उनकी समाधि में परमात्मा झलकता है, तब ऐसी बूंद है जो अभी आकाश से पृथ्वी की तरफ चली—अभी आयी नहीं। जब शांडिल्य बोलते हैं, तो पृथ्वी की धूल मिलने लगी। शब्द पृथ्वी के हैं, सत्य आकाश का है। फिर तुमने सुना, फिर दर्पण तुम्हारे हाथ में पड़ा, फिर उसमें तुम्हें जो दिखायी पड़ता है वह तुम्हारा ही चेहरा है। फिर धीरे-धीरे पर्त दर पर्त धूल इकट्ठी होती जाती है जब धूल काफी हो जाती है, तो उसी धूल को हम कहते हैं परंपरा। सत्य की कोई परंपरा होती है? सत्य की कोई परंपरा नहीं होती। सत्य का कोई संप्रदाय होता है? सत्य का कोई संप्रदाय नहीं होता। लेकिन जब सत्य संप्रदाय बन जाए, अर्थात मर जाए, सड़ जाए, गल जाए, लाश हो जाए, तब तुम उसे छाती से लगाते हो। तुम्हारा लाशों से प्रेम इतना गहरा है, तुम जिंदा आदमी को मार लेते हो तब प्रेम करते हो।

तो पहले तो सत्य का अवतरण होता है विद्रोह की तरह, जब सत्य मरने

लगता है तब धीरे-धीरे कुछ लोग स्वीकार करते हैं। जब बिलकुल मर जाता है, तो सभी लोग स्वीकार करते हैं। तब सत्य विश्वास बन जाता है।

फिर और एक पतन होता है। यह तो तब की बात है जब बुद्ध के आसपास लोग सुनते हैं, विरोध करते हैं, अंगीकार करते हैं। फिर बुद्ध को बीते ढाई हजार साल हो गए, फिर एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को देती चली जाती है। जिन्होंने बुद्ध से सुना था, या जिन्होंने कम से कम बुद्ध को देखा था, उन्हें कुछ भी सत्य की भनक कान में पड़ी होगी। बुद्ध के व्यक्तित्व का थोड़ा सा स्पर्श हुआ होगा, बुद्ध का रंग थोड़ा उनकी आत्मा पर पड़ा होगा, छाया पड़ी होगी—कितनी ही कम, लेकिन पड़ी होगी—फिर उनके बेटे और उनके बेटों के बेटे इसलिए मानते हैं कि पिता मानते थे, पिता के पिता मानते थे, सदा से लोग मानते रहे हैं, तब विश्वास अंधविश्वास हो जाता है। और जिनको तुम धर्म कहते हो, वह अंधविश्वास है। उन्हें कभी का विदा हो जाना चाहिए। सत्य के रोज नए संस्करण आकाश से उतरते हैं। रोज नयी कुरान उतरती है। परमात्मा थक नहीं गया है, मोहम्मद पर चुक नहीं गया है। न ईसा परमात्मा के अकेले बेटे हैं—जैसा ईसाई कहते हैं, इकलौते बेटे। और न चौबीस तीर्थंकरों पर परमात्मा समाप्त हो गया है। हजारों बुद्ध हुए हैं, हजारों बुद्ध होते रहेंगे। परमात्मा रोज आता रहा है, रोज आता रहेगा, लेकिन बीते परमात्मा से तुम्हारा छुटकारा हो तो तुम नए को समझ पाओ। पुरानी प्रतिमाएं तुमने इतनी इकट्ठी कर ली हैं राम की, कृष्ण की, बुद्ध की, कि जब नया संस्करण परमात्मा का आता है तो तुम्हें अड़चन आती है—जगह ही नहीं मिलती, कहां रखो! और उस नए में ही श्रद्धा पैदा हो सकती है, क्योंकि उसी नए में चिनगारी है। वही चिनगारी तुम्हारे भीतर पड़ जाए तो तुम्हारे जीवन-यज्ञ को प्रज्ज्वलित करे। तुम राख की पूजा कर रहे हो, इसलिए चिनगारी पर श्रद्धा कैसे आए? फिर राख की पूजा करते-करते तुम भी ऊब जाते हो, कुछ होता नहीं, फिर श्रद्धा खो जाती है।

तुमने पूछा—मनुष्य की आस्था धर्म से क्यों उठ गयी है? धर्मों के कारण। अन्यथा मैंने ऐसा मनुष्य नहीं देखा जो किसी न किसी रूप में जाने-अनजाने धर्म की खोज न करता हो। ऐसा मनुष्य होता ही नहीं। धर्म की खोज मनुष्य की अंतर्निहित खोज है। वह स्वाभाविक है। जैसे भूख लगती है हर आदमी को, और हर आदमी को प्यास लगती है, और हर आदमी को प्रेम की आकांक्षा जगती है, वैसे ही हर आदमी को प्रभु की आकांक्षा भी जगती है। नाम कुछ भी हों।

एक युवक ने कुछ दिन पहले मुझे आकर कहा कि मुझे परमात्मा में कोई उत्सुकता नहीं है, मैं तो यहां आनंद पाने आया हूं। तो मैंने कहा—तुम पागल हो; तुमने परमात्मा का नाम आनंद रखा है। आनंद से चलेगा। नाम का ही भेद है। आनंद कहो। सदा से उपनिषद के ऋषि कहते रहे हैं—सच्चिदानंद। सत चित आनंद। चलो, तुम आनंद कहो। कोई सत कहता है, कोई चित कहता है, कोई तीनों इकट्ठे जोड़ लेता है। तुम्हें जो नाम देना हो। कोई आकर कहता है कि मुझे शांति की तलाश है। तो तुम शांति कहो। तलाश परमात्मा की है। तलाश अंतिम की है। तलाश उसकी है जिसने सबको सम्हाला है। तलाश उसकी है जिससे हम आए हैं और जिसमें हमें जाना है।

तलाश उसकी है कि जो मिल जाए तो जीवन में अर्थ आए, सुगंध आए, नृत्य आए, उत्सव आए। उसीका नाम परमात्मा है। उस तत्व का नाम परमात्मा है जिसके आने से जीवन में अंधेरा टूट जाता है और रोशनी होती है। जिसके आने से उदासी कट जाती है, थकान मिट जाती है, तुम पुनरुज्जीवित हो उठते हो। उस तत्व का नाम है जिसके आने से फिर मृत्यु नहीं घटती, अमृत ही घटता है। शांडिल्य ने कहा न कि जो उसके साथ एक हो जाता है, वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है।

तुमने ऐसा आदमी देखा, जो अमृत न चाहता हो? जो न चाहता हो कि मृत्यु के पार भी जीऊं? कि मृत्यु आए और मैं न मरूं? जिसके भीतर शाश्वत के साथ संबंध जोड़ लेने की प्रबल आकांक्षा न हो, ऐसा आदमी देखा? ऐसा आदमी होता ही नहीं।

तो धर्म से तो श्रद्धा उठ ही नहीं सकती, लेकिन धर्मों से उठ जाती है। अच्छा ही है। मैं तुम्हें एक बात याद दिला देना चाहता हूं—जिनकी धर्मों से श्रद्धा उठ जाती है, वे ही धार्मिक हो सकते हैं। मेरे देखे नास्तिक ही आस्तिक हो सकता है। जो झूठी आस्तिकता में उलझे रह जाते हैं, वे कभी आस्तिक नहीं हो पाते। झूठी आस्तिकता असली शत्रु है आस्तिकता की, नास्तिकता नहीं। नास्तिक तो कहता है—मैंने देखा नहीं, मैं कैसे मानूं? यह तो ईमानदारी की बात हुई। देखा नहीं कैसे मानूं? देखूंगा तो मानूंगा। नास्तिक कहता है—दिखा दो तो मानूं। परमात्मा मिले तो बराबर मानूं। इसमें कहां बुराई है? निर्भीक स्वर है, साहस है, खोज की तैयारी है। असल में जो खोज से बचना चाहते हैं वे कहते हैं—हो या न हो, हमें क्या लेना-देना, कौन सिर मारे, आप कहते ही हैं, होगा, जरूर होगा। यह बचने की तरकीब है, यह पाने की तरकीब नहीं है।

मंदिरों-मस्जिदों में तुम्हें झूठे धार्मिक लोग मिलेंगे। सच्चे धार्मिक की तो कभी की श्रद्धा उठ जाती है मंदिर-मस्जिदों से। सच्चा धार्मिक बुद्ध को खोजता है, शांडिल्य को खोजता है, नारद को खोजता है; कृष्ण को, क्राइस्ट को, मुहम्मद को खोजता है। सच्चा धार्मिक मंदिर-मस्जिदों में पंडित-पुजारियों को नहीं खोजता। जिनको खुद ही पता नहीं है, वे दूसरे को कैसे जनाएंगे? जिनके जीवन में खुद ही कोई किरण नहीं है, जिनके दीए खुद बुझे पड़े हैं, उनके पास भी पहुंच जाओगे तो तुम्हारे दीए को ज्योति कैसे मिलेगी? सच्चा धार्मिक गुरु को खोजता है, सिद्धांत नहीं खोजता। क्योंकि कोई मिल जाए, जो जुड़ा दे। कोई ऐसा मिल जाए, जिसने जाना हो, जिसके माध्यम से सेतु बन जाए। लेकिन मंदिर-मस्जिद तुम्हें परंपरा से मिलते हैं, पंडित-पुजारी तुम्हें परंपरा से मिलते हैं। तुम्हें पता ही नहीं कि तुमने उन्हें कभी चुना था। तुम्हें बिना चुने मिलते हैं।

बच्चा पैदा हुआ नहीं कि हम चले उसे लेकर, कि चलो जाकर बप्तिस्मा करवा दें, कि चलो खतना करवा दें, कि चलो जनेऊ डलवा दें, हम चले! अभी बच्चे को कुछ भी पता नहीं है, उससे हमने पूछा भी नहीं है। और हम जिनके पास ले जा रहे हैं उनके पास हम भी इसी तरह ले जाए गए थे, हमने भी नहीं जाना है। जो पिता अपने बच्चे को ले जा रहा है चर्च की तरफ, उसे अगर चर्च में जाना हो तो भी ठीक है—तब तो ठीक ही है। उसने चर्च में जाकर जाना, उसे जीवन का आनंद मिला,

जीवन का रस बहा, वह अपने बेटे को भी भागीदार बनाना चाहता है। लेकिन उसे भी नहीं मिला है, उसके पिता उसे ले गए थे; उसके पिता को भी नहीं मिला था; याद ही नहीं पड़ता कि कभी किसी को पीछे कब मिला था। अंधे अंधों को मार्ग दिखा रहे हैं। अंधा अंधा ठेलिया दोई कूप पड़ंत, नानक ने कहा है, अंधे अंधों को ठेल रहे हैं।

तुम ईसाई बन गए, यह तुम्हारा चुनाव नहीं; तुम हिंदू बन गए, यह तुम्हारा चुनाव नहीं; तुम्हारी श्रद्धा हो तो कैसे हो? तुमने इस श्रद्धा के लिए दांव पर क्या लगाया है? तुमने कीमत क्या चुकायी? जो आदमी जीसस के पास जाकर उनका अनुयायी बना था, उसने कीमत चुकायी थी। उसने खतरा मोल लिया था। जीसस को सूली लगी थी, उनके साथ चलने वाले लोगों के भी प्राण उतने ही खतरे में थे। कुछ कीमत चुकानी पड़ती है। जो आदमी बुद्ध के साथ चला था, उसने बहुत अवमानना सही थी।

एक मित्र ने पूछा है कि मैं संन्यास लेना चाहता हूं, लेकिन ये गैरिक वस्त्र बड़ी अड़चन में डाल देंगे मुझे। नौकरी मुश्किल में पड़ेगी, परिवार झंझट खड़ी करेगा, गांव-समाज के लोग अड़चनें डालेंगे। यह तो होगा, इतनी कीमत तो चुकानी होगी। परमात्मा मुफ्त नहीं मिलता है। और यह भी कोई कीमत है! एक नौकरी जाएगी तो दूसरी मिलेगी—और नहीं भी मिली तो क्या? अगर परमात्मा के रास्ते पर बिना नौकरी के जीना पड़ा तो बेहतर है, भीख मांगनी पड़ी तो बेहतर है। परमात्मा को खोकर तुम सम्राट भी हो जाओ तो तुम भिखारी हो। और परमात्मा को पाकर तुम भिखारी भी रह जाओ, तो तुम जैसे सम्राट और कोई नहीं। लेकिन हम छोटी-छोटी बातों से डरते हैं। यह डर ज्यादा दिन न रहेगा। जल्दी ही बहुत से गैरिक संन्यासी होंगे और यह भय समाप्त हो जाएगा। लेकिन तब सार भी चला जाएगा। सार अभी है। अभी जो मेरे साथ चलने को तत्पर हैं, उनके जीवन में रूपांतरण होगा। सौ साल बाद बहुत लोग चलने को तैयार होंगे, लेकिन तब तक शास्त्र पर धूल जम गयी होगी; तब तक बात खो गयी होगी; तुमने अपने ढंग की बना ली होगी। उसके पहले जागो।

इसलिए मैं कहता हूं जो धार्मिक हैं, या कम से कम धार्मिक होने के लिए आतुर हैं, उनकी श्रद्धा धर्मों से उठ जाती है। उनकी ही उठती है, क्योंकि उनकी तृप्ति नहीं होती। जिसको प्यास लगी है, उसे तुम पानी की तस्वीर बताओ—सुंदर सरोवर, हरे वृक्षों से ढंका, बतखें तैरती हुई—प्यारी तस्वीर दिखाओ, वह आग-बबूला हो जाएगा। वह कहेगा, मैं प्यासा हूं, तस्वीरें मत दिखाओ। जिसको प्यास नहीं लगी, वह बड़ा प्रसन्न होगा, वह कहेगा सुंदर तस्वीर है, मढ़ा लूंगा, अपने घर पर टागूंगा; बड़ी सुंदर है, बड़ी प्यारी है। तो पानी ऐसा होता है। सुंदर हुआ कि तुम ले आए बड़ी कृपा है। जिसे भूख लगी है उसे तुम पाकशास्त्र की किताब दो कि इसमें सब है, सब भोजन तैयार करने की विधियां लिखी हैं, वह किताब तुम्हारे सिर पर मारेगा; वह कहेगा—मुझे भूख लगी है, पाकशास्त्र का क्या करूंगा? जिसे परमात्मा की प्यास जगी है, वही तुम्हारे मंदिर-मस्जिदों से घबड़ा जाता है; वही तुम्हारे पुरोहितों की बकवास से ऊब जाता है; वही उनके व्यर्थ के वितंडा और व्यर्थ के सिद्धांतों के

ऊहापोह से ऊब जाता है; वही पीठ फेर लेता है; वही है नास्तिक, उसी को तुम कहते हो अश्रद्धालु; लेकिन मेरे देखे वह श्रद्धा के स्रोत की तरफ चल पड़ा, उस की खोज शुरू हो गयी है।

इक यही सोजे-निहां कुल मेरा सरमाया है
दोस्तो, मैं किसे ये सोजे-निहां नज्र करूं
कोई कातिल सरे-मकतल नजर आता ही नहीं
किसको दिल नज्र करूं और किसे जां नज्र करूं
तुम भी महबूब मेरे, तुम भी हो दिलदार मेरे
आशना मुझसे मगर तुम भी नहीं, तुम भी नहीं
खत्म है तुम पे मसीहानफसी चारागरी
मरहमे-दर्दे-जिगर तुम भी नहीं, तुम भी नहीं
अपनी लाश आप उठाना कोई आसान नहीं
दस्तो-बाजू मेरे नाकारा हुए जाते हैं
जिनसे हर दौर में चमकी है तुम्हारी दहलीज
आज सज्दे वही आवारा हुए जाते हैं
दूर मंजिल थी मगर ऐसी भी कुछ दूर न थी
लेके फिरती रही रास्ते ही में वहशत मुझको
एक जख्म ऐसा न खाया कि बहार आ जाती
...एक जख्म ऐसा न खाया कि बहार आ जाती
दार तक लेके गया शौके-शहादत मुझको
राह में टूट गए पांव तो मालूम हुआ
जुज मेरे और मेरा रहनुमा कोई नहीं
एक के बाद खुदा एक चला आता था
कह दिया अक्ल ने तंग आके खुदा कोई नहीं

जिसके हृदय में प्यास है, वहां जख्म है, घाव है। वह घाव पंडित-पुरोहितों की मलहम-पट्टी से नहीं भरता। झूठी सांत्वनाओं से नहीं भरता। और मवाद इकट्ठी होती है, और समय जाया होता है। जिसके भीतर घाव है वह तो परमात्मा से मिले बिना तृप्त नहीं होगा। वह तो हटा देगा बीच से सारी मूर्तियों को। वही तो मूर्तिभंजक है। हटा देगा सारे सिद्धांतों और शास्त्रों को, निकल पड़ेगा तलाश में। वह परमात्मा से कम पर राजी नहीं हो सकता।

एक जख्म ऐसा न खाया कि बहार आ जाती।

दुख तो यही है कि हजारों लोग मंदिर-मस्जिदों में हैं और उनके दिल में कोई जख्म नहीं। नहीं तो बहार कभी की आ जाती। प्यास हो, तो पानी मिल जाता है। मिलेगा ही, क्योंकि खोज होती है। प्यास ही न हो, तो पानी बहता रहे सामने से तो भी दिखाई नहीं पड़ता। हमें वही दिखायी पड़ता है जिसकी आकांक्षा और अभीप्सा होती है। परमात्मा तो चारों तरफ खड़ा है—इन हरे वृक्षों में, इन लोगों में, इन आकाश के

चांद-तारों में, लेकिन हमें दिखायी नहीं पड़ता। हमें आकांक्षा नहीं है। हमें वही दिखायी पड़ता है, जो हम चाहते हैं। तुमने देखा, जब तुम बाजार जाते हो तो जिस दिन तुम जो खरीदने जाते हो, उसी-उसी की दुकानें तुम्हें दिखायी पड़ती है। किसी दिन तुम मिठाई खरीदने गए हो, तो तुम हैरान होते हो कि इतनी मिठाई की दुकानें हैं इस बाजार में, पहले नहीं दिखायी पड़ी थीं! उस दिन तुम्हें चांदी-सोने की दुकानें दिखायी नहीं पड़तीं, उनसे तुम्हें लेना-देना नहीं है। फिर किसी दिन चांदी-सोना खरीदने गए हो, तब तुम हैरान होते हो—इतनी दुकानें! उस दिन मिठाई की दुकानें तिरोहित हो जाती हैं, धूमिल हो जाती हैं। तुम जो खरीदने निकलते हो वही दिखायी पड़ता है। मंदिर-मस्जिदों में वे लोग बैठे रहते हैं जो परमात्मा को खरीदने नहीं निकले हैं। झूठी सांत्वनाओं में बैठे रहते हैं। नहीं तो आदमी सदगुरु की तलाश में निकलता है।

लेके फिरती रही रस्ते ही में वहशत मुझको
एक जख्म ऐसा न खाया कि बहार आ जाती
दार तक लेके गया शौके-शहादत मुझको
राह में टूट गए पांव तो मालूम हुआ
जुज मेरे और मेरा रहनुमा कोई नहीं

तुम्हारे अतिरिक्त और तुम्हें कोई नहीं बचा सकता। तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हें और कोई परमात्मा तक पहुंचा नहीं सकता। बुद्धपुरुष इशारा करते हैं, चलना तो तुम्हीं को है। जुज मेरे और मेरा रहनुमा कोई नहीं। मेरे अलावा मेरा मार्गदर्शक और कोई भी नहीं। यह उसी दिन पता चलता है जिस दिन सच्ची प्यास जगती है। और तुम खोज में निकलते हो और सब झूठी बातों को रास्ते से हटा देते हो।

एक के बाद खुदा एक चला आता था
कह दिया अक्ल ने तंग आके खुदा कोई नहीं

इतने मंदिर-मस्जिद, इतनी मूर्तियां, इतने शास्त्र, इतने सिद्धांत, इतना जंजाल—कह दिया अक्ल ने तंग आके खुदा कोई नहीं।

तुम पूछते हो—धर्म से श्रद्धा क्यों उठ गयी, आस्था क्यों उठ गयी? इसलिए कि धर्म हो तो एक ही हो सकता है। विज्ञान एक है, इसलिए विज्ञान पर श्रद्धा है। अब तुमने कहीं सुना कि विज्ञान अगर बहुत हो जाएं—हिंदुओंका, मुसलमानों का, ईसाइयों का—और सब अलग-अलग बातें कहने लगें, तो विज्ञान पर भी श्रद्धा उठ जाएगी। विज्ञान पर इतनी श्रद्धा क्यों है? क्योंकि विज्ञान सार्वभौम है, एक ही है। फिर चाहे ईसाई खोजे, चाहे हिंदू, चाहे मुसलमान, कोई फर्क नहीं पड़ता। विज्ञान का सिद्धांत न हिंदू होता है, न मुसलमान, न ईसाई, सिर्फ वैज्ञानिक होता है। यही मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि धर्म का सिद्धांत सिर्फ धार्मिक होता है; बुद्ध कहें, शांडिल्य कहें, कृष्ण कहें, कौन कहे इससे फर्क नहीं पड़ता। धर्म का सिद्धांत धार्मिक होता है, जैसे विज्ञान का सिद्धांत वैज्ञानिक होता है। धर्म तो और भी सार्वभौम है। विज्ञान की तो सीमा है, क्योंकि वह पदार्थ पर समाप्त हो जाता है। धर्म की तो असीमा है, क्योंकि वह आत्मा में ले जाता है, परमात्मा में ले जाता है। धर्म को संकीर्ण दायरों से मुक्त

होने दो, श्रद्धा लौट आएगी। अभी हालत ऐसी है, जिनकी श्रद्धा का कोई मूल्य नहीं उनको श्रद्धा है। और जिनकी श्रद्धा का कुछ मूल्य हो सकता है, उसको कोई श्रद्धा नहीं है। हालत बड़ी अजीब है। मुर्दे बैठे हैं मंदिरों में, जिंदा आदमी कभी के निकल भागे हैं। और वे जिंदा आदमी ही मंदिरों को जिंदा बना सकते थे। लेकिन तुम्हारे मंदिरों की इतनी कतारें हैं, घबड़ा देती हैं, बुद्धि तंग आ जाती है। लोग सोचते हैं कि धर्म से आस्था उठ गयी है क्योंकि दुनिया में नास्तिकता बढ़ गयी है, गलत सोचते हैं। कि दुनिया में कम्यूनिजम बढ़ गया है, गलत सोचते हैं। कि विज्ञान के प्रभाव ने लोगों के मन में श्रद्धा नष्ट कर दी है, गलत सोचते हैं। धर्म पर श्रद्धा उठ गयी है धर्म के नाम पर चलते गहन पाखंड के कारण, धर्म के नाम पर चलते अंधविश्वास के कारण। धर्म ने आत्महत्या कर ली है। इसलिए श्रद्धा उठ गयी है।

मगर खोज मरती नहीं, खोज का मंदिरों-मस्जिदों से कुछ रुकाव नहीं होता, खोज जारी है। खोजने वाले खोजते रहते हैं, कोई उन्हें कभी नहीं रोक पाता। वे अपनी खोज में लगे रहते हैं। नाम बदल जाएं, हो सकता है कि भगवान को भगवान कहने में संकोच होने लगे, क्योंकि भगवान शब्द के साथ इतने गलत साहचर्य जुड़ गए हैं; आनंद कहो, ध्यान कहो, समाधि कहो, प्रेम कहो, कुछ नए नाम खोज लो, कुछ फर्क नहीं पड़ता। लेकिन एक बात सुनिश्चित है। आदमी अंधेरे में और रोशनी चाहता है; आदमी मृत्यु से घिरा है और अमृत का स्वाद चाहता है; आदमी महादुख में है, आनंद का उत्सव चाहता है; वह श्रद्धा अखंड है। उस श्रद्धा को ही मैं धर्म की श्रद्धा कहता हूं। वह न कभी नष्ट हुई है, न कभी नष्ट होगी। जो नष्ट हो जाता है, जो नष्ट हो सकता है, वैसी वह श्रद्धा नहीं। तुम लाख कहो कि मैं अश्रद्धालु हूं, तो भी तुम्हारे भीतर यह तीन बातों की तलाश चलती रहती है—अंधेरे के पार, दुख के पार, मृत्यु के पार कुछ है, कुछ होना चाहिए। पर्दे के पार कुछ जरूर होना चाहिए, नहीं तो इतना जीवन कहां से आए, कैसे आए! और जीवन कितना सुसंबद्ध चलता है। कोई सूत्र होना चाहिए जो सबको बांधे हुए है। दिखायी नहीं पड़ता, सच है। तुमने गले में माला पहन रखी है, उसमें मनके तो दिखायी पड़ते हैं, धागा जो सब मनकों को बांधे है दिखायी नहीं पड़ता, वही सूत्रधार है। वही परमात्मा है। इतना विराट आयोजन चल रहा है, इसमें कोई सूत्रबद्ध सबको सम्हाले है, नहीं तो ये मनके बिखर जाते कभी के, ये सब गिर जाता। अराजकता नहीं है, एक गहन सुसंबद्धता है; एक संगीत है। यही संगीत प्रमाण है ईश्वर का। तर्क प्रमाण नहीं होते ईश्वर के ये जीवन की जो संयोजना है, यही प्रमाण है।

उसकी तलाश सदा रही है, सदा रहेगी। नाम बदल जाते तलाश के, लेकिन तलाश जारी रहती है। बहुत रूपों में प्रकट होती है। यह सदी प्रौढ़ सदी है। यह पुरानी सदियों जैसी नहीं है कि किसी ने कहा और मान लिया। यह बचकानी सदी नहीं है। आदमी प्रौढ़ हुआ है, हर कुछ नहीं मान लेगा, वही मानेगा जिसको कसौटी पर कसेगा और ठीक पाएगा। यह सौभाग्य की घड़ी है। अब दुनिया में पाखंड ज्यादा दिन नहीं चलेगा। यह अश्रद्धा, यह अनास्था अच्छी है, सौभाग्य है, शुभ संकेत है, शुभ मुहूर्त

है यह। इसलिए इसे शुभ मुहूर्त कहता हूं कि इस अनास्था की आग में पाखंड के सारे जाल जल जाएंगे, धर्म नया होकर निकलेगा, फिर सूरज उगेगा—ताजा। सूरज की तस्वीरों से बहुत दिन मन बहला लिया, अब उनसे मन बहलता नहीं, अब असली सूरज चाहिए, इसलिए अनास्था है।

इससे तुम विषाद मत लेना। इस अनास्था को सीढ़ी बनाओ। इसी सीढ़ी पर चढ़कर असली आस्था सदा आयी है, सदा आती है—और कोई उपाय नहीं है। अनास्था की रात से गुजरकर ही आस्था की सुबह पैदा होती है। और ध्यान रखना, जब रात बहुत-बहुत अंधेरी होती है, तभी सुबह बहुत करीब होती है।

दूसरा प्रश्न : जैसे शांडिल्य ऋषि ज्ञान और योग को भक्ति का सहायक बताते हैं, वैसे ही ज्ञान और योग के प्रस्तोता भक्ति को अपना सहायक मानते हैं या नहीं?

भक्त की दृष्टि ज्ञानी और योगी की दृष्टि से ज्यादा उदार होती है। चूंकि भक्ति का स्रोत है हृदय। हृदय विराट है, अपने से विरोधी को भी समा लेता है। हृदय संगति की चिंता नहीं करता, हृदय संगीत की चिंता करता है। ज्ञान और योग हृदय के मार्ग नहीं हैं, बुद्धि के मार्ग हैं। बुद्धि बड़ी संकीर्ण है। बुद्धि चुनाव करती है। फिर बुद्धि संगति की चिंता करती है, संगीत की नहीं—तर्क युक्त संगति होनी चाहिए। तो महावीर के वचनों में भक्ति की गुंजाइश नहीं हो सकती। शुद्ध विचार का मार्ग है, सम्यक ज्ञान, ठीक ज्ञान का मार्ग है। वहां तो जो ज्ञान को एकदम अनुकूल है वही अंगीकार होगा। ज्ञान चुनाव कर लेता है, छांट लेता है; सुसंबद्ध होता है; रूपरेखा होती है ज्ञान की। भक्त इतना संकीर्ण नहीं होता। भक्त को असंगति में कुछ घबड़ाहट नहीं होती। जैसे तार्किक, दार्शनिक असंगत नहीं होता, लेकिन कवि असंगत होता है।

अमरीका के महाकवि ह्विटमेन को किसी ने पूछा कि तुम्हारी कविताओं में बड़ी असंगतियां हैं, कंट्राडिक्शंस हैं, बड़े विरोधाभास हैं। मालूम है ह्विटमेन ने क्या कहा? ह्विटमेन ने कहा, हां हैं, क्योंकि मैं बड़ा हूं, क्योंकि मैं विराट हूं, और मैं विरोधाभासी को आत्मसात कर लेता हूं। यह कोई तर्कशास्त्री नहीं कह सकता कि मैं विरोधाभासों को आत्मसात कर लेता हूं, कि दिन और रात दोनों के लिए मुझ में जगह है, यह कोई कवि ही कह सकता है। और भक्ति तो कवि का मार्ग है, हृदय का मार्ग है। भक्ति काव्य है।

तुम कविता में संगति नहीं खोजते, संगीत खोजते हो। तुमने भी खयाल किया होगा, जब तुम किसी कविता को सुंदर कहते हो, तब तुम यही कहते हो कि कविता में बड़ा लालित्य है, बड़ी लय है, बड़ा रस है, बड़ा संगीत है; यह कविता ऐसी है कि गुनगुनायी जा सकती है, गेय है। कविता में तुम सत्य-असत्य की फिक्र नहीं करते, संगीत की फिक्र करते हो। लेकिन गणित में तुम संगीत की फिक्र नहीं करते; तुम ठीक है कि गलत है, संगत है कि असंगत है, इसकी चिंता करते हो। विचार के जो मार्ग हैं वे तर्कनिष्ठ होते हैं; उनकी निष्ठा तर्क की है। भाव का जो मार्ग है, उसकी निष्ठा तर्क

की नहीं है; वह अतर्क्य है, तर्कातीत है। इसलिए शांडिल्य जितनी सरलता से कह देते हैं कि ज्ञान भी सहयोगी है और योग भी भूमिका है, उतनी सरलता से ज्ञानी नहीं कह सकेंगे, योगी नहीं कह सकेंगे; उनका दायरा संकीर्ण होगा। सिर छोटा है, हृदय से बहुत छोटा है।

इसलिए तो सिर में जीने वाले लोग ओछे हो जाते हैं। खोपड़ी ही उनकी दुनिया हो जाती है। हृदय खुले आकाश जैसा है, खोपड़ी तुम्हारे घर का आंगन है। या ऐसा समझो कि खोपड़ी ऐसे है जैसे तुमने एक छोटी सी बगिया लगायी, साफ-सुथरी, कटी-छंटी, लान बनाया, क्यारियां बनायीं, सब सिमिट्री में रखा समतोल बनायी; इधर एक क्यारी, तो उधर एक क्यारी; इधर एक द्वार, तो उधर एक द्वार; लेकिन भक्ति जंगल की तरह है, बगिया नहीं है। आदमी की बनायी हुई बगिया नहीं है। तो जंगल में तो सभी होगा। वहां तुम सिमिट्री खोजने जाओगे तो नहीं मिलेगी। वहां तो कोई वृक्ष कहां ऊग आएगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। तुम यह नहीं कह सकते कि यह दोनों वृक्ष अगर आमने-सामने होते तो अच्छे लगते। वहां तो सब जंगल ही होगा न! आदमी व्यवस्था बनाता है, जंगल में एक स्वतंत्रता है, व्यवस्था नहीं। भक्ति में एक स्वतंत्रता है, ज्ञान उतना स्वतंत्र नहीं।

इसलिए धन्यभागी हैं वे जो भक्ति में पग जाएं, जो भक्ति में उतर जाएं। जो भक्ति में न उतर सकें, उनके लिए कोई संकीर्ण मार्ग चुनना होगा। भक्ति बड़ा पथ है, सबको समा लेता है। क्योंकि भक्ति प्रेम है। प्रीति का तत्व उसका मूल आधार है। ज्ञान में प्रीति का तत्व नहीं है। प्रीति जोड़ती है, विपरीत को भी जोड़ देती है। सच तो यह है, प्रीति विपरीत को ही जोड़ती है। इसलिए तो पुरुष स्त्री के प्रेम में पड़ता है, स्त्री पुरुष के प्रेम में पड़ती है, वह विपरीत है। जितना वैपरीत्य होता है, उतना ही प्रेम सघन होता है।

पश्चिम में स्त्री-पुरुषों के बीच प्रेम कम होता जा रहा है। और कारण? कारण यह है कि स्त्री-पुरुष समान होते जा रहे हैं, उनकी वैषम्यता मिटती जा रही है, तो रस खोता जा रहा है। पुरुष भी वैसे कपड़े पहने है, स्त्री भी वैसे कपड़े पहने है, पुरुष भी सिगरेट पी रहा है, स्त्री भी सिगरेट पी रही है, पुरुष भी दफ्तर में काम कर रहा है, स्त्री भी दफ्तर में काम कर रही है—स्त्री की पूरी चेष्टा है कि वह ठीक जैसा पुरुष है वैसी ही होनी चाहिए—इसलिए पश्चिम की स्त्री थोड़ी कम स्त्रैण होती जा रही है। उसका स्त्रैण-तत्व कम होता जा रहा है। और जैसे-जैसे स्त्रैण-तत्व कम होता जा रहा है, वैसे-वैसे पुरुष का रस उसमें कम होता जा रहा है। पूरब की स्त्री में ज्यादा स्त्रैण-तत्व है। और इसलिए पूरब की स्त्री ज्यादा आकर्षक है। उतना वैपरीत्य है। पुरुष से भिन्नता है। भिन्नता में रस होता है।

प्रीति का तत्व विपरीत को जोड़ता है—जितने विपरीत हों, उतनी ज्यादा गहराई से जोड़ता है। उतनी ही बड़ी चुनौती होती है प्रीति के तत्व को कि वह जोड़े। इस जगत को जिस तत्व से परमात्मा ने जोड़ा है उस तत्व का नाम प्रीति है। क्योंकि इस जगत में बड़े विरोधाभास हैं, लेकिन सब जुड़ा है। दिन और रात जुड़ी है,

अंधेरा-रोशनी जुड़ी है, मृत्यु-जीवन जुड़ा है, अपूर्व जोड़ है; यह जोड़ सिर्फ प्रीति से ही हो सकता है। यह प्रीति ही है जो विपरीत को बांध सकती है।

अगर भक्तों से पूछो तो भक्त यही कहेंगे—यह सारा अस्तित्व प्रीति के तत्व से जुड़ा है। निबद्ध है। नहीं तो यह गिर पड़े, सब उखड़ जाए, सब टूट जाए। विपरीत में बड़ा आकर्षण होता है।

तो शांडिल्य तो चूंकि प्रीति के उपदेष्टा हैं, उन्होंने योग को भी समाहित कर लिया, ज्ञान को भी समाहित कर लिया—करना ही चाहिए, इससे प्रमाण मिलता है कि जरूर उन्होंने प्रीति को जाना होगा। प्रीति को न जाना होता तो यह बात नहीं हो सकती थी। तुम ज्ञानी से पूछो, तुम कृष्णमूर्ति से पूछो—कृष्णमूर्ति शुद्ध ज्ञान हैं, वहां प्रीति का तत्व जरा भी नहीं है—तुम कृष्णमूर्ति से पूछो कि भक्त के संबंध में क्या ख्याल है? वह कहेंगे—सब कल्पना-जाल। इससे ज्यादा जगह नहीं हो सकती, कल्पना-जाल! सब मन के ही खेल! भक्ति से मुक्त होना पड़ेगा, सहयोग भक्ति का नहीं लिया जा सकता, भक्ति बाधा है, बंधन है, उसी से तो अटकाव है। तुम पतंजलि को पूछो। प्रेम को तत्व के लिए कोई जगह नहीं रह जाती, क्योंकि सारा गणित का हिसाब है। प्रेम को बीच में क्यों लाना? प्रेम के लाने से झंझट होती है।

वैज्ञानिक भी प्रेम को बीच में नहीं लाता। तुम वैज्ञानिक की सुनो, वैज्ञानिक क्या कहता है? वैज्ञानिक कहता है—अगर तुम्हें सत्य का निरीक्षण करना हो तो निष्पक्ष होना, तटस्थ होना, भाव से आंदोलित मत होना, नहीं तो तुम्हारा भाव तुम्हारे सत्य की प्रतीति को डांवाडोल कर देगा। जब एक वैज्ञानिक निरीक्षण करता होता है प्रयोगशाला में तो वह अपने को बिलकुल अलग-थलग कर लेता है, वह तटस्थ खड़ा होता है। कवि इस तरह खड़ा नहीं होता। कवि जब गुलाब के खिले फूल को देखता है तो आनंदमग्न हो जाता है, भावमुग्ध हो जाता है, नाचने लगता है, गुनगुनाने लगता है, उसके भीतर तरंग उठती है। जब वनस्पतिशास्त्री इसी गुलाब के फूल को देखता है, वह न तो गुनगुनाता, न नाचता, क्योंकि वह नाचे और गुनगुनाए तो यह प्रमाण होगा कि वह वनस्पतिशास्त्री नहीं है, वह वैज्ञानिक नहीं है। वैज्ञानिक का मतलब ही यह है कि तुम अपने को बिलकुल दूर रखो, अपने को बीच में मत डालो, अन्यथा तुम जो बीच में डाल रहे हो, कारण ही सत्य को न जान पाओगे। अब फर्क समझते हो?

कवि कहता है कि फूल को अपने को अगर तुमने जोड़ा नहीं फूल से, तो जानोगे कैसे? दूर-दूर रहे, तटस्थ रहे अपने को बचाए रहे; न फूल को तुम्हारे हृदय में प्रवेश मिला, न तुम्हारा फूल में प्रवेश हुआ, जोड़ ही न बना, आलिंगन न हुआ, नाचे नहीं फूल के साथ, फूल की तरंग में मस्त न हुए, मादकता आयी ही न, तो तुम जानोगे कैसे फूल को? फूल अपना हृदय ही नहीं खोलेगा तुम्हारे सामने, फूल अपना घूंघट न उठायेगा। तुम दूर खड़े रहे तो फूल भी दूर खड़ा रह जाएगा, यह कवि कहता है। तुम बढ़ो, तो फूल भी बढ़े। तुम पास आओ, तो फूल भी पास आए। तुम एक कदम चलो, तो फूल भी एक कदम चले। तुम अकड़े खड़े रहे कि मैं तटस्थ, तो फूल

भी तटस्थ रह जाएगा, घूंघट पड़ा रहेगा, फूल अपने हृदय को तुम्हारे सामने खोलेगा नहीं, फूल अपने रहस्य को प्रकट नहीं करेगा; तब तुम जो जानोगे वह व्यर्थ होगा, ऊपरी होगा, परिधि का होगा, सार नहीं होगा उसमें, आत्मा नहीं होगी उसमें, फूल का अस्तित्व अपरिचित रहेगा। इसलिए कवि कहता है कि वैज्ञानिक कितना ही जान ले जगत को, उसका जानना ऊपरी-ऊपरी है, बाहर-बाहर है। जैसे कोई राजमहल में आए और बाहर ही बाहर दीवालों का चक्कर लगाकर, निरीक्षण करके चला जाए, राजमहल के भीतर कभी प्रवेश न करे। और महल भीतर है। बाहर की दीवालें महल नहीं हैं। बाहर की दीवालें तो महल का अंत हैं, वहां महल समाप्त होता है, महल तो भीतर है, महल का सौंदर्य भीतर है, महल का मालिक भीतर है, मालकिन भीतर है, महल का सारा राज भीतर है। बाहर की दीवालों को देखकर गुजरकर चले गए तो तुम कुछ खबर ले जाओगे, कुछ तस्वीरें ले जाओगे, वे महल की ही होंगी, मगर बाहर से होंगी। और बाहर और भीतर में बड़ा भेद है।

विज्ञान बाहर-बाहर भटकता है। तर्क और गणित बाहर-बाहर रह जाते हैं। प्रेम छलांग लगाता है। प्रेम तटस्थ नहीं होता, प्रेम अपने को निमज्जित कर देता है, डुबकी मार जाता है। ज्ञान तैरता है, प्रेम डुबकी मारता है। तो ज्ञान खूब तैर सकता है, दूर-दूर की यात्रा कर सकता है, लेकिन गहराई में उसकी पहुंच नहीं हो पाती।

और ध्यान रखना, जिसने गहराई को जाना, वह बाहर को भी अंगीकार कर लेगा। क्योंकि वह जानता है बाहर भी उसी भीतर का हिस्सा है। लेकिन जिसने बाहर को जाना, वह भीतर को अंगीकार नहीं करेगा, क्योंकि भीतर को उसने जाना ही नहीं, अंगीकार कैसे करे?

ज्ञान का मार्ग संकीर्ण है, भक्ति का मार्ग विराट है। अगर भक्तों से तुम्हारा जोड़ मिल जाए, तो फिर तुम किसी और की चिंता मत करना। न मिले दुर्भाग्यवश, तो फिर तुम कोई और मार्ग खोजना। प्रार्थना बन सकती हो, प्रेम बन सकता हो, तो चूकना मत, क्योंकि वह सुगमतम है, स्वाभाविक है। स्नेह तुम्हारे भीतर है, थोड़ा-बहुत प्रेम भी तुम्हारे भीतर है, थोड़ी-बहुत श्रद्धा भी तुम्हारे भीतर है, इन्हीं को थोड़ा निखार लेना है, फिर यह प्रीति बन जाएंगे। और प्रीति की ही अंतिम पराकाष्ठा भक्ति है।

भक्ति के मार्ग पर तुम्हारे पास संपत्ति पहले से कुछ है, तुम एकदम भिखारी नहीं हो। कुछ है तुम्हारे पास, थोड़ा निखारना है, थोड़ा साफ-सुथरा करना है जरूर, लेकिन कुछ तुम्हारे पास है। ज्ञान के मार्ग पर तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। वहां तो तुम्हें अ, ब, स से शुरू करना पड़ेगा। ज्ञान का मार्ग आदमी की खोज है और भक्ति का मार्ग प्रभु का प्रसाद है। वह तुम्हें दिया ही हुआ है।

तीसरा प्रश्न : क्या भक्त भी कभी भगवान से झगड़ता है?

भक्त ही झगड़ता है और कौन झगड़ेगा! भक्त ही झगड़ सकता है। और तो

किस की इतनी सामर्थ्य होगी! भक्त को भय नहीं होता। प्रेम में कहां भय है? इसलिए मैं कहता हूं: तुलसीदास का वचन गलत है, जो उन्होंने कहा—भय बिन होय न प्रीति। तुलसीदास को प्रीति का पता नहीं है। जहां भय है, वहां प्रीति कैसी? और जो भय के कारण होती है प्रीति, वह कुछ और होगी, प्रीति नहीं है। कोई डंडा लेकर खड़ा है और तुम से कहता है प्रेम करो मुझे; करोगे तुम, क्योंकि डंडा देख रहे हो, नहीं तो सिर खोल देगा। मां बेटे से कह रही है कि मुझे प्रेम करो, मैं तेरी मां हूं और नहीं तो दूध नहीं दूंगी, भूखा मर जाएगा। बेटा भी सोचता है कि प्रेम करना पड़ेगा। यह प्रीति तो भय से हो रही है। बाप कहता है मुझे प्रेम करो, मैं पिता हूं तुम्हारा। इस जगत में तुम्हारी जो प्रीतियां हैं, वे भय से ही हो रही हैं—तुलसीदास उस संबंध में सच हैं—लेकिन ये प्रीतियां कहां हैं? ये तो पाखंड हैं। ये तो थोथी बातें हैं, जबर्दस्ती ओढ़ ली हैं। इनमें सत्य नहीं है, प्रामाणिकता नहीं है। असली प्रीति भय से नहीं होती। और जहां प्रीति होती है, वहां भय नहीं होता। उनका एक साथ समागम नहीं होता। तो भक्त तो लड़ता है, जब जरूरत होती है तो वह लड़ता है, वह लड़ सकता है।

प्रेमी लड़ते हैं। लड़ने से प्रेम नष्ट नहीं होता, सघन होता है। जो प्रेम लड़ने से नष्ट हो जाए, समझो बहुत कमजोर था, था ही नहीं, काम का ही नहीं था, खतम हुआ अच्छा हुआ। हर लड़ाई के बाद जो प्रेम और प्रगाढ़ हो जाता है, वही प्रेम है। हर लड़ने के बाद और एक नया सोपान उपलब्ध होता है प्रेम का। भक्त तो खूब लड़ता है। लड़ने के कारण भी हैं। भक्त का लड़ना एकदम अकारण भी नहीं है।

रात चुपचाप दबे पांव चली जाती है
रात खामोश है रोती नहीं, हंसती भी नहीं
कांच का नीला सा गुंबद है, उड़ा जाता है
खाली-खाली कोई बजरा-सा बहा जाता है
चांद की किरणों में वह रोज-सा रेशम भी नहीं
चांद की चिकनी डली है कि घुली जाती है
और सन्नाटों की इक धूल उड़ी जाती है
काश! इक बार कभी नींद से उठकर तुम भी
हिज्र की रातों में यह देखो तो क्या होता है

प्रेमी भी लड़ता है, भक्त भी लड़ता है। उनकी लड़ाई का सार एक है। भक्त कहता है—मैं इतनी तकलीफ में पड़ा हूं, इतने विरह में पड़ा हूं, कभी तुमको भी विरह सताए तो पता चले!

काश! इक बार कभी नींद से उठकर तुम भी
हिज्र की रातों में यह देखो तो क्या होता है

तुम्हें पता है कि मैं कितना रो रहा हूं, भक्त कहता है! तुम्हें पता है कि कितने आंसू गिरा चुका हूं! तुम्हें सुनायी पड़ता है कि तुम बहरे हो? तुम तक खबर पहुंचती है या नहीं पहुंचती है? शायद तुम्हें अनुभव ही नहीं है विरह का कोई!

फिर वही रात, वही दर्द, वही गम की कसक

फिर उसी दर्द ने सीने में जलाया संदल
फिर वही यादों के बजते हैं तिलस्मी घुंघरू
दूधिया चांदनी पहने हुए अंगूरी बदन
और आवाज में पिघली हुई चांदी लेकर
कोई अनजानी-सी राहों से चला आता है
संगेमर्मर के तराशे हुए बुत जागते हैं
संगेमर्मर के तराशे हुए बुत बोलते हैं
आज की रात वही दर्द की तनहाई की रात
दर्द तनहाई का शायद तुझे मालूम नहीं
क़ाश! इक बार तो तुझको भी यह जहमत होती

प्रेमी भी यही कहता है, भक्त भी यही कहता है कि यह दर्द जो तनहाई का है, एकांत का है, अकेले हो जाने का है, इसका तुझे पता होता! शायद तू इसीलिए नहीं सुन पाता इस रुदन को, इस पुकार को, इस प्यास को, क्योंकि तुझे प्यास का कुछ पता नहीं है, क्योंकि तू कभी रोया नहीं है, तुझे आंसुओं से कुछ मुलाकात-पहचान नहीं है, तुझे हृदय की पीड़ा का कुछ अनुभव नहीं है।

दर्द तनहाई का शायद तुझे मालूम नहीं
काश! इक बार तो तुझको भी यह जहमत होती

इसलिए भक्त के पास कारण है कि वह लड़े। नाराजगी के कारण हैं। लेकिन उसकी लड़ाई में बड़ी मिठास है। उसकी लड़ाई उसकी प्रार्थना का एक ढंग है। फिर दोहरा दूं, भक्त की लड़ाई उस की भक्ति का एक ढ़ग है, वह उसकी आराधना है। उसकी शिकायत, उसका शिकवा, सब उसकी प्रार्थना है। ऐसा मत समझना कि वह किसी दुश्मनी से ये बातें कहता है, ये बड़े प्रेम से उठती हैं, बड़े गहरे प्रेम गहरे प्रेम से उठती हैं। ये उसकी मिलन की गहरी आतुरता से उठती हैं। और कई बार खोज का रेगिस्तान इतना लंबा होता जाता है और आदमी की इतनी छोटी सी सामर्थ्य है कि अगर भक्त नाराज होकर चिल्लाने लगता है कि आखिर कब, आखिर कब मिलन होगा; कब तक चलता रहूं? पैर टूटे जाते हैं, अब यह बोझ और ढोया नहीं जाता, और रास्ते का कोई अंत मालूम होता नहीं, और राह है कि बढ़ी जाती है, और रात है कि लंबी हुई जाती है, सुबह का कोई संदेशा मिलता नहीं, कोई किरण भी फूटती मालूम नहीं होती—और कब तक, और कब तक? लेकिन इस सारी शिकायत के पीछे प्यास है, त्वरा है, गहन अभीप्सा है और बड़ा माधुर्य है।

चौथा प्रश्नः नीत्से ने कहीं कहा है कि संन्यासी एक सूक्ष्म तरह की हिंसा करता है। वह अपनी ऊंचाई से साधारणजनों को दीन-हीन बनाता है, उन्हें आत्म-ग्लानि के भाव से उत्पीड़ित करता है। हो न हो यही हिंसा उसके संन्यास की प्रेरणा हो। भगवान, नीत्से के इस विचार पर कुछ कहने की कृपा करेंगे?

फ्रेडरिक नीत्से जब भी कुछ कहे तो विचार योग्य कहता है। आदमी बड़ी गहराई का था। बुद्ध हो सकता, शांडिल्य हो सकता, ऐसा आदमी था। लेकिन पश्चिम में उसे मार्ग नहीं मिला। जैसा मैं कहता हूं कि नास्तिकता पहला चरण है, नीत्से महानास्तिक है; पहला चरण तो पूरा हो गया, दूसरा चरण नहीं उठा, नहीं तो महाआस्तिक का जन्म होता।

नीत्से जब भी कुछ कहता है, तो गहरी बात कहता है, सदा खयाल रखना। मगर अधूरी होती है बात, क्योंकि एक ही कदम उठा, दूसरा कदम नहीं उठा। गहरी होती है, मगर अधूरी होती है। गहरी होती है, काफी दूर तक सही होती है, लेकिन पूरी दूर तक सही नहीं होती। यही वचन कि 'संन्यासी एक तरह की सूक्ष्म हिंसा करता है, वह अपनी ऊंचाई से साधारणजनों को दीन-हीन बनाता है, उन्हें आत्म-ग्लानि के भाव से उत्पीड़ित करता है, यही हिंसा उसके संन्यास की प्रेरणा है।' इसमें सचाई है। पूरी सचाई नहीं है, सचाई है। आधी बात है। इसमें सत्य है इतना, क्योंकि आदमी का अहंकार बड़ा सूक्ष्म है। धन से भी आदमी अपने अहंकार को भरता है और तप और त्याग से भी। नीत्से कह रहा है, तो निरीक्षण करके कह रहा है। तुम देख सकते हो अपने तथाकथित संन्यासियों के चेहरे पर दंभ, भयंकर दंभ। भूल से कभी-कभी तुम उसे तप की चमक समझ लेते हो। वह तप की चमक नहीं है, वह अहंकार है। इतना तप किया मैंने, मैं असाधारण हूं। इतना छोड़ा मैंने, इतना त्याग किया, मैं विशिष्ट हूं; मैं कोई साधारण आदमी नहीं हूं।

तुम्हारा संन्यासी अपने को किसी सिंहासन पर मंडित मानता है। तुम्हारे संन्यासी की आंख में तुम्हारे प्रति गहरी घृणा है, तुम्हारा अपमान है। तुम जाओ तुम्हारे तथाकथित मुनि-यतियों के पास, तुम्हारे प्रति एक गहरी अवमानना है। तुम पापी हो। उनके सारे उपदेशों का सार इतना है कि तुम पापी हो। और तुम्हें पापी सिद्ध करके वे बड़े अपने को पुण्यात्मा मान लेते हैं। उनकी आंखों में तुम्हारे तरफ एक ही खबर है कि जाओगे नर्क, कि नर्क जा रहे हो, सम्हल जाओ, मान लो हमारी, नहीं तो नर्क जाओगे। और उन्होंने खूब रस ले-लेकर नर्क का वर्ण किया है कि कैसे-कैसे आदमी वहां जलाए जाएंगे कड़ाहों में, सताए जाएंगे, कीड़े-मकोड़े किस तरह आदमियों के शरीरों को छेद-छेद कर देंगे; कैसी वहां भयंकर प्यास लगी होगी, जल की धार सामने बहती होगी और पानी पीने की आज्ञा नहीं होगी। खूब-खूब खोजी हैं उन्होंने तरकीबें। जिन्होंने खोजीं, ये रुग्ण लोग रहे होंगे। जिन्होंने नर्क का वर्णन किया है शास्त्रों में, ये स्वस्थ लोग नहीं हो सकते। ये अडोल्फ हिटलर के पूर्वज रहे होंगे।

अडोल्फ हिटलर ने करके बता दिया—वैसे ही नर्क उसने बना दिए थे जर्मनी में, लाखों लोगों को जला डाला। और तुम चकित होओगे यह जानकर कि जिन भट्टियों में हजारों लोग एकसाथ जलाए जाते थे, उन भट्टियों के पास उसने कांच लगवा रखा था, उन कांच में से लोग आकर देखते थे—भीड़ें देखने आती थीं। इकतरफा दिखायी पड़ता था! अंदर जो लोग खड़े हैं नग्न, जलने की तैयारी में, उनको बाहर की तरफ नहीं दिखायी पड़ता था कि कोई देख रहा है। मगर बाहर जो खड़े थे,

उनको दिखायी पड़ता था। हजारों लोग देखने आते थे, यह भी आश्चर्य है! और बिजली की बटन दबी और एक भपका हुआ और दस हजार आदमी इकट्ठे एक भट्टी में धुआं हो गए, और चिमनी से तुमने धुआं उठते देखा। लोग इसको देखने आते थे, जैसे यह कोई सर्कस हो! अडोल्फ हिटलर ने तुम्हारे संतों-महात्माओं की सारी कल्पनाओं को पूरा करके दिखा दिया। उसने कहा, कहां नर्क की प्रतीक्षा करते हो, यहीं बनाए देते हैं! हो नर्क, न हो!

यह दुख में रस है, दूसरे के दुख में रस है। जिस शास्त्र में नर्क का वर्णन हो, मान लेना कि वह शास्त्र किसी दुखवादी ने लिखा होगा—परदुखवादी ने, सैडिस्ट ने लिखा होगा, जो दूसरे को सताना चाहता है। यहां सताने का मौका नहीं है, तो रस ले रहा है कि नर्क में सताए जाओगे। और अपने लिए उसने स्वर्ग की कल्पनाएं की हैं, वहां उसने सारे सुख के इंतजाम कर लिए हैं—सुंदर स्त्रियां, अप्सराएं, कल्पवृक्ष, जिनके नीचे बैठो और जो इच्छा हो तत्क्षण पूरी हो जाए, और शराब के झरने; ये सारे इंतजाम कर लिए हैं—अपने लिए। यह त्यागी-तपस्वियों के लिए है, ध्यान रखना। जिन्होंने स्त्रियां यहां छोड़ी हैं, उनके लिए सुंदर अप्सराएं आकाश में। यह भी खूब मजा हुआ। अगर स्त्रियां छोड़ने से स्त्रियां ही मिलनी हैं, तो फिर स्त्रियां छोड़ना ही क्यों? यहां समझाते रहे कि स्त्रियां छोड़ो, स्त्रियां पाप हैं, स्त्रियां नर्क के द्वार हैं, और आखिर में स्वर्ग में उन्हीं का इंतजाम कर लिया! यह तो बड़ी चालबाजी हो गयी। यह तो बड़ा धोखा हो गया।

लेकिन इसके पीछे मनोविज्ञान का सीधा सत्य है। तुम जो भी दबाओगे, उसकी आकांक्षा तुम्हारा पीछा करेगी। यह तुम्हारे त्यागी-मुनियों ने स्त्रियों को किसी तरह छोड़ दिया—किसी तरह छोड़ दिया; मन मांग कर रहा है, वे मन को समझा रहे हैं कि बेटा, चुप रह, थोड़ी देर और फिर तो अप्सराएं ही अप्सराएं हैं—उर्वशियां, और कल्पवृक्ष, जरा और, जरा धीरज और, ज्यादा देर नहीं है! और ईर्ष्या भी उठती होगी मन में इन लोगों के प्रति जो मजे कर रहे हैं। इस ईर्ष्या का बदला भी लेना है। इनसे भी वे कह रहे हैं कि कर लो थोड़ा मजा, भोगोगे पीछे पछताओगे, याद आएगी फिर हमारी कि समझाया था कितना। फिर सड़ोगे अनंत काल तक नर्क में। यह चित्त के विकार हैं। यह स्वर्ग और नर्क कहीं भी नहीं हैं। स्वर्ग में तुम हो, जब भी तुम शांत हो, आनंदित हो, ध्यानस्थ हो, प्रेमपूर्ण हो, तुम स्वर्ग में हो। स्वर्ग कहीं और नहीं। और नर्क भी कहीं और नहीं, जब तुम क्रोध में हो और जब तुम ईर्ष्या से भरे हो और जब तुम जलन से जल रहे हो, तो तुम नर्क की भट्टी में हो।

और स्वर्ग और नर्क भूगोल नहीं हैं। और ऐसा भी नहीं है कि कोई स्वर्ग में रहता है, कोई नर्क में। घड़ीभर पहले तुम नर्क में, घड़ीभर बाद तुम स्वर्ग में—दिन में पच्चीस दफा तुम बदलते हो। कभी स्वर्ग, कभी नर्क, कभी स्वर्ग, कभी नर्क। यह तुम्हारी मनोदशाएं हैं, और इन दोनों से जो मुक्त हो गया, उस दशा का नाम मोक्ष है, जहां न सुख है, न दुख है। वही परमदशा है, वही असली बात है। सुख-दुख के पार आनंद है, सुख-दुख के पार शांति है, स्वतंत्रता है, मुक्ति है।

नीत्से ठीक ही कहता है कि तुम्हारे संन्यासी अहंकारी हैं। यह बात निन्यानबे प्रतिशत संन्यासियों के संबंध में सही है। मगर एक प्रतिशत के संबंध में गलत है और इसलिए यह पूरा सत्य नहीं है। कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई शांडिल्य नीत्से की इस रूपरेखा में नहीं आता। और वही सच्चा संन्यासी है जो रूपरेखा में नहीं आता। और जिन संन्यासियों के संबंध में यह बात सच है, वे तो झूठे संन्यासी हैं। मेरी बात समझ में आयी। नीत्से की बात सच है केवल झूठे संन्यासियों के संबंध में, सच्चे संन्यासियों के संबंध में सच नहीं है। नीत्से वहां चूक कर गया है। उसने फिर सबको एक साथ गिन लिया। उसने फिर अपवाद भी नहीं माने। वह भी तर्कवादी है, बुद्धिवादी है, असंगति नहीं मान सकता। अपवाद मानो तो असंगति होती है, विसंगति आ जाती है; निरपवाद मानने चाहिए सिद्धांत; तो उसने कोई संगति में बाधा नहीं पड़ने दी। उसने तो जीसस तक की खबर ली है इस बात से।

अब देखना वह किस तरह खबर लेता है। जीसस ने कहा है कि कोई तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे तो दूसरा उसके सामने कर देना। यह परम संन्यासी का वक्तव्य है। और जीसस ने कभी सोचा नहीं होगा कि इसमें भी कोई भूल खोज लेगा। तुम इसमें सोच सकते हो भूल? भूल ही नहीं, इसमें कोई पाप खोज लेगा। नीत्से ने वह भी खोज लिया। नीत्से ने तो निर्णय कर लिया है कि धर्म यानी गलत। सही तो हो ही नहीं सकता, इसलिए गलत को तो खोजना ही पड़ेगा। तो उसने क्या तरकीब निकाली? उसने यह तरकीब निकाली कि यह दूसरे का अपमान है। एक आदमी ने तुम्हारे गाल पर चांटा मारा और तुम दूसरा गाल उसके सामने करते हो, तुमने उसको कीड़ा-मकोड़ा कर दिया। तुमने उसका भयंकर अपमान कर दिया। तुमने सिद्ध कर दिया कि देखो, मैं कितना महान हूं, तू कितना क्षुद्र है। नीत्से कहता है कि यह तो बर्दाश्त के बाहर है यह अपमान। ज्यादा सम्मान यह होता कि तुमने भी उसके गाल पर एक चांटा मारा होता, कम से कम उसको भी आदमी तो स्वीकार करते, बराबर का तो होता—उसने चांटा मारा, तुमने चांटा मारा, बराबर तो हुए। सम होते, समानता होती। उसने चांटा मारा, तुमने दूसरा गाल कर दिया, तुम तो आसमान में चले गए, उसको तुमने जमीन में गाड़ दिया।

जीसस के संबंध में तो यह बात गलत है, लेकिन निन्यानबे संन्यासियों के संबंध में सही है। निन्यानबे प्रतिशत आदमी ऐसे ही हैं कि जब वे दूसरा गाल तुम्हारे सामने करेंगे तो अकड़कर देखेंगे कि देखो, एक मैं हूं कि तुम चांटा मार रहे हो, मैं दूसरा गाल तुम्हारे सामने कर रहा हूं। मेरी विनम्रता देखो, मेरी महानता देखो, और तुम अपनी क्षुद्रता देखो! देखो यह चला मैं स्वर्ग और तुम चले नर्क! यह मैंने सीढ़ी लगा ली स्वर्ग की!

मैंने सुना है, एक ईसाई पादरी इस सिद्धांत को मानता था। एक आदमी ने उसके चांटा मारा, उसे अपनी किताब याद आयी—रोज-रोज बाइबिल पढ़ता था और समझाता भी था दूसरों को, उसे याद आया जीसस ने कहा है कि जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, उसके सामने दूसरा गाल कर दो; उसने दूसरा गाल कर दिया। वह

दूसरा आदमी हो सकता है नीत्से का पढ़ने वाला रहा हो—दुनिया में सब तरह के लोग हैं—उसने यह मौका न छोड़ा उसने दूसरे गाल पर भी और जोर से जड़ दिया! साधारणतः हमारी आशा यह होती है कि जब हम दूसरा गाल करेंगे, तो तुम क्षमा मांगोगे कि भई, भूल हो गयी, आप जैसे महात्मा को और हमने चोट की—ऐसी हमारी कहानियों में यही आता है, सब पुराण में यही कहानियां लिखी हैं कि फिर महात्मा ने माफ किया तो तुम जल्दी से उसके पैर पर गिर पड़े कि क्षमा करिए, मुझसे बड़ी भूल हो गयी, आप जैसे सत्पुरुष को मार दिया।

लेकिन वह आदमी भी मजे का आदमी था—नीत्से का अनुयायी रहा होगा—उसने एक और करारा जड़ दिया। जब उसने करारा चांटा मारा, तब ईसाई पादरी हैरान हुआ कि अब क्या करना? तब उसे याद आया कि बाइबिल में इसके आगे तो कुछ कहा ही नहीं है। और दो ही तो गाल हैं आदमी के पास, वह एकदम उचककर उसकी गर्दन पर चढ़ बैठा। उस आदमी ने कहा, भई! यह क्या करते हो? क्योंकि वह भरोसा कर रहा था कि पादरी है; और एक गाल किया, दूसरा किया, यह क्या करते हो? उसने कहा—अब क्या करें, इसके आगे जीसस का वचन ही नहीं है, अब हम तुम्हें मजा चखाएंगे। यहीं तक कहा है हमारे गुरु ने कि एक गाल पर कोई चांटा मारे, दूसरा कर देना; तीसरा कोई गाल नहीं है, और अब इसके आगे हम स्वतंत्र हैं।

जबर्दस्ती माने गए नियम कितनी दूर तक साथ जा सकते हैं।

जीसस के जीवन में उल्लेख है, उनके एक शिष्य ने उनसे पूछा कि आप कहते हैं कि लोगों को माफ करो। कितनी बार माफ करें? अब इसमें ही माफ न करने की वृत्ति है—कितनी बार! कुछ सीमा होती है हर बात की, कितनी बार माफ करें? तो जीसस ने कहा—कम से कम सात बार। उसने कहा—अच्छी बात है। लेकिन जिस ढंग से उसने कहा अच्छी बात है, उससे जीसस को लगा कि यह आठवीं बार सातों का इकट्ठा बदला लेगा। अच्छी बात, उसने कहा, ठीक है, देख लेंगे, सात के बाद तो मौका आएगा न, आठवां। उसकी आंख की चमक को देखकर जीसस को लगा होगा कि यह तो भूल हो गयी, यह आदमी से तो गलत बात हो गयी। क्योंकि सात बार का इकट्ठा अगर बदला लेगा तो बहुत महंगा हो जाएगा। उससे तो पहली दफा ले लेता तो ही ठीक था। क्योंकि उस पहली दफ़ा बहुत इकट्ठा भी तो नहीं होता। एक गाली दी थी तो तुमने एक गाली दे दी होती, किसी ने सात गाली दीं, फिर आठवीं गाली तुम दोगे, तो वजनी खोजनी पड़ेगी कि आठ के मौके, मुकाबले! तो जीसस ने कहा—नहीं सात बार नहीं, सतहत्तर बार। वह आदमी थोड़ा उदास दिखा, उसने कहा अच्छी बात है। करोगे क्या ऐसे आदमियों के साथ। सात कहो कि सतहत्तर, सतहत्तर भी प्रतीक्षा कर सकते हैं वे। और यह भी हो सकता है कि उकसाएं तुम्हें कि अब सतहत्तर बार कर लो। सौ सुनार की एक लुहार की, फिर देखेंगे, एक में ही फैसला कर देंगे।

आदमी बेईमान है। शुभ का भी शोषण कर लेता है। लेकिन इसमें शुभ का

कोई कसूर नहीं। धर्म से भी अहंकार को भर लेता है, लेकिन इसमें धर्म का कोई कसूर नहीं है। संन्यास से भी रोग पाल लेता है, लेकिन इसमें संन्यास का कोई कसूर नहीं।

नीत्से सही है और गलत भी। सही है गलत संन्यासियों के संबंध में, गलत है सही संन्यासियों के संबंध में। और अच्छा है कि तुम दोनों को समझ लो, क्योंकि दोनों संभावनाएं तुम्हारे भीतर भी हैं। ठीक भी हो सकते हो, गलत भी हो सकते हो। गलत का बोध रहे, तो ठीक होने की गुंजाइश बनी रहती है। गलत के संबंध में समझदारी हो, तो गलत होने का डर कम हो जाता है। गलत के प्रति जागरूकता सम्यक बने रहने का उपाय है।

आखिरी प्रश्न: समर्पण यानी क्या?

संकल्प का अर्थ होता है—मैं, समर्पण का अर्थ होता है—न-मैं। संकल्प का अर्थ होता है—कर्ताभाव, समर्पण का अर्थ होता है—अकर्ताभाव। संकल्प का अर्थ होता है—मेरे किए ही कुछ हो सकता है, मेरे बिना किए कुछ भी न होगा, प्रयत्न सब कुछ है, समर्पण का अर्थ होता है—प्रसाद सब कुछ है, मेरे किए क्या होगा, प्रभु करेगा तो होगा, मैं तो बांस की पोंगरी हूं, वह गाएगा तो बांसुरी बन जाऊंगा। उसका गीत सब कुछ है। मैं उसे मार्ग दूं, अवरोध न बनूं। मैं मार्ग से हट जाऊं। समर्पण अपने को विदा देना है, अलविदा। और तब जीवन में अपूर्व क्रांति घटती है।

शाम से
जरा पहले
खत्म हुआ हाथ का काम
नाम से
जरा पहले जैसे
जाग गया मन में
रूप
अब मैं
तल्लीन एक धूप हूं
तन्मय चांदनी की तरह
छंद की जगह
लय हूं लहर की
याने शाम से ही
किरन हूं सहर की

जिस व्यक्ति में समर्पण जगा, पहली किरण आ गयी—शाम से ही किरण आ गयी सुबह ही—

छंद की जगह लय हूं लहर की
याने शाम से ही किरन हूं सहर की

समर्पण परमात्मा का पहला चरण है तुम्हारे भीतर। अंधेरा है अभी, लेकिन किरण आ गयी। भोर का पहला पक्षी बोला। समर्पण भोर के पहले पक्षी की आवाज है। मुर्गे ने बांग दी। अभी रात है, मगर रात टूटने लगी। अभी रात है, लेकिन रात नहीं रही, तुम्हारे लिए टूट गयी। इधर मैं टूटा, उधर रात टूटी। हम नाहक ही बोझ लिए चल रहे हैं।

मैंने सुना, एक राजा एक रथ से गुजरता था—जंगल का रास्ता, शिकार से लौटता था। राह पर उसने एक गरीब आदमी को, एक भिखारी को एक बड़ी पोटली—बूढ़ा आदमी और बड़ा बोझ लिए हुए चलते देखा। उसे दया आ गयी। उसने रथ रुकवाया और कहा भिखारी को कि तू बैठ जा, कहां तुझे उतरना है हम उतार देंगे। भिखारी बैठ तो गया, डरता, सकुचाता—रथ, राजा! अपनी आंखों पर भरोसा नहीं आता! कहीं छू न जाए राजा को! कहीं रथ पर ज्यादा बोझ न पड़ जाए! ऐसा संकुचित, घबड़ाया, बेचैन—सच में तो डरा हुआ बैठ गया, क्योंकि इनकार कैसे करे? मन तो यह था कि कह दूं कि नहीं-नहीं, मैं और रथ पर! मुझ जैसे गंदे आदमी को, चीथड़े जैसे कपड़े, इस रथ पर बैठाएंगे, शोभा नहीं देती। लेकिन राजा की बात इनकार भी कैसे करो? बुरा न मान जाए, अपमान न हो जाए।

तो बैठ तो गया, बड़े डरे-डरे मन से, और पोटली सिर से न उतारी। राजा ने कहा—मेरे भाई! पोटली तेरे सिर पर भारी है इसीलिए तो तुझे मैंने रथ में बिठाया, तू पोटली सिर से नीचे क्यों नहीं उतारता? उसने कहा—आप भी क्या कहते हैं? मैं ही बैठा हूं यही क्या कम है, और पोटली का वजन भी रथ पर डालूं! मुझे बैठा लिया, यही कम सौभाग्य मेरा! नहीं-नहीं, यह मुझसे न हो सकेगा; पोटली का वजन भी और रथ पर डालूं!

अब तुम रथ में बैठे हो, पोटली सिर पर रखे हो तो भी वजन रथ पर पड़ रहा है। उतार कर रख दोगे, तो भी वजन रथ पर पड़ रहा है।

इस भिखारी की दशा है अहंकारी की। वह नाहक ही बोझ ढो रहा है। वह कह रहा है—मैं यह करूं, मैं यह करूं, मैं यह करके दिखाऊं, मैं वह करके दिखाऊं। करने वाला कोई और। तुम न करो तो भी वही होगा जो होना है। तुम करो तो भी वही होगा जो होना है। तुम नाहक ही पोटली सिर पर लिए बैठे हो। सब उसके हाथों में है। उसके हाथ सब तरफ फैले हुए हैं। इसीलिए तो हिंदुओं ने उसको हजार हाथों का बनाया है। दो हाथ का हो तो हमें संकोच होगा कि भई! पता नहीं किसी और के काम में उलझा हो अभी। हजार हाथ हैं उसके, अनंत हाथ हैं उसके। तुम जरा अपने को छोड़ो, तो उसका हाथ का सहारा सदा है। वही तुम्हें सम्हाले हैं।

जब तुम जीते हो, तब वही जीता है। जब तुम हारे हो, तब तुम हारे हो। हार उसकी नहीं है। हार तुम्हारी इस भ्रांति की है कि मैं कुछ करके रहूंगा। वह टूटती है भ्रांति कभी। अगर तुम उसके विपरीत कुछ करते हो तो नहीं होता, नहीं होता तो तुम हारते हो, हारते हो तो रोते हो, दुखी होते हो, पीड़ित-परेशान होते हो। छोड़ दो उस पर, फिर कोई हार नहीं है, फिर कोई विषाद नहीं है।

सब संयुक्त है। हम सब जुड़े हैं। यह सारा अस्तित्व एक ही लय में बद्ध है। यहां हमें अलग-अलग कुछ करने की बड़ी जरूरत नहीं है।

सड़क सड़क
चली
इक कली
नदी के तीर पर
सपना
सोया था कोई उसका
काले गहरे नीर पर
कितनें और कैसे-कैसे
पांवों से बच कर
पहुंची वह घाट तक
उतरी अभिसारिका वह
सीढ़ियों से लहरों पर
चेहरों पर तारों के
चमक आ गयी
पूरे प्रवाह पर
एक चुप्पी छा गयी

एक छोटी सी कली नदी के तीर पर चलकर पहुंची, उतरी है जलधार में—

उतरी अभिसारिका वह
सीढ़ियों से लहरों पर
चेहरों पर तारों के
चमक आ गयी।

इतना सब जुड़ा है एक छोटी सी कली भी पानी की लहर में उतरती है, तो अनंत-अनंत दूरी पर जो तारे हैं, उनकी आंखों में भी चमक आ जाती है।

पूरे प्रवाह पर
एक चुप्पी छा गयी!

सब संयुक्त है। एक पत्ता हिलता है तो चांद-तारे हिलते हैं। एक छोटी सी घास की पत्ती भी सूरज से जुड़ी है। हम सब इकट्ठे हैं। इस इकट्ठे होने का नाम परमात्मा है। तुम अपने को अलग मानते हो, यह अहंकार। तुम अपने को इसके साथ एक मानते हो, यह समर्पण।

अहंकार मरेगा, क्योंकि अहंकार झूठा है। कैसे तुम सम्हाले हो उसे, यही चमत्कार है! जितने दिन सम्हाल लो, यह चमत्कार है! जादू किया तुमने! अहंकार तो है ही नहीं, इसलिए मरेगा, आज नहीं कल भ्रम टूटेगा, सपने से आदमी जगेगा। कब तक देखोगे सपना? सपना आखिर सपना है! सुबह होगी, आंख खुलेगी, और तब तुम पाओगे जो बच रहा है वह परमात्मा है। और वही सदा सच था। बीच में तुम एक

झूठ में खो गए थे, एक सपना जगा लिया था।

कविता टिकेगी
क्योंकि
कोई शरीर नहीं है वह मेरा
वह मेरी
आत्मा ही नहीं
अध्यात्म है
वह मेरे जीवन से उपज कर
बाहर को भेंटती है
बाहर को भेंट कर
समूचे को भीतर समेटती है
मगर मेरी नहीं है
मेरी व्यक्तिगत किसी भी इच्छा की
चेरी नहीं है
इसलिए वह टिकेगी
वह टिकेगी
क्योंकि वह समय है
भय नहीं है वह
मेरे भीतर का
विश्वात्मा का अभय है

तुम्हारे भीतर वही टिकेगा, जो शाश्वत से जुड़ा है। तुम्हारे भीतर वही टिकेगा, जो समष्टि का अंग है। जो तुमने अलग-थलग अपना बना लिया है, निजी, वह झूठा है। निजता असत्य है, समग्रता सत्य है।

निजता को जोर से पकड़ लेना अहंकार है। निजता को जाने देना, बह जाने देना, धार में सम्मिलित हो जाना, विराट के इस नृत्य में अंग बन जाना, सागर की एक लहर हो जाना समर्पण है। समर्पण भक्ति का सार है।

आज इतना ही।

नौवां प्रवचन

अनुराग है तुम्हारा अस्तित्व

9

रागत्वादितिचेन्नोत्तमास्पदत्वात् संगवत् ।।२१।।

तदेव कर्म्मिज्ञानियोगिभ्य आधिक्यशब्दात् ।।२२।।

प्रश्ननिरूपणाभ्यामाधिक्यसिद्धेः ।।२३।।

नैवश्रद्धा तु साधारण्यात् ।।२४।।

तस्यां तत्वेचानवस्थानात् ।।२५।।

रागत्वादितिचेन्नोत्तमास्पदत्वात् संगवत्।

'अनुराग का ही नाम भक्ति है। कोई ऐसा भी कहते हैं कि अनुराग दुख का कारण है, इसलिए उसका त्याग करना उचित है। परंतु यह बात ऐसी नहीं है; क्योंकि संग की भांति इसका आश्रय उत्तम है।'

यह सूत्र महत्वपूर्ण है। ध्यानपूर्वक समझना। इस सूत्र पर सब कुछ निर्भर है तुम्हारे जीवन का रूपांतरण। सदा से तुमने सुना है, उसका खंडन कर रहे हैं शांडिल्य। सदा से तुमने जो माना है, उसका विरोध कर रहे हैं। इसलिए बहुत सजग होकर सुनोगे तो ही खयाल में पड़ सकेगी बात; क्योंकि तुम्हारे जाने-माने के बहुत विपरीत है।

कहा गया है तुमसे बार-बार कि प्रेम के कारण ही संसार है, दुख है, बंधन है। साधुओं ने, संन्यासियों ने तुम्हें यही समझाया है कि तुम्हारे सारे दुख का मूल प्रेम है, अनुराग है, प्रीति है, राग है। सारी शिक्षाएं तुमसे यह कहती हैं, विराग को उपलब्ध हो जाओ, राग को छोड़ दो। और बात तुम्हें भी जंचती है। और जंचने के पीछे कारण है। जहां राग है, वहीं से दुख उत्पन्न होता मालूम होता है। जिससे राग है, वही तुम्हें दुखी भी कर सकता है। तुमने किसी स्त्री को चाहा, जिस मात्रा में चाहा, उसी मात्रा में वह स्त्री तुम्हें दुख दे सकती है। तुमने किसी पुरुष से प्रेम किया, जिस मात्रा में प्रेम किया, उसी मात्रा में उस पुरुष से तुम्हें सुख मिलेगा, उसी मात्रा में दुख भी मिलेगा, मात्रा बराबर होगी। अगर कल पुरुष छोड़कर चला जाए, या स्त्री छोड़कर चली जाए, तो कितना दुख तुम उठाओगे? वह दुख उतना ही होगा जितना उसके पास होने से सुख होता था। सुख का स्रोत भी राग मालूम होता है, दुख का स्रोत भी राग मालूम होता है। जिसे हम चाहते हैं, मिल जाए तो सुख, जिसे हम चाहते हैं, छूट जाए तो दुख। जिसे हम नहीं चाहते, मिल जाए तो दुख। जिसे हम नहीं चाहते, छूट जाए तो सुख।

मनुष्य के सारे सुख और दुख अनुराग-आश्रित हैं। नर्क भी वहीं से उमगता है, स्वर्ग भी। इसलिए तुम्हारे भोगी और योगियों के तर्क में भेद नहीं है। भोगी कहता है—माना कि दुख वहां से निकलता है, लेकिन सुख भी वहां से निकलता है। मैं दुख भोगने को तैयार हूं, लेकिन सुख छोड़ने को तैयार नहीं। यह तुम्हारे भोगी का तर्क है, यह उसकी सरणी है, यह उसकी विचार दशा है। वह कहता है—माना कि गुलाब की झाड़ी में बहुत कांटे हैं, मगर फूल भी वहां हैं। कांटों के कारण फूल छोड़ दूं? यह नासमझी मुझ से न होगी। मैं जाऊंगा, चुभें कांटे तो चुभें; बचने की कोशिश करूंगा, बचाऊंगा, लेकिन फूल छोड़ने योग्य नहीं हैं। फूल इतने प्यारे हैं कि कांटे सहे जा सकते हैं। यह भोगी की तर्कदशा।

योगी क्या कहता है, विरागी क्या कहता है? विरागी कहता है कि कांटे इतने

ज्यादा हैं कि मैं फूल छोड़ने को तैयार हूं। विरागी भी मानता है कि फूल वहां हैं। अगर फूल न हों तो कांटों को छोड़ने की बात में कुछ अर्थ ही नहीं रह जाता। कुछ वहां छोड़ने योग्य है, कुछ वहां संपदा है। कुछ अपूर्व फूल खिले हैं जो मन को लुभाते हैं, बुलाते हैं, पुकारते हैं। वहां निमंत्रण है, आकर्षण है। लेकिन कांटे बहुत हैं। शर्त बड़ी है, महंगी है। इतना मूल्य चुकाने को योगी तैयार नहीं। वह कहता है—हम फूल छोड़ देंगे, मगर कांटों में न जाएंगे। दोनों मानते हैं कि वहां फूल भी हैं और कांटे भी हैं। एक फूल चुनता है, एक फूल छोड़ता है। एक फूलों के कारण कांटे चुनता है, एक कांटों के कारण फूल छोड़ता है। लेकिन दोनों की तर्कसरणी में भेद नहीं है।

शांडिल्य कह रहे हैं—अनुराग से इसका कोई भी संबंध नहीं। अनुराग के पात्र से संबंध है। तुमने किससे प्रेम किया, इस पर निर्भर करता है कि कितना दुख पाओगे। तुमने क्षणभंगुर से प्रेम किया, तो बहुत दुख पाओगे। क्योंकि प्रेम चाहता है शाश्वत होना। तुमने पानी के बबूले से प्रेम किया, तो दुख पाओगे ही। क्योंकि बबूला अभी है और अभी नहीं हुआ। पानी में उठा बबूला है, कब फूट जाएगा पता नहीं—फूटता है, फूटता है, अब फूटा, तब फूटा, फूटने को ही तत्पर है, फूटेगा ही, एक बात सुनिश्चित है—सदा रहने वाला नहीं है। और तुमने प्रेम इससे लगाया, तो जब बबूला टूट जाएगा तब तुम तड़फोगे, तब तुम जलोगे आग में। यह प्रेम के कारण तुम नहीं जल रहे हो—शांडिल्य के सूत्र को खयाल में लेना। शांडिल्य कहते हैं, प्रेम के कारण तुम नहीं जल रहे हो, प्रेम के कारण तो तुम्हें बबूले में से भी रस मिला था—बबूला, जिसमें कि रस है ही नहीं। बबूला, जिसमें कुछ भी न था। तुमने चूंकि बबूले से प्रेम किया, उससे भी रस पा लिया था। प्रेम के कारण तुमने रेत से भी तेल निचोड़ लिया था। तेल तो आया था प्रेम से। अब बबूला टूटेगा तो दुख आएगा; दुख आता है बबूले की क्षणभंगुरता से। सुख आता है प्रेम से, दुख आता है क्षणभंगुर विषय से।

किसी ने धन चाहा, धन का क्या भरोसा, आज है कल न हो; किसी ने पद चाहा, पद का क्या भरोसा, आज है कल न हो; इस संसार में तुमने जो चाहा है, वह सदा रहने वाला नहीं है। फिर भी चाह के कारण, राग के कारण थोड़ा सा सुख मिलता है—इंद्रधनुषों से भी मिल जाता है, मृग-मरीचिकाओं से भी मिल जाता है। जो आदमी भटक गया है मरुस्थल में और प्यासा है, उसे दूर दिखायी पड़ता है एक मरूद्यान—हो या न हो। मान लो कि नहीं है, सिर्फ दिखायी पड़ता है, भ्रांति है, प्यासे आदमी का सपना है, प्यासे आदमी का प्रक्षेपण है, प्यासे आदमी की प्यास ही इतनी प्रगाढ़ हो गयी है कि वह चारों तरफ मरूद्यान देखने लगा है। झूठा सही, लेकिन जब तक मरूद्यान तक नहीं पहुंचेगा, तब तक तो सच्चा है। जब तक सच्चा है, तब तक आशा और सुख।

राग लग गया झूठे मरूद्यान से, तो उससे भी थोड़ा सुख मिला है। पहुंचेगा पास, बोध होगा, दिखायी पड़ेगा कि झूठा था, तब दुख होगा। दुख राग के कारण नहीं हो रहा है—राग के कारण तो झूठे मरूद्यान से भी सुख पैदा हो गया था—दुख

पैदा हो रहा है, क्योंकि मरूद्यान झूठा था। शांडिल्य यह कह रहे हैं कि राग से तो दुख पैदा होता ही नहीं।

भेद खयाल में आया?

एक तो प्रेम है और एक प्रेम का विषय है। विषय अगर क्षणभंगुर है, तो दुख पैदा होता है। शांडिल्य कहते हैं—क्षणभंगुर की जगह शाश्वत को विषय बनाओ, परमात्मा को विषय बनाओ, फिर दुख न होगा। यही भक्ति है।

विरागी भ्रांति में है। उसने विश्लेषण ठीक से नहीं किया। शांडिल्य कहते हैं, वह जो फूल खिले हैं कांटों में, वे प्रेम के फूल हैं। और जो कांटे हैं, वे क्षणभंगुरता के हैं। दोनों चूंकि साथ-साथ खिले हैं, इसलिए तुम्हें भ्रांति हो रही है, तुम्हें अड़चन हो रही है।

जब भी चूम लेता हूं इन हसीन आंखों को
सौ चिराग अंधेरे में झिलमिलाने लगते हैं
फूल क्या, शिगूफे क्या, चांद क्या, सितारे क्या
सब रकीब कदमों पर सर झुकाने लगते हैं
रक्स करने लगती हैं मूरतें अजंता की
मुद्दतों से लबबस्ता गार गाने लगते हैं
फूल खिलने लगते हैं उजड़े-उजड़े गुलशन में
प्यासी-प्यासी धरती पर अब्र छाने लगते हैं
लम्हे भर को ये दुनिया जुल्म छोड़ देती है
लम्हे भर को सब पत्थर मुस्कुराने लगते हैं

लम्हे भर को ही लेकिन, क्षणभर को ही लेकिन। जब तुम किसी के प्रेम में पड़ते हो, सपना ही है यह, मगर प्रेम की शक्ति इतनी विराट है कि क्षणभर को सपने को भी सच कर देती है, क्षणभर को झूठ को भी प्रामाणिक कर देती है। शांडिल्य कह रहे हैं—प्रेम की शक्ति तो देखो, अनुराग की ऊर्जा तो देखो, झूठ पर बरसती है तो झूठ भी सच मालूम होने लगता है। यद्यपि क्षणभर को ही यह बात हो सकती है, क्योंकि झूठ आखिर झूठ है। आज नहीं कल उघड़ेगा, आज नहीं कल सपना टूटेगा। आज नहीं कल इंद्रधनुष विदा होगा। तुम्हारी आंखें फिर अंधेरे में रह जाएंगी। यह दीया बुझेगा।

विरागी भाग खड़ा होता है। वह कहता है—अब कभी प्रेम न लगाएंगे, प्रेम से बड़ा दुख पाया। शांडिल्य कहते हैं—प्रेम से दुख नहीं पाया, क्षणभंगुर से लगाया था इसलिए पाया। धन से लगाया, इसलिए पाया; तन से लगाया, इसलिए पाया; मन से लगाया, इसलिए पाया। परमात्मा से लगाकर देखो! उससे, जो सदा है। उससे, जो कभी नहीं नहीं होता। और फिर आनंद ही आनंद है।

रागत्वादिततिचेन्नोत्तमास्पदत्वात् संगवत्। उत्तम से लगाओ, पारलौकिक से लगाओ। किससे लगाया, इस पर निर्भर है। सांप-बिच्छू से दोस्ती की, आज नहीं कल डसे जाओगे। यह दोस्ती का कसूर नहीं है, सांप-बिच्छू से दोस्ती की। इसलिए

यह मत सोच लेना कि अब कसम खा लेता हूं कि कभी दोस्ती न करूंगा; सांप से दोस्ती की इसलिए पीड़ा पायी; दोस्ती से ही मत संबंध तोड़ लेना, अन्यथा तुम्हारे जीवन में सेतु ही खो जाएगा, तुम्हारे जीवन से रंग खो जाएगा, तुम्हारे जीवन से लय खो जाएगी, तुम्हारे जीवन से संगीत खो जाएगा। क्योंकि सब संगीत, सब लय, सब राग, सब रंग प्रेम का ही है। अनुराग के ही फूल हैं ये सब। यहां जितनी सुगंध है, प्रेम की है। जितनी दुर्गंध है, अप्रेम की है।

तो यहां भोगी है, जो गलत से प्रेम लगा रहा है। वह गलत है, क्योंकि गलत से प्रेम लगा रहा है। और योगी है, जिसने प्रेम लगाना छोड़ दिया, वह गलत है, क्योंकि उसने प्रेम ही लगाना छोड़ दिया। अगर बात को तुम ठीक समझो तो योगी से भोगी बेहतर है। क्योंकि भोगी कम से कम प्रेम तो लगा रहा है। गलत से लग रहा है, कभी समझ आएगी तो सही से भी लगाएगा। अभी गलत दिशा में जा रहा है, जा तो रहा है। कभी समझ आयी, तो ठीक दिशा में जा सकेगा, यही पैर ठीक दिशा में भी ले जा सकेंगे। यही पंख जो अंधेरे और महा अंधकार की तरफ ले जा रहे हैं, किसी दिन प्रकाश की यात्रा पर भी निकल सकेंगे। लेकिन योगी ने तो पंख काट दिये। अब न अंधेरे की यात्रा हो सकती है, न उजाले की यात्रा हो सकती है, अब यात्रा ही नहीं हो सकती।

फिर योगी जब पंख काट देता है, तो एक अपूर्व उदासी से भर जाता है। उसी उदासी को बहुत से लोग साधुता समझते हैं। साधुओं का एक संप्रदाय तो उदासी कहलाता है। उदासी को लोग साधुता समझते हैं। साधुता तो आनंद होना चाहिए। साधुता तो नाचती हुई होनी चाहिए। साधुता में तो बहुत गीत जन्मने चाहिए। साधुता में तो चांद-तारे उगने चाहिए साधुता नृत्य न हो तो साधुता नहीं है। साधुता में तो मस्ती होनी चाहिए, मादकता होनी चाहिए। साधु का जीवन तो मधुशाला होगी। वहां तो बड़ी मादकता होगी, बड़ा माधुर्य होगा। वहां तो सब तरफ आनंद ही आनंद होगा।

लेकिन जिसको तुम साधु कहते हो, वहां आनंद की कोई खबर नहीं; उदासी है, जड़ता है; एक तरह का मुर्दापन है, और सन्नाटा है मरघट का। साधु जड़ हो गया है; ठहर गया, डबरा हो गया है; अब यह धारा कहीं जाती नहीं, किसी सागर तक कभी नहीं पहुंचेगी, यह सड़ेगी। भक्त कहता है—नाचो; भक्त कहता है—उत्साह से भरो; भक्त कहता है—प्रेम की धारा को संसार से परमात्मा की तरफ मोड़ दो। धारा तुम्हारे पास है, पंख तुम्हारे पास हैं, दिशा तुम ठीक चुन लो, पंखों से नाराज मत हो जाओ।

और जब तुम्हारा कोई साधु पंखों से नाराज हो जाता है और अपने पंख काट देता है, तो दूसरों के पंख देखकर ईर्ष्या से भी भरता है। तुम्हारे साधु तुम्हें समझा रहे हैं कि तुम भी पंख काट दो। वे नाराज हैं, खुद पर नाराज हैं, तुम पर नाराज हैं, उनकी जिंदगी नाराजगी की जिंदगी है। वहां क्रोध है, वहां रोष है, वहां दमित वासना है। दमित होगी ही। क्योंकि प्रेम कुछ ऐसी बात है जिससे तुम छुटकारा पा नहीं सकते। पंख भी काट दो तुम पक्षी के, तो भी पक्षी उड़ने की आकांक्षा से छुटकारा नहीं पा सकता। वह तो पक्षी की आत्मा है, उससे छुटकारा नहीं है।

उड़ने की आकांक्षा ही तो पक्षी के प्राण हैं। प्रेम की आकांक्षा ही तो तुम्हारी आत्मा है। तुम कितने ही जंगलों में चले जाओ, कितनी ही दूर, और कितनी ही गुफाओं में बैठ जाओ, तुम्हारे भीतर प्रेम सुगबुगाएगा, तुम्हारे भीतर प्रेम का झरना फूटने की चेष्टा करता रहेगा। गुफा में बैठोगे तो गुफा से प्रेम हो जाएगा। किसी वृक्ष के नीचे बैठोगे, तो उस वृक्ष से प्रेम हो जाएगा। कोई पक्षी तुम्हारे कंधे पर आकर बैठने लगेगा, वृक्ष के नीचे तुम्हें शांत बैठा देखकर, तो उस पक्षी से प्रेम हो जाएगा। अगर वह एक दिन न आएगा, तो तुम प्रतीक्षा करोगे। वैसी ही प्रतीक्षा जैसे प्रेमी प्रेयसी की करता है, या प्रेयसी प्रेमी की करती है। तुम चिंतातुर होओगे कि क्या हुआ उस पक्षी का? अंधड़ था, तूफान था, कहीं गिर तो नहीं गया, कहीं मर तो नहीं गया? वह वृक्ष सूखने लगेगा तो तुम बेचैन होओगे, तुम दूर नदी से जल भरकर लाओगे, उस वृक्ष को डालोगे। वह बेचैनी वैसी ही होगी जैसे बच्चा बीमार होता है तो, मां को होती है। प्रेम से भागोगे कहां? तुम प्रेम हो।

भक्तों का यह उदघोष है कि प्रेम तुम्हारी आत्मा है, अनुराग तुम्हारा अस्तित्व है, इससे छूटने का कोई उपाय नहीं। पंख काट सकते हो, फिर भी तुम्हारे भीतर उड़ने की आकांक्षा तड़फड़ाएगी—और भी ज्यादा तड़फड़ाएगी। और जब तुम दूसरों को उड़ते देखोगे, तो बहुत ईर्ष्या पैदा होगी। उसी ईर्ष्या के कारण तुम्हारे साधु तुम्हें उपदेश देते हैं कि छोड़ो, त्यागो, भागो। मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि आप अपने संन्यासी को संसार छोड़ने को क्यों नहीं कहते हैं? परमात्मा ही संसार नहीं छोड़ रहा है, तो मेरा संन्यासी क्यों छोड़े? परमात्मा नहीं ऊबा है संसार से, तुम परमात्मा से भी श्रेष्ठ होने की आकांक्षा से भरे हो क्या? तुम्हें परमात्मा को भी पराजित करना है? तुम्हारा तथाकथित महात्मा अपने को परमात्मा से भी ज्यादा बुद्धिमान मान रहा है। परमात्मा अभी भी फूलों में हंसता है, अभी भी पक्षियों में उड़ता है, अभी भी झरनों में बहता है, अभी भी पहाड़ों में उठता है, अभी भी चांद-तारों में बसता है, अभी भी नए बच्चे पैदा होते हैं, परमात्मा अभी थक नहीं गया है।

रवींद्रनाथ ने कहा है कि जब भी कोई नया बच्चा पैदा होता है, तो मेरे मन में धन्यवाद उठता है परमात्मा के प्रति—तो तू अभी थका नहीं? तो तूने फिर एक नया आदमी बनाया! तेरी आशा अपरंपार है। अनंत है तेरी आशा। आदमी कितना ही गलत करे, आदमी कितना ही गलत हो जाए, लेकिन तू है कि आदमी गढ़े चला जाता है। तू कहता है—आज चूके तो कल जीतेंगे, कल चूके तो परसों, मगर जीतेंगे। आज नहीं कल मनुष्य जैसा होना चाहिए वैसा होगा। तेरा यह भरोसा!

आदमी की श्रद्धा परमात्मा पर भला खो गयी हो, परमात्मा की श्रद्धा आदमी पर नहीं खो गयी है। परमात्मा की श्रद्धा अपूर्व है तुम्हारे प्रति, इसीलिए तो तुम जी रहे हो, तुम्हारी श्वास चल रही है। उस का राग तुम से है, और तुम विराग की बातें कर रहे हो? उसने तुम्हें चाहा है, उसकी चाहत तुम पर रोज बरसती है सुबह-सांझ, चाहे तुम देखो, चाहे तुम न देखो। सूरज की रोशनी में बरसती है, हवाओं के झोंकों में बरसती है, फूलों की गंध में बरसती है, मनुष्यों के प्रेम में बरसती है; उसकी अनुकंपा

तुम्हारे पास रोज आती है, तुम चाहे धन्यवाद दो या न दो; उसका राग तुम से है, परमात्मा तुम्हारे प्रेम में है, परमात्मा अपनी सृष्टि के प्रेम में है, नहीं तो इन वृक्षों को कौन हरा रखे, इन चांद-तारों को कौन रोशन रखे, इन पक्षियों के पंखों में कौन उड़े, और इन पक्षियों के कंठों में कौन गाये!

परमात्मा का राग तुम से, और तुम विराग की बात कर रहे हो! तुम भी इतने ही राग से उसके प्रति भर जाओ। तुम दोनों का राग मिल जाए, वहीं मुक्ति है, वहीं मोक्ष है। परमात्मा ने तुम्हें खूब चाहा है, और तुमने नहीं चाहा है, यही तुम्हारी भ्रांति है।

तुम्हारी चाहत ऊर्ध्वगामी हो जाए—अभी अधोगामी है, नीचे की तरफ जाती है, क्षुद्र की तरफ जाती है। इसलिए सावधान रहना, जब भी तुम्हें कोई उदास महात्मा दिखे बचना। क्योंकि वह रोग के कीटाणु लिए हुए है। उससे दूर-दूर रहना, उससे सावधान रहना, क्योंकि वे रोग के कीटाणु खतरनाक हैं। एक बार तुम्हारे भीतर पड़ गये, तुम संक्रामक हो गये, तो उनका इलाज मुश्किल है। और वे रोग के कीटाणु तुम्हें जंचेंगे। जंचेंगे इसलिए कि तुमने भी दुख पाया है, तुम्हारे भी हाथ जले हैं, तुमने भी इस जीवन में बहुत पीड़ा पायी है। जिस से प्रेम किया उसी से दुख पाया है—किस और से दुख पाओगे? दुख तो पाया जाता उसी से जिससे हम प्रेम करते हैं, क्योंकि उसी से हम आशा करते हैं, उसी से आशा भी टूटती है; उसी से आकांक्षा करते हैं, उसी से आकांक्षा उखड़ती है; उसी से हमारी अपेक्षाएं होती हैं, उसी से विषाद आता है।

तुमने देखा अजनबी से तुम्हें कभी दुखी नहीं होता। क्यों होगा? दुख तो अपनों से होता है, क्योंकि अपनों से अपेक्षा लगी होती है। कुछ तुम चाहते थे और वैसा नहीं हुआ। राह चलता कोई तुम्हारा एक छोटा सा काम कर देता है तो तुम अनुग्रह से भर जाते हो, क्योंकि कोई अपेक्षा नहीं है। तुम्हारी पत्नी तुम्हारी जीवनभर से सेवा कर रही है, तुमने कभी धन्यवाद नहीं दिया। धन्यवाद देना बेहूदा भी लगेगा—अपनों को कोई धन्यवाद देता है! परायों को ही हम धन्यवाद देते हैं। धन्यवाद का मतलब ही इतना है कि अपेक्षा न थी और तुमने किया। जिससे अपेक्षा है उस पर हम नाराज होते हैं, धन्यवाद नहीं देते। जितनी अपेक्षा थी उतना न किया तो नाराज होते हैं। कोई बेटा अपनी मां को धन्यवाद देता है? कोई मां अपने बेटे को धन्यवाद देती है? यह बात ही नहीं उठती। हां, शिकायतें चलती हैं; नाराजगियां होती हैं, क्रोध होता है। तो हर आदमी जला हुआ है, और हर आदमी के फफोले पड़े हुए हैं। और तुमने कहावत सुनी है न—'दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंककर पीने लगता है।' तो तुम्हारा भी अनुभव तुम से यही कहता है—तुम्हारा भी विश्लेषण बहुत गहरा नहीं है, तुमने भी जीवन को बहुत उसकी गहराइयों में न समझा है, न परखा है; तुम्हारी आंखें भी बहुत पारदर्शी नहीं हैं—तो जब तुम्हारा महात्मा तुमसे कहता है कि यह सब राग का ही फल है, तुम को भी बात जंचती है, गणित बैठता है कि बात तो ठीक ही है, मैं भी राग में पड़ा हूं इसलिए दुख भोग रहा हूं। तो रोग के कीटाणु तुम लेने को तत्पर हो जाते हो।

शांडिल्य तुम्हारे लिए बड़े क्रांति के सूत्र दे रहे हैं। शांडिल्य कह रहे हैं—राग

से नहीं कोई दुख पाता। कह दो अपने महात्माओं को कि तुमने राग से दुख नहीं पाया, गलत से राग लगाया था उससे दुख पाया। अब तुम दूसरी गलती कर रहे हो कि तुमने राग ही छोड़ दिया। एक आदमी अपने पैरों से चलकर वेश्यालय गया, निश्चित ही पैर न होते तो कैसे जाता, पैरों से ही गया। फिर वेश्यालय में बहुत दुख पाया, बहुत अवमानना झेली, बहुत जीवन को दूषित बना डाला, क्रोध में अपने पैर काट डाले, क्योंकि ये पैर वेश्यालय ले गए थे। लेकिन ये पैर मंदिर भी ले जाते, इनसे ही तीर्थयात्रा भी होती। यह जो पैर काटकर बैठ गया है, इसको तुम महात्मा कहते हो। क्योंकि यह कहता है—पैर वेश्यालय ले गए थे, जुआघर ले गए थे, शराबघर ले गए थे, इन पैरों पर बहुत नाराज था, इसने पैर काट डाले। इसको तुम पागल कहोगे न! इसको तुम महात्मा तो नहीं कहोगे। इस आदमी ने पहले भी मूढ़ताएं कीं और अब महामूढ़ता कर रहा है, क्योंकि जो वेश्यालय तक जा सकता है, वह मंदिर तक जाने में समर्थ है। जो शराबघर तक जा सकता है, वह स्वर्ग तक जा सकता है। पैर हैं, जो नर्क की यात्रा कर सकता है, उसको स्वर्ग की यात्रा में कौन सी बाधा है? रुख बदलना है, दिशा बदलनी है; बाएं न चले, दाएं चले, बस इतना ही फर्क करना है। पैर तो वही हैं, सीढ़ी तो वही है, नीचे न गये, ऊपर गये। उसी सीढ़ी से तुम ऊपर जाते हो, उसी से नीचे जाते हो, सीढ़ी थोड़े ही तोड़ देते हो इसलिए कि नीचे ले जाती है? जो सीढ़ी नीचे ले जाती है, वही ऊपर नहीं ले जाती? सिर्फ दिशा बदलनी होती है।

शांडिल्य कहते हैं—दिशा बदलो। क्षणभंगुर से छोड़ो नाता, राग छोड़ो और शाश्वत से राग जोड़ो। परम से जोड़ो राग। जरा सोचो तो कि क्षणभंगुर में जहां कोई सुख नहीं है, राग के कारण वहां भी सुख के क्षण मिल जाते हैं, लम्हे भर को, लम्हे भर को ये दुनिया जुल्म छोड़ देती है, लम्हे भर को सब पत्थर मुस्कुराने लगते हैं, तुम्हें दिखायी पड़ने लगता है कि सब चारों तरफ हंसी है, चारों तरफ खुशी है। जरा सोचो, अगर यही प्रेम तुम शाश्वत से लगाओ, तो अनंत होगी तुम्हारी संपदा, उसका कोई पारावार न होगा। और उन लोगों से बचना जिन्होंने पैर काट लिये, पंख काट लिये। विरागियों से बचना, राग ही मार्ग है।

जवानी अपनी किस तरह गुजारी है तूने
कि अब हर उठती जवानी से बदगुमान है तू
यह फर्दे-जुर्म किसी और की जुबां पर नहीं
खुद अपने अहदे-गुजिश्तां की तर्जुमान है तू
वह चेहरे जिनमें फरोजां है अस्मते-मरियम
तू उन पे अपने गुनाहों का अक्स डालती है
तेरा जमीर है तीरा, महो-नजूम नहीं
महो-नजूम पे तू तीरगी उछालती है
मिटा दिया तेरे चेहरे की झुर्रियों ने जिसे
तू उस निखार की अब ताब ला नहीं सकती
हंसी को जुर्म समझने का यह सबब तो नहीं

कि हंसी तेरे होंठों पे आ नहीं सकती
बिठा दिए तो हैं पहरे कदम-कदम पे मगर
झिझक के चलने में लग्जिश जरूर होती है
गुनाह होते हैं दाखिल वहीं से फितरत में
जवानी अपना जहां एतबार खोती है
ये तितलियां जिन्हें मुट्ठी में भींच रखा है
जो उड़ने पायें तो उलझें कभी न खारों से
तेरी तरह ये भी कहीं न बुझ के रह जाएं
तपिश निचोड़ न इन नाचते शरारों से

कवि कहता है—

जवानी अपनी किस तरह गुजारी है तूने
कि अब हर उठती जवानी से बदगुमान है तू

तुमने जरूर गलत ढंग से अपनी जवानी गुजारी होगी, तभी तुम जवानों पर नाराज होते हो, तभी तुम हर जवान के विरोध में होते हो; तुमने राग अपना गलत से लगाया होगा, इसलिए तुम हर रागी पर नाराज होते हो।

ये फर्दे-जुर्म किसी और की जुबां पे नहीं
खुद अपने अहदे-गुजिश्तां की तर्जुमान है तू

और जब भी तुम किसी बात की निंदा करते हो तो खयाल रखना, यह तुम्हारे अतीत की ही निंदा है, और किसी बात की निंदा नहीं। जब कोई आदमी कहता है—धन पाप है, तो समझ लेना इसने अपनी जिंदगी धन कमाने में गंवायी होगी। कुछ और नहीं कहता यह आदमी। जब कोई आदमी कहता है—स्त्रियों के पीछे मत भागो, यह सब व्यर्थ है, तो वह इतना ही कहता है कि इसने अपनी जिंदगी स्त्रियों के पीछे भागने में गंवा दी है। यह आदमी अपने संबंध में कुछ कह रहा है। यह तुम्हारे संबंध में कुछ नहीं कह रहा है, यह स्त्रियों के संबंध में कुछ नहीं कह रहा है, यह सिर्फ अपने संबंध में कुछ कह रहा है।

वह चेहरे जिनमें फरोजां है अस्मते-मरियम
तू उन पे अपने गुनाहों का अक्स डालती है

यहां ऐसी स्त्रियां भी हुईं जैसे मरियम—जीसस की मां मरियम, उससे ज्यादा पवित्र चेहरा और कहां खोज पाओगे? लेकिन तुम कहते हो कि स्त्रियां नरक के द्वार हैं। जरूर तुम अपना ही अनुभव दोहरा रहे हो। तुमने ऐसी स्त्रियां खोजी होंगी जो नरक के द्वार हैं। यह तुम्हारी खोज के संबंध में खबर है, यह स्त्रियों के संबंध में कोई खबर नहीं है। यहां तो मरियम जैसी स्त्रियां भी हैं, जो स्वर्ग के द्वार हैं, जिनसे देवता भी पैदा होने को तड़फें।

वह चेहरे जिनमें फरोजां है अस्मते-मरियम
तू उन पे अपने गुनाहों का अक्स डालती है
तेरा जमीर है तीरा, महो-नजूम नहीं

तेरा अंतःकरण अंधेरे से भरा है, आकाश नहीं, आकाश में तो बहुत चांद-तारे हैं—

तेरा जमीर है तीरा, महो-नजूम नहीं
महो-नजूम पे तू तीरगी उछालती है

और तुम अपने भीतर के अंधेरे को चांद-तारों पर फेंकते हो—

मिटा दिया तेरे चेहरे की झुर्रियों ने जिसे
तू उस निखार की अब ताब ला नहीं सकती
हंसी को जुर्म समझने का यह सबब तो नहीं
कि हंसी तेरे होंठों पे आ नहीं सकती

क्योंकि तुम नहीं हंस सकते, इसलिए हंसी पाप है? क्योंकि तुम नहीं हंस सकते, इसलिए हंसी जुर्म है? क्योंकि तुम नहीं हंस सके तुम्हारे जीवन में, तुम्हें कला के सूत्र न मिले, तुम्हें हंसने का राज न मिला—क्योंकि तुमने रोते जिंदगी बिताई—तो तुम सभी को कहते फिरते हो कि जिंदगी में सिवाय आंसुओं के और कुछ भी नहीं है, कांटे ही कांटे हैं, फूल यहां हैं ही नहीं—क्योंकि तुम्हारी बगिया में फूल न खिला, इसलिए और बगियाओं में फूल नहीं हैं। तुम अपने को सब पर मत थोपो। तुम्हारी हार तुम सबकी हार में मत बदलो। मगर तुम्हारे महात्मा यही करते रहे हैं।

बिठा दिए तो हैं पहरे कदम-कदम पे मगर
झिझक के चलने में लग्जिश जरूर होती है
गुनाह होते हैं दाखिल वहीं से फितरत में
जवानी अपना जहां एतबार खोती है

जहां जवान आदमी, जहां जीवन अपने में आस्था खो देता है, वहीं से पाप शुरू होते हैं। और तुम्हारे महात्माओं ने तुम्हारी आस्था डगमगा दी है। उन्होंने तुम्हें ऐसी बातें दी हैं कि तुम जो भी करो, गलत है। तुम जो भी करो, गुनाह है। खाओ-पीओ गुनाह है। उठो-बैठो, गुनाह है। सोओ-जागो, गुनाह है। प्रेम करो, संबंध बनाओ, दोस्ती बनाओ, गुनाह है; सब गुनाह है। तुम्हें गुनाहों से भर दिया। यह गुनाहों से भरा हुआ आदमी कैसे तो ईश्वर को पुकारे? किस मुंह से पुकारे? किस कारण पुकारे? ईश्वर ने सिवाय गुनाहों के और कुछ तो दिया नहीं। सिवाय पापों से भरी यह जिंदगी, और तो कुछ दिया नहीं, तुम धन्यवाद किस बात का दो? और जहां धन्यवाद नहीं है, वहां प्रार्थना नहीं पैदा होती है।

गुनाह होते हैं दाखिल वहीं से फितरत में
जवानी अपना जहां एतबार खोती है
ये तितलियां जिन्हें मुट्ठी में भींच रक्खा है
जो उड़ने पाएं तो उलझें कभी न खारों से

और तुम्हारे महात्माओं ने क्या किया है, तितलियां पकड़ रखी हैं; इस डर से कि कहीं अगर उड़ें तो कांटों से न उलझ जाएं।

ये तितलियां जिन्हें मुट्ठी में भींच रक्खा है

जो उड़ने पाएं तो उलझें कभी न खारों से
तेरी तरह ये भी कहीं न बुझ के रह जाएं
तपिश निचोड़ न इन नाचते शरारों से

इन नाचते हुए चिनगारियों से आग को मत निकाल लो। इनका जीवन निचोड़ मत लो। इन्हें उड़ने दो।

भक्ति तुम्हें जीवन की परम स्वतंत्रता देती है। भक्ति कहती है—तुम्हारा आकाश है, उड़ो; प्रभु ने पंख दिये, उड़ो। इतना ही ध्यान रहे कि ये पंख ऊपर भी ले जा सकते हैं; ये पैर मंदिर तक भी पहुंचा सकते हैं। ये आंखें देह का सौंदर्य देखने पर चुक न जाएं—यद्यपि देह के सौंदर्य में कुछ भी खराबी नहीं है, कोई भी पाप नहीं है, है तो सौंदर्य उसी का, सारा सौंदर्य उसी का है। जब तुम किसी स्त्री को या किसी पुरुष को सुंदर पाते हो, तो यह उसी की झलक है, यह उसी की खबर है। दूर की सही, बहुत दूर की गूंज सही, मगर उसी की गूंज है, अनुगूंज है। वही झलका है। लेकिन ये आंखें दृश्य पर ही समाप्त न हो जाएं, एक अदृश्य सौंदर्य भी है, इन आंखों को उसकी तलाश में लगाना। और ये कान शब्दों को ही सुनते-सुनते शांत न हो जाएं, शून्य को सुनने का भी और बड़ा आनंद है। और ये हाथ जो छुआ जा सकता है उसी को न छूते रहें, कुछ ऐसा भी है जो छुआ नहीं जा सकता, फिर भी हाथों में आ सकता है। और यह हृदय व्यर्थ की ही चिंतना में न डूबा रहे, सार से भी इसका संबंध जुड़े। राग के दुश्मन मत बन जाना। राग के अतिरिक्त कोई सेतु नहीं है।

इसलिए कहते हैं शांडिल्य—

रागत्वादितिचेन्नोत्तमास्पदत्वात् संगवत्।

'अनुराग ही का नाम भक्ति है। कोई ऐसा कहते हैं कि अनुराग दुख का कारण है, इसलिए उसका त्याग करना चाहिए। परंतु यह बात ऐसी नहीं है; क्योंकि संग की भांति इसका आश्रम उत्तम है।'

आश्रय कैसा है? विषय कैसा है? उत्तम से जोड़ दो तो भक्ति हो जाती है। क्षुद्र से जोड़ा दो, तो क्षुद्रता। इसलिए मैंने तुमसे कहा कि प्रीति-तत्व के ये रूप हैं: एक, स्नेह। अपने से छोटे से—बच्चे से, बेटे से। दूसरा, प्रेम। अपने समान से—पति से, पत्नी से, मित्र से। तीसरा, श्रद्धा। अपने से बड़े से—पिता से, मां से, गुरु से। और चौथी परम दशा है, भक्ति। ये सब प्रीति के ही रूप हैं। तुम्हारा प्रेम भक्ति तक पहुंच जाए। इतना स्मरण रहे, न कुछ छोड़ना है, नहीं कहीं भाग जाना है। इसी संसार की मिट्टी में परमात्मा का सोना मिला है। छांटना है, मिट्टी-मिट्टी अलग कर देनी है, सोना-सोना छांट लेना है।

तदेव कर्मिज्ञानियोगिभ्य आधिक्यशब्दात्।

'कर्मी, ज्ञानी और योगी से भी भक्त को आधिक्य शब्द में वर्णन होते देखा जाता, इस कारण वह श्रेष्ठ ही है।' शांडिल्य कहते हैं—सारे शास्त्रों का सार यह है कि जिस भांति शास्त्रों ने भक्त की प्रशंसा की है, वैसी किसी की भी नहीं की। वेद भी भक्त को परम कहते हैं, उपनिषद भी। कृष्ण भी गीता में भक्त को परम कहते हैं।

आधिक्य से वर्णन किया गया है अगर किसी का, तो वह भक्त का किया गया है। कर्म की भी प्रशंसा की गयी है। और ज्ञान की भी प्रशंसा की गयी है। और योग की भी प्रशंसा की गयी है। और सारी विधियों की भी चर्चा की गयी है। लेकिन भक्त को आधिक्य से कहा गया है। उसकी अत्यधिक प्रशंसा की गयी है। क्यों? क्योंकि भक्त इस जगत में द्वंद्व पैदा नहीं करता; निर्द्वंद्व है। भक्त इस जगत में चुनाव नहीं करता। यह संसार और यह परमात्मा, ऐसा खंड नहीं करता। कहता है—यह संसार भी उसी परमात्मा का। भक्त परमात्मा को संसार के विपरीत नहीं देखता, संसार में छिपा, अनुस्यूत देखता है। कण-कण में है। क्षण-क्षण में वही व्याप्त है।

फिर भक्त अपने को सब भांति समर्पित करता है। उसका समर्पण पूर्ण है। भक्त ही कर सकता है पूर्ण समर्पण। प्रेम ही कर सकता है पूर्ण समर्पण, और तो कोई पूर्ण समर्पण नहीं कर सकता है। योगी का स्वार्थ है, मोक्ष चाहिए। भक्त को वैसा स्वार्थ भी नहीं है। भक्तों ने कभी मोक्ष नहीं मांगा। ज्ञानी को ज्ञान चाहिए। सत्य क्या है, इसका साक्षात्कार चाहिए। भक्त को उसकी भी चिंता नहीं है। भक्त तो कहता है—मेरे हृदय में मैं न रहूं, बस इतना काफी है। जहां मैं न रहा, वहां तू रहेगा ही। मैं शून्य हो जाऊं, मैं तेरे योग्य पात्र बन जाऊं, तेरे चरणों में कहीं धूल बनकर पड़ा रहूं, बस पर्याप्त है। मेरी अलग से कोई आकांक्षा नहीं है। योगी मोक्ष मांगता, ज्ञानी ज्ञान मांगता, कोई कुछ मांगता, कोई कुछ मांगता; भक्त कहता है इतना ही कि मुझे मिटा दे; मुझे ऐसा नेस्तनाबूद कर दे कि मुझे मेरा कुछ पता न रहे; मैं बेखुद हो जाऊं। इसलिए कृष्ण कहते हैं कि भक्त के हृदय में मैं जिस भांति विराजता हूं, वैसा किसी और के हृदय में नहीं विराजता हूं। वैसा वैकुंठ में भी नहीं। भक्त के हृदय में जिस प्रीति से बैठता हूं, वैसा कहीं और स्थान ही नहीं है।

प्रश्ननिरूपणाभ्यामाधिक्यसिद्धेः।

'भक्ति की यह श्रेष्ठता प्रश्न और उत्तर द्वारा भी सिद्ध हो चुकी है।' यह सूत्र बड़ा अनूठा है। अनूठा इसलिए कि बड़ा सांकेतिक है। और सांकेतिक होने के कारण इसके अब तब जो अर्थ लिए गए हैं, बड़े गलत लिए हैं। यह सूत्र सीधा-सीधा नहीं है, बड़ा परोक्ष है। क्या चाहते हैं शांडिल्य कहना कि भक्ति की यह श्रेष्ठता प्रश्न और उत्तर द्वारा सिद्ध हो चुकी? जिन्होंने शांडिल्य पर व्याख्याएं की हैं, उन्होंने यह मान लिया कि प्रश्न-उत्तर से शांडिल्य का इशारा श्रीमद्‌भगवद्‌गीता की तरफ है; क्योंकि कृष्ण और अर्जुन के बीच प्रश्न-उत्तर हुए। और उन्हीं प्रश्न-उत्तर में भक्ति की सर्वोच्च ऊंचाई सिद्ध हो चुकी है।

ऐसा अर्थ किया जाए तो किया जा सकता है। मगर यह अर्थ बड़ा दूरगामी नहीं। अगर शांडिल्य को यही कहना होता तो कृष्ण-अर्जुन संवाद कह देते; यही कहना होता तो श्रीमद्‌भगवद्‌गीता का नाम ही ले देते; इस तरह परोक्ष कहने की क्या जरूरत थी? इसलिए मैं इसका कुछ और अर्थ करना चाहता हूं।

शिष्य और गुरु के बीच बहुत कुछ है, जो शब्दों के बिना भी होता है। विद्यार्थी और अध्यापक के बीच केवल शब्दों का लेन-देन होता है। यही फर्क है।

शिष्य और गुरु के बीच निशब्द का भी लेन-देन होता है। शब्द का लेन-देन होता है, मगर वह गौण है, दोयम, नंबर दो। प्रथम तो है मौन का आदान-प्रदान।

पच्चीस सौ साल हुए, एक जंगल में एक सुबह यह घटना घटी। एक व्यक्ति अपने हाथ में फूल लिए हुए आया। आकर बैठा। उसके चारों तरफ उसकी शिष्य-मंडली थी। और उस व्यक्ति ने वह फूल एक-एक शिष्य के सामने किया। जिसके सामने फूल गया, उसने कुछ कहा, फूल के संबंध में कुछ व्याख्या की। फूल घूमता रहा। और आखिर में एक शिष्य के सामने गया और उस शिष्य ने कुछ भी न कहा, वह सिर्फ मुस्कुराया, हंसा। और कहते हैं, इसी घटना में झेन संप्रदाय का जन्म हुआ, ध्यान संप्रदाय का जन्म हुआ।

यह बात बहुत महत्वपूर्ण नहीं है कि वह व्यक्ति गौतम बुद्ध था। कोई और भी हो सकता था। कृष्ण हो सकते थे, क्राइस्ट हो सकते थे, कपिल हो सकते थे, कणाद हो सकते थे, कबीर हो सकते थे, कोई भी हो सकता था; शर्त एक ही है कि जो भी हो, वह जागा हुआ होना चाहिए।

और ध्यान संप्रदाय का जन्म क्यों हुआ उस एक के हंसने पर? क्योंकि जब बुद्ध ने इस फूल को औरों के सामने किया, तो वे भाषा में बोले, उन्होंने कुछ कहा, अपना-अपना ज्ञान दिखलाया; फूल के संबंध में कुछ कहा लेकिन फूल से चूक गये। फूल तो तथ्य है, शब्दातीत है, कुछ कहने का उपाय नहीं है। आश्चर्यचकित हो सकते हो फूल को देखकर, विस्मय-विमुग्ध हो सकते हो फूल को देखकर, आंदमग्न हो सकते हो फूल को देखकर, फूल के सौंदर्य को देखकर स्तब्ध हो सकते हो, आंसू झर सकते हैं आनंद के, कि हंसी फूट सकती है, मगर शब्द, शब्द बहुत ओछा है, शब्द बहुत छोटा है।

जिस शिष्य के पास फूल आया और ठहर गया, वह था महाकाश्यप। वह सिर्फ मुस्कुराया, फिर खिलखिलाकर हंसा। और बुद्ध ने वह फूल महाकाश्यप को दे दिया। और कहा कि जो मैं कह सकता था, वह मैंने औरों से कह दिया है, जो मैं नहीं कह सकता, वह मैं तुझे दिए दे रहा हूं।

परम घटना मौन में घटती है। शिष्य और गुरु के बीच शब्दों का आदान-प्रदान नहीं होता, ऐसा नहीं, होता है, लेकिन वह असली आदान-प्रदान नहीं। एक और आदान-प्रदान है जो चुप-चुप होता है, जो बिन बोले होता है। शांडिल्य जिस शिष्य से ये सूत्र कह रहे हैं, या जिन शिष्यों से ये सूत्र कह रहे हैं, उनसे उनका मौन का नाता है। उन शिष्यों ने मौन में बहुत बार उनसे प्रश्न पूछे हैं, और बहुत बार उनके उत्तर पाए हैं। यहां मेरे पास वे लोग हैं, जो मौन में पूछते हैं, और मौन में पाते भी हैं। मौन में पूछने वाला ही पाता है।

शांडिल्य जब कहते हैं : प्रश्ननिरूपणाभ्यामाधिक्यसिद्धेः, प्रश्न और उत्तर द्वारा भी क्या यही बात सिद्ध नहीं हो चुकी है। वे किस बात की तरफ इशारा कर रहे हैं? वे अपने शिष्यों से कह रहे हैं कि तुमने कितनी बार पूछा है और मैंने कितनी बार तुमसे कहा है। भीतर-भीतर अंतरंग में तुम प्रश्न बने हो, मैं उत्तर बना हूं, क्या हर बार

भक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध नहीं हुई? क्या मतलब इसका? इसका मतलब यह हुआ कि जब भी तुमने शांत और मौन होकर प्रेम से भरकर पूछा है, तो तुमने उत्तर पाया है। जब भी तुम शांत और मौन होकर प्रेम से मेरी तरफ देखे हो, तो तुम चाहे हजार मील दूर रहे, तुमने मुझे अपने भीतर पाया है। क्या उससे बात सिद्ध नहीं हो गयी है? क्या प्रेम के अनुभव से बात सिद्ध नहीं हो गयी है?

यह इशारा कृष्ण की गीता की तरफ नहीं है। कृष्ण की गीता की तरफ होता तो सीधा कह देते, ऐसे प्रश्न-उत्तर की बात क्यों उठाते? क्योंकि फिर तो बड़ी झंझट है। उपनिषदों में भी प्रश्न-उत्तर हैं। फिर गीता ही क्यों? फिर उपनिषद क्यों नहीं? फिर प्रश्न-उत्तर तो हजारों साल से चलते रहे हैं, न मालूम कितने शास्त्रों में प्रश्न-उत्तर हैं। नहीं, शांडिल्य तो उस अपने अंतर्संबंध की तरफ इशारा कर रहे हैं। वह यह कह रहे हैं कि सुनो! तुम भी पूछते हो और कितनी बार नहीं तुम्हारे प्रेम के कारण समय और स्थान की दूरी मेरे और तुम्हारे बीच मिट गयी है। कितनी बार तुमने चुपचाप प्रेम से पूछा है और उत्तर पाया है। क्या उससे भक्ति का आधिक्य सिद्ध नहीं हो गया? उससे बात सिद्ध हो चुकी है।

'नैवश्रद्धा तु साधारण्यात्।

'भक्ति श्रद्धा की भांति नहीं है, क्योंकि श्रद्धा साधारणरूप से दिखायी पड़ती है।' श्रद्धा साधन है भक्ति का, भक्ति साध्य है। साधन साध्य नहीं हो सकता। तुम जिस नाव से दूसरे किनारे पर जाते हो, वह नाव दूसरा किनारा नहीं है, न हो सकती है। साधन साधन है, साध्य साध्य है। श्रद्धा भक्ति तक लाती है, लेकिन भक्ति नहीं है। बहुत लोग श्रद्धा को ही भक्ति समझ लेते हैं, तो भ्रांति हो जाती है।

फिर भक्ति क्या है? श्रद्धा में कुछ न कुछ पाने की आकांक्षा बनी रहती है, भक्ति निष्कांक्षी है। भक्त ने तो पा लिया, श्रद्धालु पाने में लगा है। भक्ति उस भावदशा का नाम है, जब तुम्हें पता चलता है कि परमात्मा मिला ही हुआ है, पाने का कोई सवाल ही नहीं है। पाने की बात ही गलत है। ऐसा समझो, तुम्हारे खीसे में हीरा पड़ा है और तुम भूल गये। श्रद्धा का अर्थ है, किसी ने कहा कि तुम भूल गए क्या, तुम्हारे पास हीरा है? और तुमने उस आदमी की बात पर भरोसा किया और खोज शुरू की, कि हो सकता है यह आदमी ठीक कहता हो। तुम इस आदमी को जानते हो, यह प्रामाणिक है, यह कभी झूठ नहीं बोला, इसने तुम्हें कभी धोखा नहीं दिया, इसकी और सलाहें भी पीछे अतीत में काम आयी हैं, इसने जब जो कहा काम पड़ा है, इसने जब जो कहा वैसा ही हुआ है, हजार-हजार अनुभवों से सिद्ध हो चुका है कि यह आदमी विश्वास योग्य है। और यह आदमी आज तुमसे कहता है कि हीरा तुम्हारे पास है, तुम तलाशते क्यों नहीं, तुम हाथ फैलाए भीख क्यों मांगते हो, हीरा तुम्हारे भीतर पड़ा है, तो तुम्हें श्रद्धा उमगती है। तुम सोचते हो कि यह आदमी कभी झूठ नहीं बोला, यह आदमी सदा मेरे काम आया, और इसने जो कहा सदा ठीक हुआ, मैंने माना तो, मैंने नहीं माना तो, अंततः इसकी बात सदा सही सिद्ध हुई है। हो न हो यह भी बात सही हो—यह श्रद्धा।

फिर तुम खोज करते हो और एक दिन हीरा तुम्हारी मुट्ठी में आ जाता है। जब हीरा तुम्हारी मुट्ठी में आ जाता है, तब भक्ति। अब तुम अहोभाव से भरते हो। अब तुम्हारे भीतर बड़ी कृतज्ञता उठती है। तुम नाचते हो, तुम मस्त हो, मस्ती समाती नहीं, बही जाती है—आधिक्य हो गया। और अब तुम हंसते भी हो कि मैं भी कैसा मूढ़ हूं, जिस हीरे को खोजता था वह मेरे पास था। हीरा मेरे पास था और मैं दाने-दाने को मुहताज था, मैं भी कैसा पागल!

ऐसी ही परमात्मा की उपलब्धि है। परमात्मा को तुमने कभी खोया नहीं—जिसे तुम खो दो, वह परमात्मा नहीं। परमात्मा तुम्हारा स्वभाव है, खोओगे कैसे? तुम परमात्मा हो। परमात्मा तुम्हारे हृदय में धड़क रहा है। वह हीरा तुम्हारे भीतर पड़ा है। तुम जब चाहो तब पा लो, क्योंकि तुम पाए ही हुए हो। भक्ति उस दशा का नाम है जब तुम अपने भीतर भगवान को पाते हो। भक्ति भगवान की उपस्थिति से उठी सुवास है। श्रद्धा तलाश है, श्रद्धा खोज है।

शांडिल्य कहते हैं—भक्ति श्रद्धा की भांति नहीं है, क्योंकि श्रद्धा साधारण रूप से दिखायी पड़ती है। और भी भेद हैं श्रद्धा और भक्ति में। श्रद्धा नास्तिक को भी होती है। आखिर कम्युनिस्ट कार्ल मार्क्स और एंजील्स और लेनिन पर वैसी ही श्रद्धा करता है, जैसे हिंदू कृष्ण पर करता है और ईसाई क्राइस्ट पर करता है। कम्युनिस्ट दास कैपिटल पर वैसी ही श्रद्धा करता है जैसी मुसलमान कुरान पर करता है और बौद्ध धम्मपद पर करता है। यद्यपि कम्युनिस्ट भक्त नहीं है, और कभी भक्त नहीं हो सकता। श्रद्धा तो साधारणतः सब तरफ दिखायी पड़ती है। बच्चे मां-बाप पर श्रद्धा करते हैं, लेकिन भक्ति नहीं है वह। जिस गुरु से तुम कुछ सीख लेते हो, उस पर तुम्हें श्रद्धा आती है, सम्मान आता है, आदर भाव आता है, लेकिन भक्ति नहीं है वह।

श्रद्धा अधार्मिक भी हो सकती है, अनैतिक भी हो सकती है। समझो कि किसी ने तुम्हें जेब काटना सिखाया, वह तुम्हारा गुरु हो गया। उस पर श्रद्धा होगी, उस पर आदर होगा। चोरों के भी गुरु होते हैं, बेईमानों के भी गुरु होते हैं। बेईमानी की भी तो कला होती है। कोई ऐसे ही तो नहीं आ जाती है बेईमानी, सीखनी पड़ती है। उसमें भी दादा गुरु होते हैं! तो वहां भी श्रद्धा होती है। श्रद्धा साधारण बात है। जिससे हमें कुछ मिलता है मूल्यवान, उसी पर श्रद्धा हो जाती है।

परमात्मा से जो संबंध है, वह मात्र श्रद्धा का नहीं हो सकता है। श्रद्धा का हो, तो अभी संबंध हुआ नहीं। परमात्मा से संबंध भक्ति का हो सकता है। इसीलिए तो कृष्ण को मानने वाला कृष्ण को भगवान कहेगा। क्यों? महावीर को मानने वाला महावीर को भगवान कहेगा। क्यों? वह इतना ही कह रहा है कि हम साधारण गुरु नहीं मानते महावीर को, हमारा संबंध श्रद्धा का ही नहीं है, भक्ति का है। वह और कुछ भी नहीं कह रहा है। वह सिर्फ इस बात की घोषणा कर रहा है कि महावीर मेरे लिए गुरु ही नहीं हैं, भगवान हैं। मेरे भीतर उनके प्रति जो भाव है वह मात्र श्रद्धा का नहीं है, श्रद्धा तो साधारण बात है। मेरे और उनके बीच जो फूल खिला है वह भक्ति का है। मुझे अब उनसे कुछ लेना-देना नहीं है, उनकी मौजूदगी काफी है, उनका होना परम धन्यता है।

इसलिए जो एक को भगवान है, दूसरे को नहीं भी होगा। जैनों का भगवान हिंदुओं के लिए भगवान नहीं है। कोई कारण नहीं है। क्योंकि भगवत्ता तो एक निजी घटना है। ईसाइयों का भगवान मुसलमानों का भगवान नहीं है। बुद्ध को मानने वाले बुद्ध को भगवान कहते हैं। कृष्ण को मानने वाले राजी नहीं होंगे, जैन राजी नहीं होंगे, बुद्ध और भगवान! लेकिन उनकी नाराजगी इतना ही कहती है कि उनके और बुद्ध के बीच भक्ति का संबंध नहीं है—और कुछ नहीं कहती। इसमें कुछ विवाद जैसी बात नहीं है। अगर जैन यह सिद्ध करने लगें कि महावीर सब के भगवान हैं, तो झंझट की बात है। जैन अगर इतना ही कहें कि हमारे भगवान हैं, बात समाप्त हो गयी। इससे आगे कोई विवाद का उपाय नहीं है। लेकिन महावीर की, कृष्ण की, या बुद्ध की उदघोषणा भगवान की तरह उनके प्रेम करने वालों ने की, उसका कारण इतना ही है कि वे यह जाहिर करना चाहते हैं कि हमारे और उनके बीच साधारण श्रद्धा का नाता नहीं है, वह नाता वही है जिसको भक्ति का नाता कहते हैं। भक्ति परम नाता है। वह अनुराग की परम शुद्ध दशा है। उसके ऊपर और कोई शुद्धि नहीं है।

स्नेह क्षणभंगुर का होता, प्रेम भी क्षणभंगुर का होता, और श्रद्धा भी। भक्ति शाश्वत की है। श्रद्धा बनती है, मिट सकती है। आज है, कल खो जाए। आज तुमने जिसे श्रद्धा से देखा, शायद कल श्रद्धा से न देखो, अश्रद्धा से देखो श्रद्धा बदल सकती है। लेकिन भक्ति आयी तो आयी, फिर बदलना नहीं जानती। और जो भक्ति बदल जाए, तो जानना कि भक्ति नहीं थी; श्रद्धा ही रही होगी, तुमने भक्ति मान लिया था। झूठ तुमने अपने ऊपर आरोपित कर लिया था। भक्ति बदलती नहीं, बदल ही नहीं सकती। एक बार आयी तो आयी, फिर जाने का नाम नहीं लेती। जो चली जाए, वह ज्यादा से ज्यादा श्रद्धा हो सकती है।

काम तखईल आ नहीं सकती
दीद दूरी मिटा नहीं सकती
कैफ क्या भागती बहारों में
दिल की राहत कहां नजारों में
लाख झूले नजर सितारों में
तीरगी घर की जा नहीं सकती

कल्पना से कुछ काम नहीं बनता—'काम तखईल आ नहीं सकती।' तुम्हारे प्रेम, तुम्हारे स्नेह, तुम्हारी श्रद्धाएं कल्पना के फैलाव हैं; तुम्हारी मान्यताएं हैं; तुमने मान लिया। मान लिया तो ठीक, लेकिन जीवन के सत्य के अनुभव नहीं हैं। 'दीद दूरी मिटा नहीं सकती'—और दर्शन भर से दूरी नहीं मिटती, जब तक एकात्म अवस्था न हो जाए। श्रद्धा में दूरी है, भक्ति में दूरी समाप्त हो गयी। भक्त और भगवान एक हो गये।

काम तखईल आ नहीं सकती
दीद दूरी मिटा नहीं सकती
कैफ क्या भागती बहारों में

और जहां प्रतिक्षण सब कुछ बदला जा रहा है, वहां आनंद कैसे होगा—कैफ क्या भागती बहारों में

दिल की राहत कहां नजारों मं
लाख झूले नजर सितारों में
तीरंगी घर की जा नहीं सकती

और तुम कितने ही आकाश के तारों को देखते रहो, इससे तुम्हारे घर का अंधेरा नहीं मिटेगा। घर का अंधेरा तो तभी मिटेगा जब घर का दीया जलेगा। श्रद्धा दूसरे पर होती है, श्रद्धा 'पर' पर होती है। भक्ति, जब तुम्हारे भीतर भगवान का दीया ज्लता, जब तुम भगवान के मंदिर बनते हो, तब, जब तुम उसके पूजागृह बन जाते हो—पुजारी ही नहीं, उसके पूजागृह; उपासक ही नहीं, उसके मंदिर।

जिक्रे अजदाद से हूं गो खुर्सद
हालो-माजी का राब्ता ता चंद
मौत से साज करके जीना क्या
खुम से जो गिर गयी वह पीना क्या
वहम से चाके-अक्ल सीना क्या
उधड़े जाते हैं खुद-ब-खुद पैबंद
नग्मगी गम पे छायेगी क्यों कर
मुफलिसी गुनगुनायेगी क्यों कर
मैकदा है निशात की बस्ती
फिर भी मिटता नहीं गमे-हस्ती
मुस्तकिल प्यार, आरजी मस्ती
रूह तस्कीन पायेगी क्यों कर

यहां इस जगत में राहत नहीं मिल सकती, तस्कीन नहीं मिल सकती।

मुस्तकिल प्यार, आरजी मस्ती

यहां सब क्षणिक है। अभी है, अभी नहीं है। सब पानी पर खींची गयी लकीरें हैं।

मुस्तकिल प्यार, आरजी मस्ती
रूह तस्कीन पाएयी क्यों कर
यख जमेगी शरार पर कितनी
आगही होगी बेखबर कितनी
जुल्फ लहरा के इत्र बरसा जाए
नश्शा-सा इक हवास पर छा जाए
नर्म जानू पर नींद भी आ जाए
नींद की उम्र ही मगर कितनी

'यख जमेगी शरार पर कितनी'। चिनगारी पर बर्फ जमाना चाहो तो कितनी देर जमा पाओगे, कितनी जमा पाओगे?

यख जमेगी शरार पर कितनी
आगही होगी बेखबर कितनी
जुल्फ लहरा के इत्र बरसा जाए
नश्शा-सा इक हवास पर छा जाए
नर्म जानू पे नींद आ जाए
नींद की उम्र ही मगर कितनी

बार-बार सोओगे क्षणभंगुर में, बार-बार नींद टूटेगी, बार-बार जगोगे। यहां तो उथल-पुथल मची ही रहेगी। तो स्नेह से काम न चलेगा, प्रेम से काम न चलेगा, श्रद्धा से काम न चलेगा—वे सभी के सभी संसार के भीतर हैं—भक्ति चाहिए। संसार के पार आंख उठनी चाहिए। कुछ तो तुम्हारे जीवन में ऐसा हो जो सांसारिक नहीं है। कोई एक किरण सही, जो तुम्हें संसार के पार ले चले। उसी किरण के सहारे तुम परमात्मा तक पहुंच जाओगे।

और फिर कृष्ण ने अर्जुन से कहा :
न कोई भाई, न बेटा, न भतीजा, न गुरु
एक ही शक्ल उभरती है हर आईने में
आत्मा मरती नहीं, जिस्म बदल लेती है
धड़कन इस सीने की जा छुपती है उस सीने में
जिस्म लेते हैं जन्म, जिस्म फना होते हैं
और जो इक रोज फना होगा, वह पैदा होगा
इक कड़ी टूटती है, दूसरी बन जाती है
खत्म ये सिलसिल-ए-जिंदगी फिर क्या होगा
रिश्ते सौ, जज्बे भी सौ, चेहरे भी सौ होते हैं
फर्ज सौ चेहरे में शक्ल अपनी ही पहचानता है
वही महबूब, वही दोस्त, वही एक अजीज
दिल जिसे इश्क, और इदराक अमल मानता है
जिंदगी सिर्फ अमल, सिर्फ अमल, सिर्फ अमल
और ये बेदर्द अमल सुलह भी है जंग भी है
अम्न की मोहनी तस्वीर में हैं जितने रंग
उन्हीं रंगों में छिपा खून का इक रंग भी है
खौफ के रूप कई होते हैं, अंदाज कई
प्यार समझा है जिसे, खौफ है वो प्यारे नहीं
उंगलियां और गड़ा, और जकड़ और जकड़
आज महबूब का बाज़ू है ये तलवार नहीं
जंग रहमत है कि लानत, पर सवाल अब न उठा
जंग जब आ ही गयी सर पे तो रहमत होगी
दूर से देख न भड़के हुए शोलों का जलाल

इसी दोजख के किसी कोने में जन्नत होगी
जख्म खा, जख्म लगा, जख्म हैं किस गिनती में
फर्ज जख्मों को भी चुन लेता है फूलों की तरह
न कोई रंज़, न राहत, न सिले की परवा
पाक हर गर्द से रख दिल को रसूलों की तरह

यहां जितने संबंध हैं—भाई का, बेटे का, मां का, पिता का, गुरु का, सब संसार के हैं।

न कोई भाई, न बेटा, न भतीजा, न गुरु
एक ही शक्ल उभरती है हर आईने में
आत्मा मरती नहीं जिस्म बदल लेती है
धड़कन इस सीने की जा छुपती है उस सीने में

जिस दिन तुमने सब शक्लों में छिपे उस एक को देख लिया, उस दिन भक्ति। जब तक शक्ल में अटके, तब तक स्नेह, प्रेम, श्रद्धा। जिस दिन शक्लों के पीछे छिपे उस एक को देख लिया—जब तक लहरों में उलझे, तब तक स्नेह, प्रेम, श्रद्धा। जब सागर को देख लिया, तो भक्ति।

ऐसा नहीं है कुछ कि भगवान कहीं और है। यहीं छिपा है—इन्हीं वृक्षों में, इन्हीं लोगों में, इन्हीं पक्षियों में, इन्हीं पहाड़ों में, यहीं छिपा है, लेकिन हम शक्ल से उझल जाते हैं। हम वृक्ष को देखते हैं, वृक्ष के भीतर बहते प्राण की धारा को नहीं। हम पक्षी को उड़ते देखते हैं, पक्षी के भीतर उड़ती हुई आत्मा को नहीं। हम आदमी को देखते हैं, औरत को देखते हैं—आदमी और औरत ऊपर की बातें हैं—भीतर छिपे हुए चैतन्य को नहीं देखते। वह चैतन्य दिखने लगे तो भक्ति।

न कोई भाई, न बेटा, न भतीजा, न गुरु
एक ही शक्ल उभरती है हर आईने में
आत्मा मरती नहीं जिस्म बदल लेती है
धड़कने इस सीने की जा छुपती है उस सीने में

ऐसा देखो, ऐसा परखो, तो तुम धीरे-धीरे पाओगे शांडिल्य जिस अनुपम अनुराग की बात कह रहे हैं, वह तुम्हारे भीतर उठने लगा। अरूप का प्रेम, निराकार का प्रेम, निर्गुण का प्रेम।

तस्यां तत्वेचानवस्थानात्।

'श्रद्धा और भक्ति को एक अर्थ में लगाने से दोष हो जाएगा।' श्रद्धा को भक्ति मत समझ लेना; श्रद्धा पर रुक मत जाना, शांडिल्य का यह इशारा है।

तुम कुछ ऐसे हो कि जगह-जगह रुक जाते हो, इसलिए सदगुरुओं को कहना पड़ता है बार-बार। तुम ऐसे हो कि रुकने को तत्पर हो। बुद्ध ने कहा है—अगर मैं तुम्हारे ध्यान के रास्ते पर कहीं मिल जाऊं, तो मुझे दो टुकड़े कर देना। इफ यू मीट मी ऑन द वे, किल मी। मुझे मार डालना। क्यों? क्योंकि अगर बुद्ध न मारे जाएं, तो श्रद्धा पर अटकन हो जाएगी। जब बुद्ध भी विदा हो जाए, तो भगवत्ता का उदय हो।

गुरु के भी पार जाना होगा। गुरु ले जाता अंतिम तक, लेकिन अंततः, अंततोगत्वा गुरु अपना हाथ छुड़ा लेता है। उस समय हिम्मत होनी चाहिए कि तुम भी हाथ छोड़ दो। क्योंकि गुरु आखिरी रूप है, अरूप और रूप के बीच गुरु आखिरी कड़ी है। मगर अरूप में जाना है, निर्गुण में जाना है, निराकार में जाना है।

इसलिए शांडिल्य कहते हैं: 'श्रद्धा और भक्ति को एक समझोगे, तो दोष हो जाएगा।' श्रद्धा और भक्ति को एक मत समझना। श्रद्धा जगे, शुभ है। अगर तुम स्नेह में पड़े हो, प्रेम में पड़े हो, तो श्रद्धा तक पहुंचना बड़ी क्रांति है। लेकिन फिर उस क्रांति के भी पार जाना है। बुद्ध ने कहा है, जैसे कोई नाव से नदी पार करता है, फिर दूसरे किनारे उतरकर नाव को छोड़कर आगे बढ़ जाता है। ऐसे श्रद्धा से नाव बना लेना, पार कर लेना नदी, लेकिन जब दूसरा किनारा आ जाए, तो श्रद्धा को सिर पर मत ढोते फिरना।

इसलिए झेन फकीरों की अदभुत कहानियां हैं। रिंझाई ने बौद्ध शास्त्रों को आग लगा दी। शिष्यों ने पूछा, यह क्या करते हो? रिंझाई ने कहा, श्रद्धा बहुत हो चुकी, श्रद्धा तोड़नी जरूरी है। तुम इन शास्त्रों में मत अटक जाना, इसलिए आग लगाता हूं।

दूसरे झेन फकीर इक्का ने बुद्ध की लकड़ी की मूर्तियां जला दीं और आंच ताप ली।

श्रद्धा को एक दिन छोड़ देना है। श्रद्धा के जो पार उठता है, वही भक्ति को उपलब्ध होता है।

आज इतना ही।

दसवां प्रवचन

संन्यास शिष्यत्व की पराकाष्ठा है

10

क्या प्रार्थना और भक्ति भिन्न-भिन्न हैं?

★

संन्यास की वैज्ञानिक विधि क्या है?

जो पथ मुझे मौन में मिला है, वह श्रेष्ठ है या संन्यास?

★

क्या संन्यास लिए बगैर मेरा शिष्य रहना संभव?

सोचता हूं आपकी साधना में एक शाखा ऐसी भी रहे

जिसमें बिना संन्यास वगैरह लिए उस सत्ता तक पहुंचा जाए।

★

यह संसार क्या है, यह माया क्या है?

★

क्या आप शराब भी पीते हैं?

पहला प्रश्न: क्या प्रार्थना और भक्ति-भिन्न-भिन्न हैं?

भिन्न भी हैं और अभिन्न भी। भिन्न इसलिए हैं कि जहां प्रार्थना पूर्ण होती है, वहां भक्ति प्रारंभ होती है। अभिन्न इसलिए हैं कि बिना प्रार्थना के कोई भक्ति नहीं। ऐसा ही समझो कि कोई शास्त्रीय संगीतज्ञ पहले अपना साज बिठाता है। साज बैठ जाए तो संगीत पैदा हो। साज बिठाना ही संगीत नहीं है, लेकिन साज बिना बिठाए भी संगीत पैदा न होगा—भूमिका है। ऐसी ही प्रार्थना है। प्रार्थना यानी साज बिठाना।

परमात्मा की तरफ शब्द के माध्यम से चलने का नाम प्रार्थना है। जब शब्द अनिवार्य नहीं रह जाते हैं, निशब्द फलित होता है; जब हम परमात्मा के साथ चुप हो सकते हैं, मौन हो सकते हैं, जब बोलने की कोई जरूरत नहीं रह जाती; जब श्रद्धा उस पराकाष्ठा को छू लेती है जहां यह सवाल ही नहीं उठता कि हम कुछ कहें—जो कहना है, वह जानता है; जो होना है वह वह जानता है; जो नहीं होना है, वह नहीं हो सकता है; जो नहीं होना चाहिए, वह नहीं होगा—जहां प्रीति ऐसी परम स्थिति को उपलब्ध होती है, वहां भक्ति।

प्रार्थना है फूल जैसी, भक्ति है सुगंध जैसी। प्रार्थना में थोड़ा रूप है, थोड़ा रंग है; आकार है, गुण है; भक्ति निर्गुण है, निराकार है। भक्ति सुवास है मुक्त हो गयी फूल से। लेकिन फूल के बिना कोई सुवास नहीं है।

दोनों की सीमाएं मिलती हैं, एक-दूसरे में प्रवेश करती हैं; कहां प्रार्थना समाप्त हो जाती है, कहां भक्ति शुरू होती है कहना अति कठिन है। रेखा खींची नहीं जा सकती। किस दिन आदमी जवान था और किस दिन बूढ़ा हो गया, कौन रेखा खींचे! किस दिन बच्चा बच्चा था और कब जवान हो गया, कौन रेखा खींचे! कब तक आदमी जीवित था और कब मर गया, कौन रेखा खींचे! सब रेखाएं कृत्रिम हैं, काम-चलाऊ हैं।

काम चलाने के लिए तुमसे कह रहा हूं कि प्रार्थना सशब्द भक्ति है। और भक्ति निशब्द हो गयी प्रार्थना है। जहां सारे शब्द शून्य में लीन हो गए हैं। जहां संगीत भी शांत हो गया। उस परम नीरवता में, उस निबिड़ घने मौन में भक्ति है।

दूसरा प्रश्न: संन्यास की वैज्ञानिक विधि क्या है? विधि की व्याख्या करें। जो पथ मुझे मौन में मिला है, वह श्रेष्ठ है या संन्यास?

संन्यास की कोई वैज्ञानिक व्याख्या नहीं है। संन्यास वैज्ञानिक नहीं है।

संन्यास विज्ञान के पार है। विज्ञान यानी गणित, विज्ञान यानी तर्क, विज्ञान यानी आदमी के सोच-समझ के जो भीतर है। विज्ञान की सीमा पदार्थ पर पूरी हो जाती है। विज्ञान देह से ज्यादा गहरा प्रवेश नहीं कर पाता। विज्ञान की विधि ही स्थूल पर आधारित है। सूक्ष्म विज्ञान की पकड़ में नहीं आता। सूक्ष्म छूट-छूट जाता है। चूंकि सूक्ष्म छूट-छूट जाता है, विज्ञान कहता है सूक्ष्म है ही नहीं। ऐसे ही समझो कि कोई कान से देखने चला—कान से कोई कैसे देखेगा, कान से सुनेगा। फिर कान को ही जिसने आंख समझा है, वह कहेगा, सुनने पर जगत समाप्त हो जाता है; यहां देखने को न कुछ है, न कभी था, न कभी होगा। या जो आंख से सुनने चला, वह भी अज्ञान में भटक जाएगा। आंख देख सकती है, सुन नहीं सकती। रूप देखेगी, रंग देखेगी, लेकिन ध्वनि! ध्वनि आंख के लिए अस्तित्व में ही नहीं होती। ध्वनि की कोई टंकार आंख पर नहीं पड़ती। तो जो आंख से सुनने चला है, वह अगर कहे—कोई संगीत नहीं, कोई ध्वनि नहीं, जगत मौन है, तो कुछ आश्चर्य न होगा।

ऐसी ही अड़चन विधियों के साथ है। विज्ञान की विधि है—तर्क, गणित। जीवन तर्क और गणित से बड़ा है। यहां बहुत कुछ है जो तर्क और गणित की पकड़ में नहीं आता। और सच तो यह है, वह जो तर्क और गणित की पकड़ में नहीं आता, वही मूल्यवान है। कोई पूछे तुम से, प्रेम की क्या वैज्ञानिक व्याख्या है? अब तक कोई कर नहीं पाया। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि प्रेम नहीं होता। इससे यही सिद्ध होता है कि प्रेम और तर्क के रास्ते अलग-अलग-हैं, एक दूसरे को काटते नहीं। प्रेम होता है अतर्क्य, अनिर्वचनीय। उतरता है ऊपर से, घेर लेता है तुम्हें, रूपांतरित कर जाता है, नया कर जाता है। तुम अनुभव भी कर लेते हो, फिर भी कहने में असमर्थ पाते हो कि क्या हुआ है। प्रेमी अवाक होता है, ठगा-ठगा रह जाता है। भरोसा नहीं कर पाता कि जो हुआ है, वह हुआ! लेकिन हुआ है, यह भी तय है, क्योंकि अपने को बदला हुआ पाता है, नया हुआ पाता है।

संन्यास परम का प्रेम है। वह जो आत्यंतिक है, वह जो तर्कातीत है, उसका प्रेम है। संन्यास का अर्थ है, मैं इस बात की घोषणा करता हूं कि अब मैं परम के लिए समर्पित हूं। और अगर परम अतर्क्य है, तो मैं अतर्क्य में जाऊंगा। मैं तर्क को बाधा न बनाऊंगा। और अगर परम बुद्धि के अतीत है, तो में बुद्धि के अतीत उठूंगा। मैं कोई सीमा न मानूंगा। जैसा जीवन है, मैं उस पूरे-पूरे जीवन को जानना चाहूंगा। अगर जीवन विरोधाभासी है, तो मैं कोई शर्त न लगाऊंगा कि विरोधाभास नहीं होना चाहिए। अगर जीवन असंगत है, तो मैं असंगत में छलांग लगाऊंगा।

संन्यास की कोई वैज्ञानिक व्याख्या संभव नहीं है। काम चलाने को कुछ बातें हम कह सकते हैं, लेकिन ध्यान रखना—काम चलाने को। एक व्यक्ति तो होता है विद्यार्थी। विद्यार्थी का अर्थ होता है, जो ज्ञान अर्जित करने चला और एक व्यक्ति होता है शिष्य। शिष्य का अर्थ होता है, जो अस्तित्व अर्जित करने चले, ज्ञान नहीं। ज्ञान छोटी बात है। विद्यार्थी सूचनाएं इकट्ठी करता है। शिष्य गुरु का अस्तित्व पीता है, सत्संग करता है। संन्यास शिष्यत्व की पराकाष्ठा है। जहां शिष्य ऐसा अनुभव करता

है कि अब मेरे अलग होने की कोई जरूरत नहीं है। अब मैं गुरु से एक हो जाऊं। अब इतनी भी दूरी क्यों रखूं! यह मैं, मैं, मैं का स्वर क्या बचाऊं? शिष्य गुरु के सान्निध्य को अनुभव करते-करते उस जगह आ जाता है जहां वह जानता है—अब एक छोटी सी बाधा रह गयी है मैं की, अब इस बाधा को भी गिरा दूं। अब मेरे और गुरु के बीच कोई व्यवधान न रहे। वह घड़ी संन्यास की घड़ी है।

विद्यार्थी सूचना इकट्ठी करता है, शिष्य अस्तित्व इकट्ठा करता है। संन्यासी अस्तित्व में एक हो जाता है, लीन हो जाता है। संन्यास ऐसे है जैसे नदी सागर में गिरती है; ऐसे जब कोई व्यक्ति जब किसी में गिरता है। विद्यार्थी को प्रयोजन नहीं है। उसकी एक सीमा है। वह कहता है, आपकी जानकारियों का मुझे पता चल जाए, मैं इकट्ठी कर लूं और अपने रास्ते पर चला जाऊं। उसका एक स्वार्थ है, वह पूरा हो जाए।

संन्यासी जाने को नहीं है। वह कहता है—आ गया, मुझे मेरा मुकाम मिल गया, अब मुझे कहीं जाना नहीं है। इन दोनों के बीच में शिष्य है, जो थोड़ा-थोड़ा संन्यासी है, थोड़ा-थोड़ा विद्यार्थी है। जो कहता है कि सूचना से ही नहीं होगा, अस्तित्व को भी थोड़ा चखूं। लेकिन अभी अपने को बचाए भी रखता है कि कौन जाने, जरूरत पड़ जाए, तो एकदम अपने को गंवा ही न दूं। मौका आए, अड़चन आए, कठिनाई पड़े तो लौट भी जा सकूं। पुरानी सीढ़ियां तोड़ न दूं, पुरानी नाव तोड़ न दूं, अपने को थोड़ा बचाए रखूं। कभी कोई कठिनाई हो जाएगी तो अपनी सुरक्षा रहेगी।

संन्यासी अपनी सब सुरक्षा भूल जाता है। तोड़ देता है उन सेतुओं को जिनसे आया, तोड़ देता अपने को। मैं के स्वर के विसर्जन का नाम संन्यास है। यह तो उसकी अंतरात्मा है। फिर भी कहता हूं—यह काम-चलाऊ है। लेकिन इससे तुम्हें थोड़ा सा इंगित मिलेगा।

पूछा है—संन्यास की वैज्ञानिक विधि क्या है? संन्यास की विधि कहना ठीक नहीं, संन्यास परम विधि है। संन्यास एक उपाय है अहंकार-मुक्ति का। संन्यास और विधियों में एक विधि नहीं है। जब सब विधियां हार जाती हैं, तब संन्यास है। जहां आदमी जो कर सकता था कर लिया—योग किया, ध्यान किया, तप किया, पूजा की, उपासना की, उपवास किए—जो कर सकता था, सब कर लिया, जो अपने से कर सकता था सब कर लिया। और ऐसा भी नहीं है कि उनसे लाभ नहीं हुआ, खूब लाभ भी हुए, मगर तृप्ति नहीं हुई। मिला भी, नहीं मिला ऐसा नहीं। जो टटोलेगा, खोजेगा, चलेगा, पाएगा, लेकिन इतना न मिला कि यह खोज समाप्त हो जाती।

तब एक दिन सारी विधियों के उपयोग करने के बाद यह समझ में आना शुरू होता है कि एक अड़चनन है। मैं अड़चन हूं, जिसके कारण सभी विधियां अधूरी रह जाती हैं। ध्यान तो करता हूं, लेकिन मैं ध्यान करता हूं। और मैं बाधा बन जाता है। तप तो करता हूं, लेकिन मैं तप करता हूं, और मैं तप की सारी की सारी गुणवत्ता बदल देता है। अमृत तो खोजता हूं, लेकिन मैं के पात्र में खोजता हूं, और मैं जहर है। अमृत की बूंद पड़ भी नहीं पाती इस पात्र में कि जहर हो जाती है। जिस दिन बहुत विधियां करके यह समझ में आता है संन्यास निर्विधि है, उस दिन व्यक्ति कहता

है—अब इस मैं को कहां टांगू? इस मैं को कैसे गिराऊं? तुम अपने से गिराओ तो अड़चन है। अड़चन यह है कि वह मैं ही गिराने वाला भी होगा।

इसे समझना, यह थोड़ा सूक्ष्म है।

मैं को अपने से गिराना ऐसे ही है, जैसे कोई अपने जूते के बंदों को पकड़कर अपने को उठाने की कोशिश करे। या जैसे कभी सर्दी की सुबह में तुम ने धूप लेते कुत्ते को देखा हो, अपनी पूंछ को पकड़ने की कोशिश करे। बैठा देखता है कि पूंछ यह रही, पास ही पड़ी है, इतने पास कि झपट्टा मार दे। लेकिन जब झपट्टा मारता है, तो पूंछ भी छलांग लगा जाती है। तब तो कुत्ता भी और भी उद्विग्न हो जाता है, और भी तीव्रता से भर जाता है। यह चुनौती स्वीकार करने योग्य मालूम होती है, और झपटने लगता है। जितना झपटता है, उतना ही पगलाता है। पूंछ पकड़ी नहीं जा सकती ऐसे।

तुम अपने अहंकार को अपने से न गिरा सकोगे। गिराने वाला कौन? गिराने वाले में ही अहंकार छिप जाएगा। अहंकार की यही सूक्ष्म गति है। अहंकार कहने लगेगा, देखो! मैं कितना निर-अहंकारी हो गया हूं! देखो, मेरी जैसी विनम्रता किसकी! देखो, मैं चरणों की धूल हो गया—सबके चरणों की धूल! लेकिन मैं खड़ा है और रस ले रहा है। कभी लेता था रस—मेरे पास इतना धन है, मेरा इतना नाम है, मेरा इतना यश है। अब रस लेता है कि देखो मेरी विनम्रता।

चीन में एक पुरानी कहानी है। एक ताओवादी संत दूर जंगल में अकेला रहता था। कोई यात्री निकलते थे जंगल से। संत को वृक्ष के नीचे बैठे देखकर वे बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने और भी संत देखे थे, लेकिन इतने एकांत में बैठा हुआ संत! उन्होंने संत देखे थे जो शिष्यों की तलाश करते रहते हैं, और यह आदमी सबसे भाग आया है। इसे शिष्यों से कुछ लेना-देना नहीं है। इसे भीड़-भाड़ से कोई संबंध नहीं है। वे चरणों में झुके और उन्होंने कहा—संत आप हैं। और संतों को तो हमने बाजार में भागते देखा है, शिष्यों की भीड़ इकट्ठी करते देखा है, संत आप हैं। संत ने आंखें खोलीं और कहा कि तुम ठीक कहते हो, मेरा एक भी शिष्य नहीं है।

क्या फर्क पड़ा? कोई कहता है—मेरे लाख शिष्य हैं, और कोई कहता है—मेरा एक भी शिष्य नहीं है। कहां फर्क है? कहीं फर्क नहीं है। मैं खड़ा है। संत की आंखों में वही चमक आ गयी जो अहंकार की चमक है। संत यह कह रहा है—मुझे देखो, और संत कहां हैं; संत हूं तो मैं हूं, और तो सब धोखा-ढकोसला है। सब मिथ्या हैं, सत्य मैं हूं।

अहंकार और क्या है? स्वयं से गिराना मुश्किल है। संन्यास इतना ही अर्थ होता है—कोई बहाना ले लें अहंकार को गिराने का। मैं तुमसे कहता हूं कि लाओ, मुझे दे दो। अहंकार कुछ है नहीं कि तुम मुझे दे दोगे, अहंकार तो छाया है। ऐसा भी कुछ नहीं है कि तुम्हारा अहंकार मैं ले लूंगा तो मैं किसी अड़चन में पड़ जाऊंगा। अहंकार तो कुछ है ही नहीं, सिर्फ भ्रांति है। मैं तुमसे कहता हूं—चलो, मुझे दे दो। तुम भ्रांति से भरे हो, मैं कहता हूं तुम्हारी भ्रांति मुझे दे दो, मैं सम्हाल लूंगा; तुम

निश्चिंत हो जाओ। यह तो सिर्फ निमित्त है। गुरु सिर्फ निमित्त है, जहां अहंकार को चढ़ाया जा सकता है—और सरलता से, बिना चेष्टा के।

संन्यास लेने का अर्थ है, अहंकार देना। तुम उधर से अहंकार दो, मैं इधर से तुम्हें संन्यास देता हूं। तुम उधर से झुको, मैं इधर से अपने को तुम में भरूं। तुम उधर खाली हो जाओ, तो मेरे और तुम्हारे बीच एक संबंध बनेगा जो न विद्यार्थी का है, न जो केवल शिष्य का है। एक ऐसा संबंध बनेगा जिसमें तुम मुझसे अनन्य हो गए, तुम मुझसे अभिन्न हो गए। यह हिम्मत वही कर सकता है जो पीछे लौटने की जरा भी कामना न रखता हो। यह हिम्मत वही कर सकता है जिसे अतीत का थोड़ा भी मोह न हो। यह हिम्मत वही कर सकता है जो जोखम उठाने में साहसी है।

संन्यास जोखम है; दुस्साहस है। यह परम विधि है। यह सारी विधियों का अंतिम चरण है। जब और विधियां और काम कर जाती हैं लेकिन अहंकार को नहीं छुड़ा पातीं, तब संन्यास है।

संन्यास शब्द का अर्थ होता है—सम्यक-न्यास। ठीक-ठीक छुटकारा। ठीक-ठीक मुक्ति। कर ली सारी चेष्टाएं, अब हार गए, थक गए। उस हारी-थकी दशा में चढ़ा दिया जो भी था। निर्भार हो रहे। बड़ा कठिन है आदमी को निर्भार होना। अहंकार हमारे भीतर ऐसा प्रबल है कि हम उसी अहंकार के कारण दूसरों में भी अहंकार देखते हैं। जहां नहीं है, वहां भी हमें अहंकार दिखायी पड़ता है। लोगों की तो बात ही छोड़ दो, हम परमात्मा में भी किसी तरह का अहंकार खोजते रहते हैं।

कल मैं एक गीत पढ़ता था—

रात में क्या जाने
कोई गिनता है कि नहीं गिनता
आसमान के तारों को यों
कि कोई रह तो नहीं गया आने से
प्रभात में क्या जाने
कोई सुनता है कि नहीं सुनता यों
कि रह तो नहीं गया कोई पंछी गाने से
दोपहर को कोई
देखता है कि नहीं देखता
वन-भर पर दौड़ा कर आंख
कि पानी सबने पी लिया है कि नहीं
और शाम को यह
कि जितना जिसे दिया गया था
उतना उसने जी लिया है कि नहीं

ऐसा कोई परमात्मा कहीं बैठा हुआ नहीं। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, लेकिन हम व्यक्ति हैं, तो हम परमात्मा तक को व्यक्ति के ही आकार में सोचते हैं। हम सोचते हैं, परमात्मा भी कहता होगा—मैं। मैं चलाऊं तारों को, मैं जगाऊं तारों

को, मैं सुलाऊं तारों को, मैं उठाऊं पक्षियों को, मैं खोलूं पखड़ियों को फूलों की, मैं जाऊं और देखूं, मैं रक्षा करूं, नियोजन करूं, संयोजन करूं—ऐसा कोई मैं नहीं है वहां। लेकिन तुम्हारे भीतर तुमने मान रखा है कि कोई मैं है—श्वास लूं, यह करूं, वह करूं। तुम सोचते हो, ऐसा ही विराट होगा परमात्मा का अहंकार।

जैसे-जैसे तुम अनुभव करोगे कि तुम्हारे होने की कोई जरूरत नहीं और सब चलता है, यही परम अनुभव है। जिस दिन तुम यह पाते हो कि तुम सांस न लो, तो भी चलती है—सब चलता है, कहीं कोई अवरोध नहीं आता; सच तो यह है, पहले से बेहतर चलता है, क्योंकि पहले मैं के कारण थोड़ी अड़चनें आती थीं, अब वे भी नहीं आतीं। मैं के कारण कभी विषाद होता था, कभी विजय के कारण उन्माद होता था, कभी हार के कारण विषाद होता था, अब वे भी नहीं होते। अब न कोई उन्माद है, न कोई विषाद है। अब सब शांत है। अब सब गया ऊहापोह, गयी सब आपाधापी। अब चीजें बड़ी शांति से बहती हैं, जैसे झरने बहते हैं, जैसे वृक्ष बढ़ते हैं, जैसे किसी मां के पेट में बच्चा बड़ा होता है, जैसे जमीन में कोई बीज टूटता है, ऐसे सब चुपचाप होता रहता है, किसी के किए कुछ भी नहीं।

क्या तुम सोचते हो बीज जब टूटता है जमीन में तो अपने को तोड़ता है, कि कहता है कि अब मैं तोड़ूं, कि देखो अब वसंत के दिन आ गए, कि अब ऋतु अनुकूल हुई, कि अब यह समय है, कि यह तिथि आ गयी, अब मुझे टूटना ही होगा। क्या सुबह उठकर पक्षी सोचते हैं कि अब सुबह हो गयी, अब उठें भी और अब गीत गाएं। क्योंकि यही हमारे पुरखे भी करते रहे, यही हम भी करें, यही हमारी नियति है। क्या तुम सोचते हो सांझ होने पर तारे विचार करते हैं कि अब हटा दें अपना घूंघट और प्रकट हो जाएं, दिन गया, सूरज अस्त हुआ। कहीं कुछ नहीं कोई सोच रहा है। सब हो रहा है चुपचाप। कर्ता कहीं भी नहीं है और विराट कृत्य चल रहा है। यही रहस्य है, यही लीला है। लीलाधर कोई भी नहीं है।

संन्यास उसी की दिशा में एक अनुभव है। संन्यास उसी की दिशा में एक द्वार है कि तुम छोड़ो और चीजों को अपने से होने दो।

फिर तुमने पूछा : कि जो पथ मुझे मौन में मिला है, वह श्रेष्ठ है या संन्यास? मौन में यदि पथ मिला हो तो कहां ले जाएगा, संन्यास में ही ले जाएगा। मौन में अगर समझ जगी हो, तो समर्पण में ही ले जाएगी। मौन में अगर अहंकार मिला हो, तो संन्यास में बाधा पड़ेगी। तो तुम्हारे प्रश्न में बहुत ज्यादा अर्थ नहीं है कि श्रेष्ठ कौन है? यह तो ऐसे ही है कि जैसे कोई कहे कि अगर एकांत में फूल खिला हो, तो फिर सुगंध श्रेष्ठ है या फूल? फूल खिला हो, तो सुगंध ही प्रकट होगी और क्या प्रकट होगा! एकांत में मौन फला हो तो अहंकार की मृत्यु होगी और क्या होगा! और संन्यास अहंकार की मृत्यु का एक प्रयोग है। दोनों में कुछ भेद नहीं है।

सुगंध में
स्वर होता है कि नहीं होता
प्यार में

डर होता है कि नहीं होता
पुरानी पड़ चुकी छवियां
मन में नाचती हैं कि नहीं नाचती
डूबकर किरनें
छाया को बांचती हैं कि नहीं बांचतीं
फूल और बीज एक हैं या नहीं
पूनो और तीज एक हैं या नहीं
या सब चीजें एक हैं
उनके सिर्फ अलग-अलग रुख हैं
जैसे हमारे इस ने
सुख और दुख हैं
कहां भेद हैं?—
फूल और बीज एक हैं या नहीं
पूनो और तीज एक हैं या नहीं

वह जो तीज है, वही तो पूनो बनेगी। और जो पूनो है, वही तो तीज बनती है।

तुम्हें अगर एकांत में कोई मार्ग मिला है, पथ सूझा है, तो कहा ले जाएगा? एकांत में मिला हुआ पथ, मौन में दिखा हुआ मार्ग, अंततः ले जाएगा समर्पण में। समर्पण संन्यास है।

मैं तो निमित्त हूं; यहां संन्यास घटता है या नहीं घटता, यह सवाल नहीं है, कहीं न कहीं घटेगा। यहीं घटे, ऐसा कोई आग्रह नहीं है। क्यों यहीं घटे? इतनी विराट पृथ्वी है, कहीं भी घट सकता है। तो ध्यान रखना, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम्हारा संन्यास यहीं घटना चाहिए। तुम्हारा फूल यहीं सुगंध को बिखेरे, यह भी कोई बात हुई! मगर फूल खिला है तो सुगंध बिखरेगी। संन्यास फलित होगा। कपड़े बदलें कि न बदलें...। यह बड़ा सवाल नहीं है, कि मेरे पास घटे कि किसी और के पास घटे, कि अत्यंत एकांत में घटे, यह भी बात नहीं है। लेकिन संन्यास घटेगा अगर मार्ग मिल गया है।

लेकिन तुम्हारा प्रश्न ही बनाता है कि मार्ग मिला नहीं होगा। तुमने मान लिया है कि मिल गया है। मिल ही गया हो तो पूछो क्यों? पूछने को क्या है फिर और? मानते होओगे कि मिल गया है—ऐसा कैसे हो सकता है कि मुझे और न मिले! वही मैं पीछे खड़ा है। वही मैं झुकने से रोकता है। गौर से देख लेना, तुम्हारी मर्जी। उस मैं के साथ तुम रहना चाहो तो मैं कौन हूं जो बाधा दूं। उस मैं के साथ तुम्हें रस आता हो, तो मेरे सारे आशीर्वाद तुम्हें हैं, तुम रस लो। लेकिन अगर उस मैं में कांटे चुभते हों, उदासी पकड़ती हो, विषाद गहन होता हो; उस मैं के कारण जीवन उथला-उथला रह जाता हो, गहराई न पाता हो, तो यहां भी एक द्वार हमने खोला है, उस द्वार से तुम प्रवेश पा सकते हो प्रभु के मंदिर में। और भी बहुत द्वार हैं, इसी द्वार का दावा नहीं है। लेकिन तुम कहीं न कहीं से प्रवेश पाओ जरूर। मैं से थको, समर्पण में डूबो।

तीसरा प्रश्न: क्या यह संभव है कि मैं बगैर संन्यास लिए आपका शिष्य रह सकूं और जिस मौन-साधना का जन्म मेरे भीतर हुआ है, उसे आगे बढ़ाता जाऊं? है तो सब आपका ही दिया हुआ, पर यह मेरे अंतस से जानी हुई प्रणाली है, और मुझे लगता है इसी का अनुगमन करने में ज्यादा फायदा है। मैं यह भी सोचता हूं कि आपकी साधना में एक शाखा ऐसी भी रहे जिसमें बिना संन्यास वगैरह लिए भी उस सत्ता तक पहुंचा जाए। कृपाकर बताएं कि मैं कहां तक सही सोचता हूं?

जब तक तुम सोचते हो, गलत ही सोचोगे। सोचना मात्र गलत है। जब तक 'तुम' सोचोगे, तब तक गलत सोचोगे क्योंकि मैं की अवधारणा ही गलत है।

तुम जोखम भी नहीं लेना चाहते, तुम पाने को भी आतुर हो, और तुम कोई खतरा नहीं उठाना चाहते। तुम कहते हो—क्या यह संभव है कि मैं बगैर संन्यास लिए आपका शिष्य रह सकूं? मेरी तरफ से कोई अड़चन नहीं है, अड़चनें तुम्हारी तरफ से आएंगी। मेरी तरफ से क्या अड़चन है, तुम मजे से शिष्य रहो, विद्यार्थी रहो, कोई भी न रहो, मेरी तरफ से कोई अड़चन नहीं है। मेरी तरफ से तुम मुक्त हो। अड़चन तुम्हारी तरफ से आएगी—तुम बिना संन्यासी हुए शिष्य रहना चाहते हो, अड़चन शुरू हो गयी। इसका मतलब यह हुआ कि मेरे बिना पास आए पास आना चाहते हो। कैसे यह होगा? पास आओगे तो संन्यास फलित होगा। संन्यास से बचना है तो दूर-दूर रहना होगा, थोड़े फासले पर बैठना होगा। थोड़ी गुंजाइश रखनी होगी। कहीं ज्यादा पास आ जाओ और मेरे रंग में रंग जाओ, यह डर तो बना ही रहेगा न! मेरी बात भी सुनोगे तो भी दूर खड़े होकर सुनोगे, कि कितनी लेनी और कितनी नहीं लेनी। चुनाव करने वाले तुम ही रहोगे। और काश! तुम्हें पता होता कि सत्य क्या है तब तो मेरी बात भी सुनने की क्या जरूरत थी! तुम्हें सत्य का कुछ पता नहीं। तुम चुनाव करोगे, तुम्हारे असत्य ही उस चुनाव में आधारभूत होंगे। वही तुम्हारी तराजू होगी, उसी पर तुम तौलोगे; और सदा तुम डरे भी रहोगे कि कहीं ज्यादा पास न आ जाऊं, कहीं इन और दूसरे गैरिक वस्त्रधारियों की तरह मैं भी सम्मोहित न हो जाऊं—मुझे तो संन्यासी नहीं होना है, मुझे तो सिर्फ शिष्य रहना है।

शिष्य का मतलब समझते हो?

शिष्य का मतलब होता है—जो सीखने के लिए परिपूर्ण रूप से तैयार है।परिपूर्ण रूप से तैयार है। फिर संन्यास घटे कि मौत घटे, फिर शर्त नहीं बांधता। वह कहता है—जब सीखने ही चले, तो कोई शर्त न बांधेंगे। फिर जो हो। अगर सीखने के पहले ही निर्णय कर लिया है कि इतना ही सीखेंगे, इससे आगे कदम न बढ़ाएंगे, तो तुम अपने अतीत से छुटकारा कैसे पाओगे? तुम अपने व्यतीत से मुक्त कैसे होओगे? तो तुम्हारा अतीत तुम्हें अवरुद्ध रखेगा।

मेरी तरफ से कोई अड़चन नहीं है। मैं किसी को भी नहीं कह रहा हूं कि तुम संन्यासी हो जाओ—जल्दी ही मैं लोगों को समझाने भी लगूंगा कि अब मत होना। क्योंकि आखिर मुझे भी कितनी झंझट लेनी है, उसकी सीमा है। जल्दी ही मैं लोगों को

हताश भी करने लगूंगा कि नहीं, कोई जरूरत नहीं है संन्यास की। मैं किसी को कह भी नहीं रहा हूं कि तुम संन्यास ले लो। और अगर कभी किसी को कहता हूं तो उसी को कहता हूं जिसे मैं पाता हूं जो कि ले ही चुका है; जो सिर्फ प्रतीक्षा कर रहा है—प्रतीक्षा भी इसलिए कर रहा है कि संकोच लगता है, कैसे कहूं कि मुझे संन्यास दे दें—उस को ही मैं कहता हूं। मांगूं कैसे? पता नहीं पात्र हूं या अपात्र हूं? ऐसा जब मैं कोई व्यक्ति पाता हूं, जो यह सोचता है कि मांगू कैसे, पता नहीं अपात्र होऊं—यह दुविधा मेरे सामने नहीं खड़ी करना चाहता कि मुझे न कहना पड़े, तो चुपचाप प्रतीक्षा करता है—जब मैं किसी को ऐसे चुपचाप प्रतीक्षा करते देखता हूं, तभी उसे पुकार कर कहता हूं कि तू संन्यास ले। अन्यथा मैं नहीं कहता।

यह प्रश्न पूछा है विजय ने। विजय परसों दर्शन को आया था। बार-बार माला की तरफ देखता था, मगर मैंने नहीं कहा। नहीं कहा इसीलिए कि यह सब भाव भीतर बैठे हैं। और विजय मुझ से परिचित है, कम से कम बीस साल से परिचित है, लेकिन उसके भीतर एक तरह की अस्मिता है, जिसका मुझे पता है। कठोर अस्मिता है, वही बाधा है। वही अस्मिता नए-नए रूप लेती है। अब वही अस्मिता कहती है कि क्या आपके पास शिष्य बनकर नहीं रह सकता? संन्यास लेना क्या आवश्यक है? मेरी तरफ से कोई भी बात आवश्यक नहीं है। तुम्हें जितने देर तक चलना हो, चलो। शिष्य रहना है शिष्य रहो, विद्यार्थी रहना हो विद्यार्थी रहो; दर्शक की भांति आना है, दर्शक की भांति आओ, तुम जितना पी सको, उतना पीओ। मेरी—तरफ से बाधा नहीं है कि अगर तुम आगे बढ़ना चाहो तो, मेरी तरफ से उसमें भी बाधा नहीं है।

तुम पूछते हो : कि जिस मौन-साधना का जन्म मेरे भीतर हुआ है, उसे आगे बढ़ाता जाऊं? है तो सब आपका ही दिया हुआ...। यह भी तुम बड़ी मुश्किल से कह रहे होओगे। यह भी मन मारकर कहा होगा कि है तो सब आपका ही दिया हुआ। यह भी तुम्हें कहना पड़ा है। नहीं तो प्रसन्नता तुम्हें यही कहने में है कि मेरे भीतर जिस मौन-साधना का जन्म हुआ है, उसे मैं आगे बढ़ाता जाऊं? क्योंकि वह मेरे अंतस से जागी हुई प्रणाली है। और मुझे लगता है कि इसीका अनुगमन करने में ज्यादा फायदा है। जब तुम जानते ही हो फायदा किस बात में है, तो चुपचाप अपने फायदे की बात को माने चलो। जिस दिन फायदा न दिखे, उस दिन पूछना, अभी वक्त नहीं आया। अभी पूछने का क्षण नहीं आया। जिस दिन हार जाओ, उस दिन पूछना।

पूछते क्यों हो अगर फायदा पता है? कहीं संदेह होगा। कहीं संदेह होगा कि फायदा हो रहा है कि नहीं हो रहा है? कि मैं माने जा रहा हूं? अक्सर ऐसा हो जाता है। एक वृद्ध सज्जन कुछ दिन पहले आए, कहा कि तीस साल से ध्यान कर रहा हूं—मंत्र-जप करता हूं! मैंने पूछा, कुछ हुआ? कहा—हुआ क्यों नहीं! मगर चेहरे पर मुझे दूसरा भाव दिखायी पड़ रहा है कि कुछ नहीं हुआ, वह कहते हैं, हुआ क्यों नहीं! तो मैंने कहा—सच कह रहे हैं, थोड़ा सोचकर कहें; आंख बंद कर लें, एक क्षण सोच लें—कुछ हुआ? सोचा होगा—एकदम मूढ़ नहीं थे, नहीं तो जिद बांधकर बैठ जाते कि जरूर हुआ है—आंख खोली और कहा, आपने ठीक पकड़ा, हुआ तो

कुछ भी नहीं है। तो फिर मैंने कहा, आप इतनी जल्दी कह क्यों दिए कि हुआ क्यों नहीं! कहा—वह भी मुश्किल मालूम होता है। तीस साल से मंत्र-जाप करो और कुछ न हो तो कैसी अपात्रता मालूम होती है। तो कैसा पापी हूं मैं। फिर तीस साल बेकार गए? तो तीस साल का अहंकार खंडित होता है।

तो अक्सर लोग, जब कुछ भी नहीं होता तो भी किए चले जाते हैं, क्योंकि अब कैसे छोड़ें। तीस साल नियोजित कर दिए; किसी ने पचास साल किसी विधि में लगा दिए, अब कैसे छोड़ें? अभी एक वृद्ध सज्जन सी. एस. लेविश लंदन से आए, वह गुर्जिएफ के शिष्य, कोई पचास साल...अस्सी साल उनकी उम्र...पचास साल गुर्जिएफ की धारा के अनुसार चले। मुझे वहां से पत्र लिखते थे कि आना है, दर्शन करना है। गुर्जिएफ के साथ तो नहीं हो पाया, चूक गया, आपको नहीं चूकना है। यहां आए लेकिन वह पचास साल का जो गुर्जिएफ की प्रणाली के साथ चलने का अहंकार है, वह भारी था। कहने लगे कि अब इस उम्र में क्या संन्यास लेना, अस्सी साल का हो गया; अब इस उम्र में क्या नाव बदलनी! मैंने कहा पुरानी नाव ले जाती हो तो मैं भी नहीं कहूंगा कि नाव बदलो, मेरी नाव में वैसे ही भीड़ है; तुम पुरानी नाव से जा सकते हो, इस नाव में वैसे भी गुंजाइश नहीं है, नाव को रोज बड़ा करने की कोशिश चल रही है—मगर अगर पुरानी नाव कहीं न ले जाती हो तो एक दफा सोच लो। वह इतने घबड़ा गए कि भाग गए। यह बात ही सोचकर घबड़ा गए कि पुरानी नाव से न हुआ हो! फिर उन्होंने आश्रम में दूसरे दिन प्रवेश ही नहीं किया। आए थे यहां दो-तीन महीने रुकने को। सिर्फ एक चिट्ठी लिखकर छोड़ गए कि मैं जाता हूं। वह पचास साल का भाव, कि पचास साल मैंने एक साधना में लगाए। आदमी का अहंकार न मालूम किस-किस तरकीबों से अपने को भरता है।

मार्ग मिला हो, मजे से चलो। लाभ हो रहा हो, छोड़ना ही मत—फिर क्या मेरे साथ और हानि उठानी है! जब लाभ हो रहा है, फायदा हो रहा है, और तुम्हें पता है कि फायदा किस बात में होगा। तुम निश्चिंतमना उसी मार्ग पर चलते रहो।

और मुझे यह भी सलाह दी है कि मैं यह भी सोचता हूं कि आपको साधना में एक शाखा ऐसी भी रहे जिसमें बिना संन्यास वगैरह लिए भी उस सत्ता तक पहुंचा जाए।

क्यों? जिनकी इतनी हिम्मत नहीं जो मुझसे पूरे जुड़ सकें, वे कहीं और ही रहें। यहां भीड़ उनकी क्यों मचाना? यहां मुझे उन पर काम करने दो। जिन्होंने साहस किया है अपने को पूरा छोड़ने का। इन कमजोरों को यहां क्यों इकट्ठा करना? इन अपाहिजों को यहां क्यों इकट्ठा करना? लंगड़े-लूलों को क्यों इकट्ठा करना? जिन लोगों ने समर्पण किया है, उनको पहुंचा पाऊं उनकी मंजिल तक, सारी शक्ति उन्हीं पर लगा देनी है। इसलिए चुनूंगा, जल्दी ही उनको चुनता रहूंगा, धीरे-धीरे उनको छांट दूंगा बिलकुल, जिनसे मुझे लगे कि जिनका साथ कुछ अर्थ का नहीं—जो साथ हैं ही नहीं। जो नाहक ही भीड़-भाड़ किए है। ताकि मेरी सारी शक्ति और मेरी सारी सुविधा उनके लिए उपलब्ध हो सके जिन्होंने जोखम उठायी है। उनके प्रति मेरा कुछ दायित्व

है। उनने जोखम उठायी है, उनके प्रति मेरा कुछ कर्तव्य है। और जिनने कुछ दांव पर नहीं लगाया है, उनसे मेरा क्या लेना-देना? तुम उतनी ही मात्रा में पाओगे, जितना तुम दांव पर लगाओगे। उससे ज्यादा नहीं मिल सकता है। उससे ज्यादा मिलना संभव ही नहीं है।

आज कुछ नहीं दिया मुझे पूर्व ने
यों रोज कितना देता था।
छंद-छंद हवा के झोंके
प्रकाश गान गंध
आज उसने मुझे कुछ नहीं दिया
शायद
मेरे भीतर नहीं उभरा
मेरा सूरज
खोले नहीं मेरे कमल ने
अपने दल
रात बीत जाने पर!

सूरज तभी दे सकता है जब तुम अपने कमल-दल खोलो। तुम जब अपना हृदय-कमल खोलो। तुम अपना हृदय-कमल बंद रखो, फिर शिकायत सूरज की मत करना, फिर यह मत कहना कि सूरज ने मुझे कुछ नहीं दिया। तुम लेने के लिए झोली तो फैलाओ।

संन्यास वही झोली फैलाना है। तुम कहते हो—मेरी झोली खाली है; तुम कहते हो—छुपाऊंगा नहीं, सच-सच कहे देता हूं, मेरी झोली खाली, यह मेरे हाथ खाली, यह मेरा भिक्षापात्र है, मुझे भर दो। संन्यास का इतना अर्थ है कि मैं निवेदन करता हूं कि मैं खाली रह गया हूं, और मैं खाली नहीं रह जाना चाहता, मैं इस जीवन से भरकर विदा होना चाहता हूं। संन्यास का अर्थ है कि मैं कहता हूं कि मैं अज्ञानी हूं, मुझे किरण चाहिए। लोग हैं जो कहना चाहते हैं कि जानता तो मैं भी हूं लेकिन थोड़ा-बहुत आप से भी मिल जाए तो कोई हर्जा नहीं, उस को भी सम्हाल लूंगा, उस को भी रख लूंगा। ऐसे तो मैंने पा ही लिया है, कुछ आप से भी मिल जाए तो चलो और, थोड़े से ज्यादा भला।

जिन्हें पता है, उन्हें मुझ से कुछ भी नहीं मिलेगा। जो ज्ञानी हैं, उन्हें मेरे पास से एक किरण भी नहीं मिलेगी। इसलिए नहीं कि मैं उन्हें देने में कोई कंजूसी करूंगा, नहीं मिल सकती क्योंकि वे अपने कमल-हृदय को ही नहीं खोलेंगे।

संन्यास निमंत्रण है अपने को मिटाने का।

विराट किसी
तरल रूप-सिंधु की लहर
आत्मा के मेरे तट
तोड़ रही है

तकलीफ हो रही है मगर
आश्वास मिल रहा है एक
कि लहर
रूप से अरूप को
जोड़ रही है

पीड़ा तो होती है। जब तुम टूटोगे तो दुख भी होगा। हृदय क्षार-क्षार होगा, खंड-खंड होगा। टूटोगे तो कोई सुख से कोई नहीं टूटता, यह बात सच है। टूटो तो पीड़ा होती ही है। लेकिन इतना ही आश्वासन बना रहे—

तकलीफ हो रही है मगर
आश्वास मिल रहा है एक
कि लहर
रूप से अरूप को
जोड़ रही है

आने दो मुझे एक लहर की तरह, खोलो अपना हृदय, तो मैं तुम्हें तोड़ूं। तोड़ूं तो तुम्हें बनाऊं। मारूं तो तुम्हें जिलाऊं। सूली पर लटको तो तुम्हारा पुनरुज्जीवन है। संन्यास सूली है और पुनरुज्जीवन।

चौथा प्रश्न : यह संसार क्या है, यह माया क्या है?

स्वप्न है अंधेरे से भरे मन का। स्वप्न है सोयी हुई चेतना का। रोज रात तुम सपने देखते हो न, ऐसा ही यह भी स्वप्न है खुली आंख देखा गया। भेद जरा भी नहीं है। रात सपने में भी तो तुम इसी भ्रांति में पड़ जाते हो कि जो देख रहे हो वह सच है। वही भ्रांति दिन में भी दोहराते हो। भ्रांति एक ही है। रात सपने को सच मान लेते हो, दिन संसार को सच मान लेते हो। रात दिन का संसार बिलकुल भूल जाता है; और दिन में रात का सपना बिलकुल भूल जाता है। और तुमने हजारों सपने देखे और हजारों सुबह तुमने देखीं और हर सुबह जागकर पाया सपने झूठे थे। और फिर रात आयी और फिर सपने में खो गए; फिर भी याद न की। सपने में कभी याद आती है तुम्हें कि जो देख रहा हूं, यह झूठ है, यह बहुत बार देख चुका? नींद तुम्हारी हद की है! कितनी बार तुमने जाना कि सपना झूठ है, मगर यह संपदा तुम्हारे भीतर टिकती नहीं। यह छोटा सा बोध भी तुम्हारे भीतर निर्मित नहीं होता। इसी बोध को तुम्हें नींद में ले जाना पड़ेगा। यह नींद में जाए तो फिर जागरण में भी आएगा।

गुर्जिएफ अपने शिष्यों को कहता था कि पहला काम है नींद में जो सपना है उस को सपना जानना। वह यह नहीं कहता था कि संसार को सपना जानो, क्योंकि यह बड़ा काम है, यह संसार तो बहुत बड़ा है। तुम्हारा छोटा सा एक संसार है रात सपने का—बिलकुल निजी, वैयक्तिक। वहां तुम अकेले होते हो, कोई बहुत बड़ा भी नहीं होता, छोटा सा घेरा होता है—आंगन—यह तो बड़ा आकाश है। फिर इसमें एक

खतरा और है, कि इसमें तुम्हीं नहीं देखने वाले हो, दूसरे भी देख रहे हैं। और दूसरों की गवाही भी मिल रही है कि सच है। रात तुम जो फूल देखते हो वह तो तुम अकेले देखते हो, कोई गवाह नहीं होता, बिना गवाह के भी तुम सच मानते हो, दिन में तो बहुत गवाह हैं, फूल खिला है लाखों गवाह हैं; हो सकता है तुम गलत हो, इतने लोग कैसे गलत होंगे! इसलिए दिन पर तो भरोसा टूट नहीं सकता।

इस देश में संसार को माया कहने की पुरानी परंपरा रही है। लेकिन गुर्जिएफ ने ठीक विधि खोजी थी—इसको तोड़ना कैसे? सिर्फ कहने से क्या होगा? वेदांती कहते रहते हैं—सब संसार माया है, मगर कहने से क्या होता है? उस वेदांती के जीवन में भी कहीं दिखायी नहीं पड़ता कि संसार माया है। वह भी ऐसे ही जीता है जैसा जिसको तुम कहते हो अज्ञानी, कोई भेद नहीं है। जरा भी भेद नहीं है।

मेरे घर एक वेदांती संन्यासी मेहमान हुए। कहते—सब माया है। अपनी छोटी सी संदूक में शंकर जी की एक पिंडी लिए हुए थे। मैं जिनके पड़ोस में रहता था उनके बच्चे वहां मेरे खास खेलने आते थे। वे बच्चे खेल रहे थे, मैंने उनको वह शंकर जी की पिंडी दे दी। मैंने कहा, खेलो; मजा करो, ले जाओ। वह स्वामी तो बहुत नाराज हुए। एकदम पिंडी छीन ली और कहा, आप क्या कहते हैं? यह शंकर जी की पिंडी, आपको पता नहीं! अपवित्र करवा दी! मैंने कहा, संसार माया है और पिंडी सच? इतना विराट संसार, ब्रह्मांड माया है और यह छोटे से शंकर जी सच! छोड़ो भी, जाने दो, सब माया है। कोई खास चीज नहीं ले जा रहे हैं। पत्थर का टुकड़ा है, कहीं से उठा लिया है।

लेकिन हिम्मत न जुड़ा सके वे कि पिंडी को दे देते। जल्दी से संदूकची में सम्हालकर रख ली। तो मैंने कहा, अब तुम यह माया इत्यादि की बकवास बंद कर दो। तुम्हारी पिंडी सच है और किसी ने अपनी तिजोड़ी में धन इकट्ठा कर रखा है, वह माया है। फर्क क्या है? भेद क्या है?

स्वयं आद्य शंकराचार्य के संबंध में यह कहानी है कि काशी के घाट पर उतरते थे, सुबह स्नान करके कि एक शूद्र पास से गुजर गया—गुजरा ही नहीं, उनको छूता गुजर गया। बहुत नाराज हो गए। एकदम चिल्लाए कि तुझे इतनी भी समझ नहीं है, शूद्र होकर और होश नहीं रखता, मैं अभी-अभी नहाकर आया, मुझे अपवित्र कर दिया। उस शूद्र ने कहा—महाराज, आपके ज्ञान की चर्चा सुनी, उसी भ्रांति में मैं आ गया। मैंने सोचा जब सब माया है तो कौन शूद्र, कौन ब्राह्मण? कैसा शूद्र, कैसा ब्राह्मण, जब सब सपना है? किस ने किस को छुआ, जब छूना ही सपना है?

फिर मैं यह पूछता हूं कि आपकी देह अपवित्र हो गयी कि आपकी आत्मा अपवित्र हो गयी? क्योंकि देह तो अपवित्र है, ऐसा मैंने आपके वचनों में पढ़ा कि देह तो अपवित्र है ही। तो जो अपवित्र है, वह तो मेरे छूने से अपवित्र नहीं हो जाएगी। यह भी देह है, वह भी देह है, अपवित्र ने अपवित्र को छुआ, इसमें क्या फर्क पड़ गया? और आत्मा आपके भाषणों में मैंने सुना कि पवित्र है—शुद्ध-बुद्ध, सत-चित-आनंद। तो मेरी आत्मा ने अगर आपकी आत्मा को छुआ तो भी कोई

अड़चन नहीं होनी चाहिए, क्योंकि दोनों ही शुद्ध-बुद्ध, मिल गए, आनंद ही आनंद है, आप इतने नाराज क्यों होते हैं?

शंकराचार्य कभी किसी पंडित से नहीं हारे थे, उस शूद्र से हारे। झुककर उसे प्रणाम किया और कहा, तूने मुझे ठीक बोध दिया।

सिद्धांत की बात एक है, तर्क की बात एक है, जीवंत अनुभव बड़ी और बात है।

गुर्जिएफ ने ठीक विधि खोजी थी। गुर्जिएफ की विधि यह थी कि सपने में जागकर देखना है कि यह सपना है। तो वह अपने शिष्यों को कहता कि रोज रात सोते समय एक ही बात, एक ही बात, एक ही बात दोहराते-दोहराते सोना, कब नींद आ जाए पता न चले, तुम यह दोहराते ही रहना कि आज की रात चूकूंगा नहीं, सपना सामने आएगा और मेरे भीतर यह भाव उठेगा कि यह सपना है, यह झूठ है।

कोई तीन महीने से छह महीन लग जाते, लेकिन एक दिन यह बात घटती है। एक दिन यह बात सपने में घट जाती है कि सामने सपना होता है—यह सोने का महल, कि यह अप्सराओं का नृत्य, कि यह हीरे-जवाहरातों की राशि, या कुछ और—एक दिन यह बात घटती है कि वह दोहरते-दोहरते निरंतर-निरंतर तुम्हारे चेतन से उतरते-उतरते, रिसते-रिसते अचेतन में बात पहुंच गयी। उस दिन सपना होता है और तुम एकदम से जागकर भीतर देखते हो कि अरे! यह सपना है, झूठ है। और तब एक बड़ा अदभुत अनुभव होगा, अदभुत अनुभव यह होगा कि जैसे ही तुमने जाना कि यह झूठ है कि सपना टूट जाता है—उसी वक्त सपना टूट जाता है फिर एक इंच आगे नहीं चलता। जैसे फिल्म एकदम से बंद हो गयी, पर्दा खाली हो गया।

गुर्जिएफ कहता था, फिर दूसरा चरण है। जब वह घट जाए, रात का सपना तोड़ने की कला तुम्हें आ जाए, तब फिर दिन में जागकर देखना कि सब सपना है। तब वह भी घटेगा, शायद वह और भी ज्यादा समय लेगा। मगर रात का सपना जिसने तोड़ लिया, उसका दिन का सपना भी टूट जाएगा।

तुम पूछते हो : यह संसार क्या है, यह माया क्या है? यह खुली आंख देखा गया सपना है। यह तुम्हारी वासनाओं का विस्तार है। यह तुम्हारे विचारों का प्रक्षेपण है।

रेत की नाव, झाग के मांझी
काठ की रेल, सीप के हाथी
हल्की-भारी प्लास्टिक की कलें
मोम के चाक जो रुकें न चलें
राख के खेत, धूल के खलिहान
भाप के पैरहन, धुएं के मकान
नहर जादू की, पुल दुआओं के
झुनझुने चंद योजनाओं के
सूत के चेले, मूंज के उस्ताद
तेश दफ्ती के, कांच के फरिहाद

आलिम आटे के, और रवे के इमाम
और पन्नी के शायराने-कराम
ऊन के तीर, रुई की शमशीर
सदर मिट्टी का और रबर के वजीर
अपने सारे खिलौने साथ लिए
दस्ते-खाली में कायनात लिए
दो सुतूनों में बांध के रस्सी
हम खुदा जाने कब से चलते हैं
न तो गिरते हैं न सम्हलते हैं

ऐसा सब झूठ है।

हम खुदा जाने कब से चलते हैं
न तो गिरते हैं न सम्हलते हैं

चलती जाती यह कहानी। और इस कहानी को हम गूंथते चले जाते हैं। हम इसमें रोज पानी डालते हैं। हम रोज इसमें नए-नए आयोजन जुटाते। अगर पुराने खिलौने टूट जाते हैं, हम नए बनाते हैं। अगर एक वासना व्यर्थ होती है, हम दस और सजा लेते हैं। मरते दम तक हम रंगते ही जाते हैं पर्दे को। नए-नए चित्र उभारते हैं, नए-नए गीत बसाते हैं, नए-नए राग छेड़ते हैं, और अत्यंत दुख पाते हैं। फल दुख है।

इसे ऐसा समझो, सत्य का फल है आनंद, असत्य का फल है दुख। जहां दुख पाओ, जानना असत्य है। दुख कसौटी है। जितना दुख उतना असत्य। जहां दुख पाओ, समझना कि झूठ है कुछ। झूठ से दुख मिलता है। दुख झूठ के साथ-साथ चलता है। दुख और झूठ का शाश्वत रिश्ता है। जहां थोड़ी सी आनंद की झलक मिले, जहां थोड़ी शांति उतरे, जहां थोड़ा सन्नाटा घेरे, जहां थोड़ा विश्राम हो, जहां थोड़ी मौज उठे, वहां समझना कि सच करीब है। सत्य की कोई किरण तुम्हारे अंतःपटल में प्रवेश कर गयी है। खोजना, जहां-जहां आनंद हो वहां-वहां खोजना।

तुमसे कहा गया है कि परमात्मा मिले तो आनंद मिले। मैं तुमसे कहता हूं: आनंद मिले तो परमात्मा मिले। और शांडिल्य मुझ से राजी होंगे। तुमसे कहा गया है कि परमात्मा मिले, तो तुम्हारे जीवन में प्रीति का आविर्भाव हो। मैं तुमसे कहता हूं: तुम्हारे जीवन में प्रीति का आविर्भाव हो तो तुम्हें परमात्मा मिले। और शांडिल्य मुझ से राजी होंगे।

सत्य कहो, अगर ज्ञानी की भाषा उपयोग करनी हो; प्रेम कहो, अगर भक्त की भाषा उपयोग करनी हो; लेकिन बात एक ही है। जहां सत्य है, जहां प्रेम है, वहां आनंद है। आनंद सबूत है। इसलिए तुम आनंद की तलाश करो। और जहां-जहां तुम्हें दुख मिलता हो, वहां-वहां अपने को जगाओ। बहुत हो गया, खूब चल चुके; यह सपना अब टूटना ही चाहिए। और तुम्हारे अतिरिक्त कोई इसे तोड़ न सकेगा। तुम ही तोड़ना चाहोगे तो तोड़ सकोगे। खूब देखो, कितना दुख इससे मिलता है।

लोग मुझ से पूछते हैं कि सपना तोड़ें कैसे? यह बात ही गलत है। सिर्फ

अपने से कितना दुख मिलता है यह भर देखते चलो, टूट जाएगा। तुम्हें दुख का ठीक-ठीक एहसास हो जाए, तुम्हें कार्य-कारण की साफ-साफ समझ आ जाए कि जहां-जहां दुख मिलता है, वहां-वहां झूठ है। लेकिन तुम बड़े चालबाज हो। तुम अजीब-अजीब बातें सोच लेते हो।

कुसुम ने एक प्रश्न पूछा है : कि धर्मात्मा मनुष्य को दुख क्यों मिलता है और पापी मजा क्यों करते? ऐसा कभी हुआ ही नहीं। अगर दुख मिल रहा हो धर्मात्मा को, तो वह छिपे पापी हैं और कुछ भी नहीं। और अगर पापी आनंद कर रहा हो, तो तुम्हारे समझने में कहीं भूल हो गयी है, वह पापी नहीं है। पाप से और आनंद मिलता ही नहीं, मिल ही नहीं सकता। अगर तुम पाओ कि कोई चोर बड़ा सुखी है, तो उसका मतलब इतना ही हुआ कि चोरी के अतिरिक्त भी उसमें कुछ और गुण होंगे जिनके कारग सुख मिल रहा है—चोरी से कैसे सुख मिल सकता है? हो सकता है साहसी हो। चोर अक्सर साहसी होते हैं। दुनिया में सौ में निन्यानबे आदमी इसीलिए चोर नहीं हैं कि साहस नहीं है और कोई खास बात नहीं है। कोई गुण वगैरह नहीं है, कोई नीति वगैरह नहीं है, सिर्फ कमजोर हैं, काहिल हैं, नपुंसक हैं, चोरी करने से डरते हैं, कि कहीं पकड़े न जाएं। तुम भी जरा सोचो, अगर तुम्हें कोई बिलकुल गारंटी दे दे कि तुम पकड़े नहीं जाओगे, फिर तुम चोरी करोगे कि नहीं? पकड़े जाओगे ही नहीं, इसकी पक्की गारंटी है, तो तुम फिर कहोगे, फिर क्यों नहीं करनी, फिर कर ही लें। तो तुम इतने दिन से जो चोरी नहीं कर रहे थे, वह चोरी गलत है इस कारण नहीं, बल्कि पकड़े जाने का भय है। प्रतिष्ठा पर दाग लगेगा, बेइज्जती होगी, लोग क्या कहेंगे, कि आप और चोर! अहंकार को चोट लगेगी, बस, उसी डर से रुके थे।

सौ अचोरों में निन्यानबे सिर्फ भय के कारण अचोर हैं, इसलिए दुख पाएंगे। वे सोचेंगे कि हम चोरी नहीं कर रहे और दुख क्यों पा रहे हैं? चोर तो हो ही तुम, चोरी की या नहीं, इससे थोड़ी ही कोई चोर होता है! चोर होना तुम्हारी चेतना की दशा है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक ट्रेन में सफर करता था। उस डिब्बे में दो ही थे, वह था और एक सुंदर स्त्री थी। उसने सुंदर स्त्री को कहा कि अगर मैं हजार रुपए दूं तो रात मेरे साथ सोओगी? उस स्त्री ने कहा, तुमने मुझे समझा क्या है? चेन खींच दूंगी, पुलिस को बुलाऊंगी। उसने कहा, नाराज न होओ, मैं तो सिर्फ एक निवेदन किया। अगर दस हजार दूं तो? स्त्री शांत हो गयी, फिर उाने नहीं चिल्लाया। उसने कहा कि पुलिस को बुलाऊंगी और चेन खींच दूंगी, मुल्ला ने कहा, दस हजार? तो उसने कहा, दस हजार के लिए मैं राजी हो सकती हूं; मुल्ला ने कहा, ठीक, और अगर दस रुपया दूं? तब तो वह स्त्री एकदम खड़ी हो गयी, उसने कहा, अभी चेन खींचती हूं, अभी पुलिस को बुलाती हूं। पर मुल्ला ने कहा, यह क्या बात हुई? उस स्त्री ने कहा, आप जानते नहीं मैं कौन हूं? मुल्ला ने कहा, मैं समझ गया तुम कौन हो, अब तो हम मोल-भाव कर रहे हैं। दस हजार में जब तुम सोने को राजी हो तो यह तो मैं जान ही गया कि तुम कौन हो, अब तो सिर्फ मोल-भाव की बात है—तो मैं व्यापारी आदमी हूं! वह तो मैंने दस हजार इसीलिए कहे थे कि पहचान लूं कि तुम हो कौन। वह बात

खतम हो गयी, वह निर्णय हो चुका, अब नाहक चेन वगैरह न खींचो, बैठो; अब तो मोल-भाव कर लें बैठकर, जो भी तय हो जाए, ठीक है।

तुम भी सोच लेना, तुम्हारी जीवन-दशा तुम्हारी चोरी करने से चोर की नहीं होती, चोरी की वृत्ति! उस वृत्ति के कारण तुम दुख पाते हो। और हो सकता है चोर अगर सुख पा रहा है तो जरूर उसमें कुछ होगा, कुछ होगा जिससे सुख आता है—साहस होगा, बल होगा, दांव पर लगाने की हिम्मत होगी, निश्‍िंचत मन होगा कि हो जो हो। दुनिया क्या कहती है, इसकी फिकर न करता होगा। थोड़ी बगावती दशा होगी। कुछ होगा उसके भीतर, कुछ गुण होगा जिसके कारण सुख मिलता है।

तुम्हारा महात्मा है, तुम कहते हो, महात्मा है, बड़ा दुख पा रहा है। लेकिन दुख पाएगा तो सबूत है कि कहीं कुछ बात होगी। कभी महात्मा दुख नहीं पाता; पा नहीं सकता, क्योंकि दुख छाया है झूठ की। दुख छाया है असत्य की। दुख छाया है माया की। अब अगर महात्मा दुख पा रहा है तो कहीं न कहीं कोई भ्रांति है, महात्मा है नहीं। और अगर कहीं कोई पापी आनंद पा रहा है, तो वहां भी तुम्हारी समझ में कुछ भूल हो गयी है। फिर से देखना, गौर से देखना।

कभी-कभी शराबियों में ऐसे सज्जन मिल जाते हैं, जो सज्जनों में न मिलें। अक्सर शराबी जितने सरल होते हैं, उतने सज्जन नहीं होते। सरलता आनंद लाती है। अगर कोई सरलता की वजह से शराब पी रहा है तो निश्‍चित ही आनंद होगा। और अगर कोई सिर्फ स्वर्ग पाने के लिए शराब नहीं पी रहा है, तो आनंद नहीं हो सकता। क्योंकि वहां वासना है। सरलता नहीं है, गणित है, चालबाजी है। वह आदमी होशियार है। वह कह रहा है, स्वर्ग जाना है मुझे। स्वर्ग जाना है तो इतना चुकाना पड़ेगा।

तुम अपने भीतर ही परीक्षण करो और तुम पाओगे जब भी तुम सच के अनुकूल होते हो, तत्क्षण वर्षा होती है आनंद की। धूप खिल जाती है, फूल उमग आते हैं, सुवासित हो जाते हो।

संसार क्या है? माया क्या है? एक जाल है, जो हमने बुना—मकड़ी के जाल की तरह—और जिसमें हम खुद फंस गए हैं।

रोज बढ़ता हूं जहां से आगे
फिर वहीं लौट के आ जाता हूं
बारहा तोड़ चुका हूं जिनको
इन्हीं दीवारों से टकराता हूं
रोज बसते हैं कई शहर नए
रोज धरती में समा जाते हैं
जलजलों में भी जरा-सी गर्मी
वो भी अब रोज ही आ जाते हैं
जिस्म से रूह तलक रेत ही रेत
न कहीं धूप, न साया, न शराब
कितने अरमान हैं किस सहरा में

कौन रखता है मजारों का हिसाब
नब्ज बुझती भी भड़कती भी है
दिल का मामूल है घबराना भी
रात अंधेरे ने अंधेरे से कहा
एक आदत है जीए जाना भी
कौस इक रंग की होती है तुलूअ
एक ही चाल भी पैमाने की
गोशे-गोशे में खड़ी है मस्जिद
शक्ल क्या हो गयी मयखाने की
कोई कहता था समंदर हूं मैं
और मेरी जेब में कतरा भी नहीं
खैरियत अपनी लिखा करता हूं
अब तो तकदीर में खतरा भी नहीं
अपने हाथों को पढ़ा करता हूं
कभी कुरान, कभी गीता की तरह
चंद रेखाओं में सीमाओं में
जिंदगी कैद है सीता की तरह
राम कब लौटेंगे मालूम नहीं
काश, रावण ही कोई आ जाता

ऐसी बुरी दशा है—

राम कब लौटेंगे, मालूम नहीं
काश, रावण ही कोई आ जाता

आदमी बंद पड़ा सीता की तरह। और किसी और ने नहीं बनाए हैं ये जाल, यह हमने बनाए। न हमने केवल बनाए, हम रोज बना रहे हैं। आज भी तुम बनाओगे। आज तुम्हारा दिन इसी में जाएगा। इन्हीं दीवालों को तुम और मजबूत करोगे, इन्हीं सींखचों पर तुम और फौलाद चढ़ाओगे। इन्हीं जंजीरों को तुम और भारी करोगे। इसी पागलपन को तुम और खाद दोगे, पानी दोगे।

रात अंधेरे ने अंधेरे से कहा, एक आदत है जीए जाना भी तुम जीए जा रहे हो, आदतवश। कल भी जीए थे, परसों भी जीए थे, जीने की एक आदत हो गयी है। जैसे लोग सिगरेट पीते हैं, ऐसे लोग जीते हैं। क्या करें, आदत हो गयी। लोग सिगरेट पीते हैं, शराब पीते हैं, पान खाते हैं, तमाखू चबाते हैं, ऐसी ही जीने की भी आदत हो गयी, क्या करें? कल भी जीए थे, परसों भी जीए थे, बहुत दिन जीए हैं, अब जीने की आदत हो गयी तो जीए जाते हैं। उन्हीं बातों को दोहराए चले जाते हैं जिन्हें कल भी किया था रोज बढ़ता हूं जहां से आगे, फिर वहीं लौट के आ जाता हूं।

तुम जरा देखो, तुम्हारा जीवन का चाक घूमता रहता वहीं, वहीं, वहीं। इसलिए ज्ञानियों ने संसार को संसार-चक्र कहा है।

रोज बढ़ता हूं जहां से आगे
फिर वहीं लौट के आ जाता हूं
बारहा तोड़ चुका हूं जिनको
इन्हीं दीवारों से टकराता हूं

सोचते हो तुम कि तोड़ चुके तुम, मगर तुम जरा गौर से देखो, उन्हीं से टकराते हो। कल भी क्रोध से टकराए थे, परसों भी क्रोध से, और परसों से पहले भी, और आज भी। भरोसा रखो अपना, आज भी क्रोध से ही टकराओगे; और आने वाले कल भी। सोचते हो तुम कि कसमें खा लीं, अब कभी क्रोध न करेंगे। कसमें काम आतीं? सब कसमें खाते हैं! क्रोध कसमों से बहुत बड़ा है। कितनी बार कसम खा ली कि अब और मोह न बनाएंगे, लेकिन मोह फिर-फिर बन जाता है—मोह कसमों से बड़ा है। कितने तो व्रत लिए, सब व्रत तो टूट गए; कोई व्रत तो सम्हलता नहीं—व्रत संभल ही नहीं सकता, सिर्फ होश काम आता है; कोई और बात काम नहीं आती। जरा होश से देखो! यह मत कहो कि क्रोध नहीं करूंगा अब, सोचो कि अब तक क्रोध क्यों किया? यह मत कहो कि कसम खाता हूं कि अब क्रोध न करूंगा, क्योंकि तुम्हारी कसम से क्या होगा, क्रोध जहां से आता था वहां से आएगा, जिस अंधेरे अचेतन से उठता था फिर उठेगा; तुम्हारी आदत बड़ी है; तुम्हारी कसम नयी है, आदत पुरानी है, कसम बहुत छोटी है। जब आदत का तूफान आएगा, कसम ऐसे उड़ जाएगी जैसे हवा में कोई तिनका उड़ गया। फिर-फिर पछताओगे, पछताना भी तुम्हारी आदत है।

मेरे पास एक आदमी आया, उसने कहा कि मेरी क्रोध से जिंदगी बरबाद हो गयी, मुझे क्रोध से छुड़ाओ। और मैं बहुत पछताता हूं, और हर बार क्रोध करके रोता हूं, छाती पीटता हूं, अपने को उपवासा भी रखा कई दिन तक, मारा भी है अपने को, आत्मघात की भी सोची, मगर यह क्रोध जाता नहीं। मुझे क्रोध से बचाओ। मैंने उससे कहा, तू एक काम कर, क्रोध तो जाता नहीं, तू कम से कम पश्चात्ताप छोड़। उसने कहा, आप क्या कहते हैं? पश्चात्ताप छोड़ दूंगा, पश्चात्ताप कर-करके तो क्रोध छूटा नहीं, पश्चात्ताप छोड़ दूंगा तो और क्रोधी हो जाऊंगा। मैंने कहा, वह तो तू करके देख चुका, अब मेरी मान, तू कम से कम पश्चात्ताप छोड़। तू अब क्रोध कर, बेफिकर कर और पश्चात्ताप छोड़ दे। और तीन सप्ताह बाद मुझे आकर कहना कि क्या हुआ।

तीन सप्ताह बाद वह आया, वह बोला कि पश्चात्ताप भी नहीं छूटता। तुम जरा सोचो तो क्रोध क्या खाक छूटेगा, पश्चात्ताप भी नहीं छूटता। नपुंसक पश्चात्ताप जिससे कुछ परिणाम कभी नहीं हुआ, वह भी नहीं छूटता, वह भी आदत हो गयी। मैंने कहा, इसीलिए मैंने तुझे यह कहा था कि तुझ सेयह दिखायी पड़ जाए कि पश्चात्ताप जिसका कोई परिणाम कभी नहीं हुआ, मुर्दा पश्चात्ताप, वह भी नहीं छूटता, तो क्रोध तो परिणामकारी है। उससे तो बहुत परिणाम हुए हैं—बुरे हुए, भले हुए, क्या हुए, मगर परिणाम हुए हैं। क्रोध तो ऊर्जा है। जब निर्वीर्य पश्चात्ताप नहीं छूटता, तो यह ऊर्जा से भरा हुआ क्रोध कैसे छूटेगा? तू फिर से देख, तू फिर से सोच। तूने

शास्त्रों से सुन लिया कि क्रोध करना बुरा है और तू कसमें खाने लगा है, तूने अपने क्रोध को नहीं जाना।

जमाना था एक, आकाश में बिजली चमकती थी, लोग घबड़ाते थे, कंपते थे, वेद कहते हैं कि इंद्र नाराज है, बिजलियां कौंधा रहा है, देवता नाराज है। अज्ञानियों को तो छोड़ो, उस दिन के ज्ञानी भी यही सोचते थे कि देवता नाराज है। न कोई देवता है, न कोई नाराज है, मगर बिजली इतनी भयंकर थी और घबड़ाने वाली थी, और बिजली की दहाड़ और बादलों की गड़गड़ाहट, हम सोच सकते हैं, आदमी की छाती बैठ जाती होगी। डरता होगा।

फिर हमने एक दिन बिजली को समझ लिया—वेद के ऋषि तो प्रार्थना ही करते रहे कि इंद्र देवता! नाराज न होओ। हम गाय चढ़ाएंगे, बैल चढ़ाएंगे, आदमी चढ़ाएंगे; हम यज्ञ करेंगे, हम तुम्हारी स्तुति करेंगे, हे इंद्र देवता! स्तुतियों से भरा हुआ सारा वेद पड़ा है। मगर न इंद्र देवता ने सुनी—कोई हों तो सुनें—न बिजली बंद हुई; बिजली वैसी ही कड़कती रही और बादल वैसे ही गरजते रहे और तुम्हारे ऋषि आए और चले गए और कोई परिणाम न हुआ। पानी पर खींची गयी लकीरें थीं उनकी प्रार्थनाएं और उनके हवन और उनके यज्ञ। और तुमने बलि भी दी, और तुमने आदमी भी मारे, मगर कुछ भी न हुआ। फिर एक दिन आदमी ने बिजली के रहस्य को समझा, तब से बिजली गुलाम हो गयी। अब तुम्हारे घर में पंखा चलाती है, अब इंद्र देवता कुछ भी नहीं कर पाते हैं। बिजली पंखा चला रही है, बिजली घर में तुम्हारे रोशनी कर रही है, तुम्हारा चूल्हा जला रही है, बिजली हजार काम कर रही है। अब कोई प्रार्थना नहीं करता है कि हे इंद्र देवता! अब हम जानते हैं, बिजली हमारे वश में है।

ऐसा ही क्रोध तुम्हारे भीतर के आकाश की बिजली है। पश्चात्ताप से नहीं रुकेगा, प्रार्थना से नहीं रुकेगा; समझो, पकड़ो, पहचानो, जागो—क्या है क्रोध? क्रोध में करुणा छिपी है। जिस दिन तुम क्रोध को समझ लोगे, उसके मालिक हो जाओगे, उस दिन तुम पाओगे क्रोध तुम्हारा सेवक हो गया—बड़ा सेवक है, उस पर चढ़कर तुम बड़ी दूर की यात्रा कर सकते हो। जिस आदमी में क्रोध नहीं, उस आदमी में रीढ़ ही नहीं होती। जिस आदमी में क्रोध नहीं, उस आदमी में जिंदगी ही नहीं होती। जिस बच्चे में क्रोध है, उसी में संभावना है। और किसी बच्चे में क्रोध न हो तो समझना गोबर-गणेश, किसी काम के नहीं हैं। गणेश जी की जरूरत हो तो उन को बिठाल लो और पूजा का लो। इन से जीवन में कुछ भी नहीं होगा। कोई संभावना नहीं, ऊर्जा ही नहीं है।

क्रोध मनुष्य के अंतर-आकाश की बिजली है।

जीवन को समझो, पहचानो। बिना पहचाने हम जीते हैं तो—

रात अंधेरे ने अंधेरे से कहा
एक आदत है जीए जाना भी
रोज बढ़ता हूं जहां से आगे
फिर वहीं लौटकर आ जाता हूं

बारहा तोड़ चुका हूं जिनको
इन्हीं दीवारों से टकराता हूं
रोज बसते हैं कई शहर नए
रोज धरती में समा जाते हैं
जलजलों में थी ज़रा-सी गर्मी
वो भी अब रोज ही आ जाते हैं
धीरे-धीरे, धीरे-धीरे सब उदास हो जाता है।

इस संसार की पूरी यात्रा का फल क्या है? आंखें धूल से भर जाती हैं, ओठों पर धूल जम जाती है, स्वाद मर जाता है, संवेदनशीलता मर जाती है—मरने के पहले हम मर जाते हैं, मरने के पहले हम मुर्दा हो जाते हैं। लोगों को देखो, कितनी धूल जम गयी है उन पर, फिर भी चले जाते हैं।

रात अंधेरे ने अंधेरे से कहा
एक आदत है जीए जाना भी
जिस्म से रूह तलक रेत ही रेत
न कहीं धूप, न साया, न सराब
कितने अरमान हैं किस सहरा में
कौन रखता है मजारों का हिसाब
नब्ज बुझती भी भड़कती भी है
दिल का मामूल है घबराना भी

और दिल घबराए, यह स्वाभाविक है; क्योंकि यहां हाथ कुछ लग नहीं रहा है। टटोलते-टटोलते थक गए हैं। मरुस्थल ही मरुस्थल है।

जिस्म से रूह तलक रेत ही रेत
न कहीं धूप, न साया, न सराब

पानी की तो कौन कहे, झूठी मृग-मरीचिका भी नहीं मिलती। मरूद्यान की तो कौन कहे, मरूद्यान का सपना भी हाथ नहीं लगता। जो पकड़ो, वही व्यर्थ सिद्ध हो जाता है। दूर के ढोल सुहावने लगते हैं, पास आते-आते सब रंग-रौनक उड़ जाती है। दूर रहो, सब ठीक लगता है। पास आओ, सब व्यर्थ हो जाता है। जो मिल जाए, वही व्यर्थ हो जाता है। जो न मिले, उसी में रस टंगा रहता है। आदमी आशा के सहारे जीता है, अनुभव के सहारे नहीं। अनुभव तो यही कहता है कि अब जागो, बहुत हो गया; आशा कहती है, और थोड़ी देर सो लो, कौन जाने कोई सुखद सपना आने को हो! अनुभव कहता है, यहां कभी कुछ हाथ नहीं लगा। आशा कहती है, अभी तक तो नहीं लगा, ठीक है। लेकिन कल की कौन जाने, कल लग जाए, थोड़ा और, थोड़ा और...। आशा अटकाए चली जाती है। आशा माया का आधार है।

इस आदत से जगना होगा। इस यंत्रवत्ता को तोड़ना होगा। थोड़ा होश सम्हालो। क्या कर रहे हो, इसे जागकर करना शुरू करो—मैं नहीं कहता कि इसे बंद कर दो आज। किसी स्त्री के प्रेम में हो, अब जागकर। किसी स्त्री को छाती लगाओ,

अब जागकर। मैं नहीं कहता कि अभी रोक दो। जल्दी मत करना। जल्दी में आदमी कच्चा रह जाता है। और जब तक आदमी पक न जाए, जीवन में कोई क्रांति नहीं होती। धन में मजा है, चलो, और धन इकट्ठा करो, लेकिन अब जरा होश से। गौर से देख लेना धन को हाथ में ले-लेकर कि क्या मिल रहा है। कुछ मिल रहा है? और अभी मैं नहीं कह रहा हूं कि जल्दी निर्णय ले लेना कि नहीं मिल रहा है।—शास्त्रों को बीच में मत आने देना और सदगुरुओं को बीच में मत बोलने देना। वह कितना ही कहें कि कुछ नहीं है, सब राख है, मगर तुम्हें अभी इसमें चमक मालूम पड़ती है। तुम्हें जिस में चमक मालूम पड़ती है, तुम अभी उसकी चमक को और गौर से देखते रहो।

मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी एक रास्ते से गुज़रते थे। उसने भागकर रास्ते के किनारे पड़ा कुछ उठाया, फिर जोर से फेंका और कहा कि अगर यह आदमी मिल जाए तो इसकी गर्दन उतार लूं। उसकी पत्नी ने कहा, बात क्या है, क्या हुआ? उसने कहा कि किसी आदमी ने इस तरह खखार थूकी कि बिलकुल अठन्नी मालूम होती थी। चमक रही होगी धूप में।

मगर दूसरों के कहने से नहीं, तुम उठाओगे तो ही, तो ही तुम जानोगे। धन इकट्ठा करने का मन है, करो; पद पर जाने का मन है, जाओ, लड़ो मगर होश से जाना, कुर्सी पर बैठकर देखना कि ऊंचे हो गए? क्या मिल गया? यश का मोह है, ठीक है, तलाश करो। जब हजारों लोग तुम्हें जानने लगें, तब सोचना कि क्या मिल गया? इतने लोग मुझे जानते हैं, मेरे नाम को जानते हैं, इससे क्या मिल गया? क्या हुआ? नहीं जानते थे तो हर्ज क्या था? जानते हैं तो लाभ क्या है? मैं भी मिट जाऊंगा, ये भी मिट जाएंगे; इस प्रसिद्धि, प्रतिष्ठा का प्रयोजन क्या है? बस, इतना जागकर देखते रहो।

जल्दी निष्कर्ष मत लेना। मेरी तुम से यह विनती है, जल्दी निष्कर्ष मत लेना। तुम जल्दी निष्कर्ष लेते हो, उसी में कच्चे रह जाते हो, फिर लौट-लौटकर वहीं आ जाते हो। एक चीज को पक जाने दो। जिस दिन तुम पूरी तरह जान लोगे कि कुर्सी पर बैठकर कोई आदमी बड़ा नहीं हो जाता—चाहे प्रधानमंत्री बन जाओ और चाहे राष्ट्रपति, कोई आदमी बड़ा नहीं हो जाता। सच तो यह है कि कुर्सी पर बैठकर आदमी के सब छोटेपन जाहिर हो जाते हैं, प्रकट हो जाते हैं, क्योंकि सब छोटेपन ब्रॉडकास्ट हो जाते हैं, सबको दिखायी पड़ने लगते हैं, और कुछ भी नहीं होता। और आदमी भीतर खाली है सो खाली है। मगर जो आदमी कुर्सी पर बैठ जाता है, फिर कुर्सी नहीं छोड़ता, वह जोर से पकड़ लेता है। उसे यह भी दिखायी पड़ता है कि कुछ मिल नहीं रहा है, लेकिन छोड़ने में भी डर लगता है। अब यह भय होता है कि मिल तो कुछ नहीं रहा है, लेकिन चलो, न कुछ से यही ठीक, कम से कम लोग तो जानते हैं, कम से कम लोगों को तो भ्रांति है कि मिल गया।

खयाल करना इस बात पर। तुम्हें तो नहीं मिला है, तुम तो जानते हो मुझे कुछ नहीं मिला, मगर अब कहने से भी क्या सार है। अपनी दीनता क्या कहनी है। अकड़कर चलते रहो। लोग तो मानते हैं कि मिल गया, चलो लोगों को मानने दो,

इससे ही एक राहत मिलती है।

जिंदगी कैद है सीता की तरह
राम कब लौटेंगे, मालूम नहीं
काश, रावण ही कोई आ जाता

कुछ तो आ गया, रावण ही सही! धन तो आ गया! दूसरे तो सोचते हैं, दूसरे तो तड़फते हैं, दूसरे तो ईर्ष्या से भरते हैं कि इस आदमी को मिल गया, अब हमको नहीं मिला, कोई हर्जा नहीं! हम अपनी बात छुपाकर रखेंगे, चुपचाप चले जाएंगे, बिना किसी को पता हुए, बिना किसी को खबर पड़े, विदा हो जाएंगे, कहानी रह जाएगी, लोग कहेंगे कि क्या आदमी था, सिकंदर था, इतना धन पाकर मरा, इतनी प्रतिष्ठा, इतना यश लेकर मरा। ध्यान रखना, जो लोग ऐसा कहेंगे वे वे ही लोग होंगे जिन्हें जीवन में यश नहीं मिला। इसलिए उन्हें कुछ पता नहीं कि उठन्नी थी ही नहीं। ये वे ही लोग होंगे जिन्हें जीवन में धन नहीं मिला; ये वे ही लोग होंगे जिन्हें जीवन में पद नहीं मिला। चूंकि इन्हें नहीं मिला, दूर के ढोल सुहावने हैं।

तुम देखते हो, प्रधानमंत्री आ जाएं या राष्ट्रपति, भीड़ इकट्ठी हो जाती है—कौन लोग हैं? यह वे ही लोग हैं जिनके जीवन में कुछ भी नहीं मिला। यह खाली लोग एक दूसरे खाली आदमी को भरने पहुंच जाते हैं। और मजा यह है कि इन खाली लोगों की भीड़ को देखकर वह खाली आदमी जो पद पर बैठा है, सोचता है कि चलो कोई बात नहीं, मुझे तो नहीं मिला है मगर इतने लोग तो मानते हैं कि मुझे मिला है, यही क्या कम है! चलो, रावण ही आया तो ठीक।

जो आदमी जागकर देखता रहेगा वह धीरे-धीरे-धीरे-धीरे इन सारी चीजों को इतनी प्रगाढ़ता से पहचान लेगा, उसी पहचान में मुक्ति है; उसी पहचान से संसार समाप्त हो जाता है, मोक्ष का उदय होता है।

अंतिम प्रश्न : क्या आप शराब भी पीते हैं?

और कुछ पीने योग्य है भी नहीं। वर्षों से पानी तो मैंने पीआ नहीं, इतना तो मैं पक्का भरोसा दिला देता हूं—दस साल से तो नहीं पीआ। सोडा पीता हूं और शराब। सोडा बाहर का, शराब भीतर की। मैं संतुलन में भरोसा रखता हूं—थोड़ा बाहर का, थोड़ा भीतर का।

जो कभी खींची नहीं गयी
ऐसी शराब है एक
जिसकी तरफ
कभी कोई ताक नहीं सका
ऐसी आब है एक
मैं इस बिना खींची
शराब को

पीता हूं
मैं इस बिना देखी
आब को जीता हूं

और मैं तुम्हें भी शराबी बनाना चाहता हूं। भक्ति यानी शराब। शांडिल्य यानी शराबी। भक्त का मंदिर यानी मधुशाला, मादकता, माधुर्य। परमात्मा को पीओ, फिर कोई और शराब पीने जैसी नहीं रह जाएगी। मेरे देखे जो लोग शराब पीते हैं, वे इसीलिए पीते हैं कि उनकी असली खोज तो परमात्मा की है, और परमात्मा मिलता नहीं। असली खोज तो यह है कि कैसे अपने को डुबा दे, लेकिन ऐसी कोई जगह नहीं मिलती जहां डुबा दें, तो चलो भुला लें, डुबना तो होता नहीं तो थोड़ी देर को भुला लें। शराब थोड़ी देर को भ्रांति देती है कि भूल गए अपने को। अहंकार बहुत पीड़ा है। ये दो ही उपाय हैं या तो परमात्मा में डुबा दो अहंकार को, तो सदा को डूब जाता है, फिर कोई पीड़ा नहीं बचती। अगर उतनी हिम्मत न हो सदा को डुबाने की, तो फिर शराब में डुबाओ। फिर शराबें कई तरह की हैं। कोई एक ही तरह की शराब नहीं है—शराब और शराब। जो मधुशाला में बिकती है वह तो एक ही प्रकार की शराब है। और बहुत तरह की शराबें हैं जो दूसरी जगहें बिकती हैं, और वे ज्यादा सूक्ष्म हैं।

जो आदमी धन के पीछे दीवाना है, तुम सोचते हो शराब नहीं पी रहा है। शास्त्रों में धन की दीवानगी को धन मद कहा है—धन की शराब। उस को एक नशा है। जैसे-जैसे धन की ढेरी बढ़ती जाती है, वह इसी में अपने मैं को डुबा रहा है। वह अपनी तिजोरी में अपने मैं को डुबा रहा है। उस को कुछ और चिंता नहीं बची है अब, दुनिया में और कोई चिंता नहीं, सारी चिंताएं उसने एक चीज में नियोजित कर दीं—धन का ढेर; यह उसकी शराब है। शास्त्र ठीक कहते हैं—धन मद।

जो आदमी पद के पीछे दीवाना है, तुम सोचते हो वह शराबी नहीं। तुम सोचते हो मोरारजी देसाई शराबी नहीं। पद मद शास्त्र कहते हैं। धन से भी बड़ा मद है पद का। बड़ा ही होगा, क्योंकि आदमी अस्सी साल का हो जाए और फिर भी पद के मोह से मुक्त न हो, तो कब मुक्त होगा? भयंकर होगा, बचें चाहे जाएं लेकिन पद पर तो पहुंचना ही है। किसी तरह पहुंचें, पद पर तो पहुंचना ही है। जवान आदमी पद का दीवाना हो, सूक्ष्म है। जवानी को मूढ़ताएं माफ की जा सकती हैं। जवानी एक तरह की नासमझी है। मगर अस्सी साल का आदमी पद के पीछे दीवाना हो, क्षम्य नहीं है। माफ नहीं किया जा सकता। उसका अर्थ हुआ, बाल धूप में पकाए। उसका अर्थ हुआ, जिंदगी ऐसे ही चली गयी, एक आदत की तरह। और मजा यह है कि मोरारजी खिलाफ हैं शराब के—शराब बंदी होनी चाहिए।

मेरे देखे राजनीति की शराब से जितनी हानि मनुष्य जाति को हुई है, उतनी अंगूर की शराब से नहीं हुई है। राजनीति से जितनी हिंसा और जितना खून बहा है, उतनी अंगूर की शराब से नहीं बहा है। लेकिन एक तरह का शराबी दूसरे तरह की शराब के विरोध में होता है। उस को अपनी शराब पसंद है, वह चाहता है सभी लोग उसी शराब में डूब जाएं।

शराबी की तलाश क्या है—चाहे वह किसी तरह का शराबी हो; संगीत में खोजे, कि संभोग में खोजे, कि संपत्ति में खोजे, कि सुयश में खोजे, कि सत्ता में खोजे, कहीं भी खोजे, शराबी की खोज क्या है? वह अपने को डुबाना चाहता है। बहुत गहरे में तो वह परमात्मा को खोज रहा है, लेकिन उसे साफ समझ नहीं है कि वह क्या खोज रहा है। पद को खोजने वाला भी बहुत गहरे में परम पद को खोज रहा है, परमात्मा को खोज रहा है। धन को खोजने वाला भी बहुत गहरे में परम धन को खोज रहा है, परमात्मा को खोज रहा है। शराबी भी वस्तुतः तो उस शराब को पीना चाहता है—

जो कभी खींची नहीं गयी
ऐसी शराब है एक
जिसकी तरफ
कभी कोई ताक नहीं सका
ऐसी आब है एक
मैं इस बिना खींची
शराब को
पीता हूं
मैं इस बिना देखी
आब को जीता हूं

वह भी वही पीना चाहता है, लेकिन वह बड़ी महंगी मालूम पड़ती है। दाम चुका सकेगा कि नहीं। यात्रा बड़ी लंबी है, यात्रा शिखर की, उसे अपने पैरों पर इतना भरोसा नहीं। यात्रा कठिन और दुर्गम, खड्ग की धार पर चलना होगा। तो वह सोचता है यह अपने वश की बात नहीं, हम तो जाकर बाजार में सस्ती शराब खरीद लेते हैं और पी लेते हैं। चलो थोड़ी देर को भूले, यही बहुत। अहंकार थोड़ी देर को भी भूल जाता है शराब में, तो भी राहत मिलती है। तो सोचो जरा उस शराब की जहां अहंकार सदा के लिए भूल जाएगा! फिर राहत ही राहत है। फिर विश्राम है, विराम है। उस दशा को भक्तों ने बैकुंठ कहा है।

कुरान में यह जो बात है कि स्वर्ग में शराब के चश्मे बहते हैं, उसका यही अर्थ होना चाहिए कि वहां अहंकार को बचाने का कोई उपाय नहीं है, सब डूब जाएगा। खुदा शराब है, यह मतलब होना चाहिए।

पीओ तुम भी, बनो शराबी तुम भी। भक्ति का मार्ग तो पियक्कड़ों का मार्ग है। पर ऐसी शराब पीओ कि फिर नशा उतरे न। चढ़े तो चढ़े, फिर उतरे न। उतर-उतर जाए, वैसे नशे का कितना मूल्य हो सकता है? वैसा नशा क्षणभंगुर है। इसलिए शांडिल्य कहते हैं : क्षणभंगुर से संबंध छोड़ो, और शाश्वत से जोड़ो।क्षणभंगुर से प्रेम करो, दुख आता है। शाश्वत से प्रेम करो, परम सुख आता है। क्षणभंगुर की शराब पीओ—अंगूर की शराब—दुख लाएगी। थोड़ी देर को धोखा होगा, फिर धोखा टूटेगा। हर बार जब धोखा टूटेगा, तुम और भी गर्त में गिरोगे, और भी अंधेरे में

गिरोगे, और भी नर्क में गिरोगे। शाश्वत की शराब पीओ। और जब शाश्वत उपलब्ध हो सकता हो, तो फिर क्या छुद्र को पीना! जब आकाश से बरसता हुआ स्वाति नक्षत्र का जल उपलब्ध हो सकता हो, तो नाली की गंदगी में क्यों डूबना!

हां, मैं शराब पीता हूं और मैं तुम्हें भी शराब पीना सिखाना चाहता हूं।

आज इतना ही।

ओशो—एक परिचय

बुद्धत्व की प्रवाहमान धारा में ओशो एक नया प्रारंभ हैं, वे अतीत की किसी भी धार्मिक परंपरा या श्रृंखला की कड़ी नहीं हैं। ओशो से एक नये युग का शुभारंभ होता है और उनके साथ ही समय दो सुस्पष्ट खंडों में विभाजित होता है : ओशो पूर्व तथा ओशो पश्चात।

ओशो के आगमन से एक नये मनुष्य का एक नये जगत का, एक नये युग का सूत्रपात हुआ है, जिसकी आधारशिला अतीत के किसी धर्म में नहीं है, किसी दार्शनिक विचार-पद्धति में नहीं है। ओशो सद्यःस्नात धार्मिकता के प्रथम पुरुष हैं, सर्वथा अनूठे संबुद्ध रहस्यदर्शी हैं।

मध्यप्रदेश के कुचवाड़ा गांव में 11 दिसंबर 1931 को जन्मे ओशो का बचपन का नाम रजनीश चन्द्रमोहन था। उन्होंने जीवन के प्रारंभिक काल में ही एक निर्भीक स्वतंत्र आत्मा का परिचय दिया। खतरों से खेलना उन्हें प्रीतिकर था। 100 फीट ऊंचे पुल से कूद कर बरसात में उफनती नदी को तैर कर पार करना उनके लिए साधारण खेल था। युवा ओशो ने अपनी अलौकिक बुद्धि तथा दृढ़ता से पंडित-पुरोहितों, मुल्ला-पादरियों, संत-महात्माओं—जो स्वानुभव के बिना ही भीड़ के अगुवा बने बैठे थे—की मूढ़ताओं और पाखंडों का पर्दाफाश किया।

21 मार्च 1953 को इक्कीस वर्ष की आयु में ओशो संबोधि (परम जागरण) को उपलब्ध हुए। संबोधि के संबंध में वे कहते हैं : 'अब मैं किसी भी प्रकार की खोज में नहीं हूं। अस्तित्व ने अपने समस्त द्वार मेरे लिए खोल दिये हैं।'

उन दिनों वे जबलपुर के एक कालेज में दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी थे। संबोधि घटित होने के पश्चात भी उन्होंने अपनी शिक्षा जारी रखी और सन 1957 में सागर विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में प्रथम श्रेणी में प्रथम (गोल्डमेडलिस्ट) रह कर एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। इसके पश्चात वे जबलपुर विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक पद पर कार्य करने लगे। विद्यार्थियों के बीच वे 'आचार्य रजनीश' के नाम से अतिशय लोकप्रिय थे।

विश्वविद्यालय के अपने नौ सालों के अध्यापन-काल के दौरान वे पूरे भारत में भ्रमण भी करते रहे। प्रायः 60-70 हजार की संख्या में श्रोता उनकी सभाओं में उपस्थित होते। वे आध्यात्मिक जन-जागरण की एक लहर फैला रहे थे। उनकी वाणी में और उनकी उपस्थिति में वह जादू था, वह सुगंध थी, जो किसी पार के लोक से आती है।

सन 1966 में ओशो ने विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पद से त्यागपत्र दे दिया ताकि अस्तित्व ने जिस परम भगवत्ता का खजाना उन पर लुटाया है उसे वे पूरी मानवता

को बांट सकें और एक नये मनुष्य को जन्म देने की प्रक्रिया में समग्रतः लग सकें।

ओशो का यह नया मनुष्य 'ज़ोरबा दि बुद्धा' एक ऐसा मनुष्य है जो ज़ोरबा की भांति भौतिक जीवन का पूरा आनंद मनाना जानता है और जो गौतम बुद्ध की भांति मौन होकर ध्यान में उतरने में भी सक्षम है—ऐसा मनुष्य जो भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों तरह से समृद्ध है। 'ज़ोरबा दि बुद्धा' एक समग्र व अविभाजित मनुष्य है। इस नये मनुष्य के बिना पृथ्वी का कोई भविष्य शेष नहीं है।

सन 1970 में ओशो बंबई में रहने के लिए आ गये। अब पश्चिम से सत्य के खोजी भी जो अकेली भौतिक समृद्धि से ऊब चुके थे और जीवन के किन्हीं और गहरे रहस्यों को जानने और समझने के लिए उत्सुक थे, उन तक पहुंचने लगे। ओशो ने उन्हें देशना दी कि अगला कदम ध्यान है। ध्यान ही जीवन में सार्थकता के फूलों के खिलने में सहयोगी सिद्ध होगा।

इसी वर्ष सितंबर में, मनाली (हिमालय) में आयोजित अपने एक शिविर में ओशो ने नव-संन्यास में दीक्षा देना प्रारंभ किया। इसी समय के आसपास वे आचार्य रजनीश से भगवान श्री रजनीश के रूप में जाने जाने लगे।

सन 1974 में वे अपने बहुत से संन्यासियों के साथ पूना आ गये जहां 'श्री रजनीश आश्रम' की स्थापना हुई। पूना आने के बाद उनके प्रभाव का दायरा विश्वव्यापी होने लगा।

श्री रजनीश आश्रम पूना में प्रतिदिन अपने प्रवचनों में ओशो ने मानव-चेतना के विकास के हर पहलू को उजागर किया। बुद्ध, महावीर, कृष्ण, शिव, शांडिल्य, नारद, जीसस के साथ ही साथ भारतीय अध्यात्म-आकाश के अनेक नक्षत्रों—आदिशंकराचार्य, गोरख, कबीर, नानक, मलूकदास, रैदास, दरियादास, मीरा आदि पर उनके हजारों प्रवचन उपलब्ध हैं। जीवन का ऐसा कोई भी आयाम नहीं है जो उनके प्रवचनों से अस्पर्शित रहा हो। योग, तंत्र, ताओ, झेन, हसीद, सूफी जैसी विभिन्न साधना-परंपराओं के गूढ़ रहस्यों पर उन्होंने सविस्तार प्रकाश डाला है। साथ ही राजनीति, कला, विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शन, शिक्षा, परिवार, समाज, गरीबी, जनसंख्या-विस्फोट, पर्यावरण तथा संभावित परमाणु युद्ध के व उससे भी बढ़कर एड्स महामारी के विश्व-संकट जैसे अनेक विषयों पर भी उनकी क्रांतिकारी जीवन-दृष्टि उपलब्ध है।

शिष्यों और साधकों के बीच दिए गए उनके ये प्रवचन छह सौ पचास से भी अधिक पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं और तीस से अधिक भाषाओं में अनुवादित हो चुके हैं। वे कहते हैं, "मेरा संदेश कोई सिद्धांत, कोई चिंतन नहीं है। मेरा संदेश तो रूपांतरण की एक कीमिया, एक विज्ञान है।"

ओशो अपने आवास से दिन में केवल दो बार बाहर आते—प्रातः प्रवचन देने के लिए और संध्या समय सत्य की यात्रा पर निकले हुए साधकों को मार्गदर्शन एवं नये प्रेमियों को संन्यास-दीक्षा देने के लिए।

सन 1980 में कट्टरपंथी हिंदू समुदाय के एक सदस्य द्वारा उनकी हत्या का

प्रयास भी उनके एक प्रवचन के दौरान किया गया।

अचानक शारीरिक रूप से बीमार हो जाने से 1981 की वसंत ऋतु में वे मौन में चले गये। चिकित्सकों के परामर्श पर उसी वर्ष जून में उन्हें अमरीका ले जाया गया। उनके अमरीकी शिष्यों ने ओरेगॅन राज्य के मध्य भाग में 64,000 एकड़ जमीन खरीदी थी जहां उन्होंने ओशो को रहने के लिए आमंत्रित किया। धीरे-धीरे यह अर्ध-रेगिस्तानी जगह एक फूलते-फलते कम्यून में परिवर्तित होती गई। वहां लगभग 5,000 प्रेमी मित्र मिल-जुल कर अपने सद्‌गुरु के सान्निध्य में आनंद और उत्सव के वातावरण में एक अनूठे नगर के सृजन को यथार्थ रूप दे रहे थे। शीघ्र ही यह नगर रजनीशपुरम नाम से संयुक्त राज्य अमरीका का एक निगमीकृत (इन्कापोरेटेड) शहर बन गया। किंतु कट्टरपंथी ईसाई धर्माधीशों के दबाव में व राजनीतिज्ञों के निहित स्वार्थवश प्रारंभ से ही कम्यून के इस प्रयोग को नष्ट करने के लिए अमरीका की संघीय, राज्य और स्थानीय सरकारें हर संभव प्रयास कर रही थीं।

जैसे अचानक एक दिन ओशो मौन हो गये थे वैसे ही अचानक अक्तूबर 1984 में उन्होंने पुनः प्रवचन देना प्रारंभ कर दिया। जीवन-सत्यों के इतने स्पष्टवादी व मुखर विवेचनों से निहित स्वार्थों की जड़ें और भी चरमराने लगीं।

अक्तूबर 1985 में अमरीकी सरकार ने ओशो पर आप्रवास-नियमों के उल्लंघन के 35 मनगढ़ंत आरोप लगाए। बिना किसी गिरफ्तारी-वारंट के ओशो को बंदूकों की नोक पर हिरासत में ले लिया गया। 12 दिनों तक उनकी जमानत स्वीकार नहीं की गयी और उनके हाथ-पैर में हथकड़ी व बेड़ियां डाल कर उन्हें एक जेल से दूसरी जेल में घुमाते हुए पोर्टलैंड (ओरेगॅन) ले जाया गया। इस प्रकार, जो यात्रा कुल पांच घंटे की है वह आठ दिन में पूरी की गयी। जेल में उनके शरीर के साथ बहुत दुर्व्यवहार किया गया और यहीं संघीय सरकार के अधिकारियों ने उन्हें 'थेलियम' नामक धीमे असर वाला जहर दिया।

14 नवंबर 1985 को अमरीका छोड़ कर ओशो भारत लौट आये। यहां की तत्कालीन सरकार ने भी उन्हें समूचे विश्व से अलग-थलग कर देने का पूरा प्रयास किया। तब ओशो नेपाल चले गये। नेपाल में भी उन्हें अधिक समय तक रुकने की अनुमति नहीं दी गयी।

फरवरी 1986 में ओशो विश्व-भ्रमण के लिए निकले जिसकी शुरुआत उन्होंने ग्रीस से की, लेकिन अमरीका के दबाव के अंतर्गत 21 देशों ने या तो उन्हें देश से निष्कासित किया या फिर देश में प्रवेश की अनुमति ही नहीं दी। इन तथाकथित स्वतंत्र व लोकतांत्रिक देशों में ग्रीस, इटली, स्विट्‌जरलैंड, स्वीडन, ग्रेट ब्रिटेन, पश्चिम जर्मनी, हालैंड, कनाडा, जमाइका और स्पेन प्रमुख थे।

ओशो जुलाई 1986 में बम्बई और जनवरी 1987 में पूना के अपने आश्रम में लौट आए, जो अब ओशो कम्यून इंटरनेशनल के नाम से जाना जाता है। यहां वे पुनः अपनी क्रांतिकारी शैली में अपने प्रवचनों से पंडित-पुरोहितों और राजनेताओं के पाखंडों व मानवता के प्रति उनके षड्‌यंत्रों का पर्दाफाश करने लगे।

इसी बीच भारत सहित सारी दुनिया के बुद्धिजीवी वर्ग व समाचार माध्यमों ने ओशो के प्रति गैर-पक्षपातपूर्ण व विधायक चिंतन का रुख अपनाया। छोटे-बड़े सभी प्रकार के समाचारपत्रों व पत्रिकाओं में अक्सर उनके अमृत-वचन अथवा उनके संबंध में लेख व समाचार प्रकाशित होने लगे। देश के अधिकांश प्रतिष्ठित संगीतज्ञ, नर्तक, साहित्यकार, कवि व शायर ओशो कम्यून इंटरनेशनल में अक्सर आने लगे। मनुष्य की चिर-आकांक्षित उटोपिया का सपना साकार देख कर उन्हें अपनी ही आंखों पर विश्वास न होता।

26 दिसंबर 1988 को ओशो ने अपने नाम के आगे से 'भगवान' संबोधन हटा दिया। 27 फरवरी 1989 को ओशो कम्यून इंटरनेशनल के बुद्ध सभागार में सांध्य-प्रवचन के समय उनके 10,000 शिष्यों व प्रेमियों ने एकमत से अपने प्यारे सद्गुरु को 'ओशो' नाम से पुकारने का निर्णय लिया।

अक्तूबर 1985 में जेल में अमरीका की रीगन सरकार द्वारा ओशो को थेलियम नामक धीमा असर करने वाला जहर दिये जाने एवं उनके शरीर को प्राणघातक रेडिएशन से गुजारे जाने के कारण उनका शरीर तब से निरंतर अस्वस्थ रहने लगा था और भीतर से क्षीण होता चला गया। इसके बावजूद वे ओशो कम्यून इंटरनेशनल, पूना के गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम में 10 अप्रैल 1989 तक प्रतिदिन संध्या दस हजार शिष्यों, खोजियों और प्रेमियों की सभा में प्रवचन देते रहे और उन्हें ध्यान में डुबाते रहे। इसके बाद के अगले कई महीने उनका शारीरिक कष्ट बढ़ गया।

17 सितंबर 1989 से पुनः गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम में हर शाम केवल आधे घंटे के लिए आकर ओशो मौन दर्शन-सत्संग के संगीत और मौन में सबको डुबाते रहे। इस बैठक को उन्होंने "ओशो व्हाइट रोब ब्रदरहुड" नाम दिया। ओशो 16 जनवरी 1990 तक प्रतिदिन संध्या सात बजे "ओशो व्हाइट रोब ब्रदरहुड" की सभा में आधे घंटे के लिये उपस्थित होते रहे।

17 जनवरी को वे सभा में केवल नमस्कार करके वापस चले गए। 18 जनवरी को "ओशो व्हाइट रोब ब्रदरहुड" की सांध्य-सभा में उनके निजी चिकित्सक स्वामी प्रेम अमृतो ने सूचना दी कि ओशो के शरीर का दर्द इतना बढ़ गया है कि वे हमारे बीच नहीं आ सकते, लेकिन वे अपने कमरे में ही सात बजे से हमारे साथ ध्यान में बैठेंगे। दूसरे दिन 19 जनवरी 1990 को सायं पांच बजे ओशो शरीर छोड़ कर महाप्रयाण कर गये। इसकी घोषणा सांध्य-सभा में की गयी। ओशो की इच्छा के अनुरूप, उसी सांध्य-सभा में उनका शरीर गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम में दस मिनट के लिए लाकर रखा गया। दस हजार शिष्यों और प्रेमियों ने उनकी आखिरी विदाई का उत्सव संगीत-नृत्य, भावातिरेक और मौन में मनाया। फिर उनका शरीर दाहक्रिया के लिए ले जाया गया।

21 जनवरी 1990 के पूर्वाह्न में उनके अस्थि-फूल का कलश महोत्सवपूर्वक कम्यून में लाकर च्वांग्त्सू हॉल में निर्मित संगमरमर के समाधि भवन में स्थापित किया गया।

ओशो की समाधि पर स्वर्ण अक्षरों में अंकित है :

OSHO
Never Born
Never Died
Only Visited this
Planet Earth between
Dec 11 1931 – Jan 19 1990

ध्यान और सृजन का यह अनूठा नव-संन्यास उपवन, ओशो कम्यून, ओशो की विदेह-उपस्थिति में आज पूरी दुनिया के लिए एक ऐसा प्रबल चुंबकीय आकर्षण-केंद्र बना हुआ है कि यहां निरंतर नए-नए लोग आत्म-रूपांतरण के लिए आ रहे हैं तथा ओशो की सघन-जीवंत उपस्थिति में अवगाहन कर रहे हैं।

ओशो का हिन्दी साहित्य

उपनिषद
सर्वसार उपनिषद
कैवल्य उपनिषद
अध्यात्म उपनिषद
कठोपनिषद
ईशावास्य उपनिषद
निर्वाण उपनिषद
आत्म-पूजा उपनिषद
केनोपनिषद
मेरा स्वर्णिम भारत
(विविध उपनिषद-सूत्र)

कृष्ण
गीता-दर्शन
(आठ भागों में अठारह अध्याय)
कृष्ण-स्मृति

महावीर
महावीर-वाणी (दो भागों में)
महावीर-वाणी (पुस्तिका)
जिन-सूत्र (दो भागों में)
महावीर या महाविनाश
महावीर : मेरी दृष्टि में
ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया

बुद्ध
एस धम्मो सनंतनो (बारह भागों में)

मीरा
पद घुंघरू बांध
झुक आई बदरिया सावन की

लाओत्से
ताओ उपनिषद (छह भागों में)

अष्टावक्र
महागीता (छह भागों में)

कबीर
सुनो भई साधो
कहै कबीर दीवाना
कहै कबीर मैं पूरा पाया
मगन भया रसि लागा
घूंघट के पट खोल
न कानों सुना न आंखों देखा
(कबीर व फरीद)

पलटू
अजहूं चेत गंवार
सपना यह संसार
काहे होत अधीर

दादू
सबै सयाने एक मत
पिव पिव लागी प्यास

जगजीवन
नाम सुमिर मन बावरे
अरी, मैं तो नाम के रंग छकी

दरिया
कानों सुनी सो झूठ सब
अमी झरत बिगसत कंवल

सुंदरदास
हरि बोलौ हरि बोल
ज्योति से ज्योति जले

धरमदास
जस पनिहार धरे सिर गागर
का सोवै दिन रैन

मलूकदास
कन थोरे कांकर घने
रामदुवारे जो मरे

शांडिल्य
अथातो भक्ति जिज्ञासा (दो भागों में)

झेन, सूफी और उपनिषद की कहानियां
बिन बाती बिन तेल
सहज समाधि भली
दीया तले अंधेरा

अन्य रहस्यदर्शी
भक्ति-सूत्र (नारद)
शिव-सूत्र (शिव)
भजगोविन्दम् मूढ़मते (आदिशंकराचार्य)
एक ओंकार सतनाम (नानक)
जगत तरैया भोर की (दयाबाई)
बिन घन परत फुहार (सहजोबाई)
नहीं सांझ नहीं भोर (चरणदास)
संतो, मगन भया मन मेरा (रज्जब)
कहै वाजिद पुकार (वाजिद)
मरौ हे जोगी मरौ (गोरख)
सहज-योग (सरहपा-तिलोपा)
बिरहिनी मंदिर दियना बार (यारी)
प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया (दूलन)
दरिया कहै सब्द निरबाना (दरियादास बिहारवाले)
हंसा तो मोती चुगैं (लाल)
गुरु-परताप साध की संगति (भीखा)
मन ही पूजा मन ही धूप (रैदास)
झरत दसहुं दिस मोती (गुलाल)
जरथुस्त्र: नाचता-गाता मसीहा (जरथुस्त्र)

प्रश्नोत्तर
नहिं राम बिन ठांव
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र
मृत्योर्मा अमृतं गमय
प्रीतम छवि नैनन बसी
रहिमन धागा प्रेम का
उड़ियो पंख पसार
सुमिरन मेरा हरि करैं
पिय को खोजन मैं चली
साहेब मिल साहेब भये
जो बोलैं तो हरिकथा
बहुरि न ऐसा दांव
ज्यूं था त्यूं ठहराया
ज्यूं मछली बिन नीर
दीपक बारा नाम का
अनहद में बिसराम
लगन महूरत झूठ सब
सहज आसिकी नाहिं
पीवत रामरस लगी खुमारी
रामनाम जान्यो नहीं
सांच सांच सो सांच
आपुई गई हिराय
बहुतेरे हैं घाट
कोंपलें फिर फूट आईं
फिर पत्तों की पांजेब बजी
फिर अमरित की बूंद पड़ी

चेति सकै तो चेति
क्या सोवै तू बावरी
एक एक कदम
चल हंसा उस देस
कहा कहूं उस देस की
पंथ प्रेम को अटपटो
मूलभूत मानवीय अधिकार
नया मनुष्य : भविष्य की एकमात्र आशा
सत्यम् शिवम् सुंदरम्
रसो वै सः
सच्चिदानंद
पंडित-पुरोहित और राजनेता :
मानव आत्मा के शोषक
ॐ मणि पद्मे हुम्
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः
हरि ॐ तत्सत्
एक महान चुनौती : मनुष्य का
स्वर्णिम भविष्य
मैं धार्मिकता सिखाता हूं, धर्म नहीं

तंत्र
संभोग से समाधि की ओर
तंत्र-सूत्र (पांच भागों में)

विचार-पत्र
क्रांति-बीज
पथ के प्रदीप

पत्र-संकलन
अंतर्वीणा
प्रेम की झील में अनुग्रह के फूल

बोध-कथा
मिट्टी के दीये

ध्यान, साधना, योग
ध्यानयोग : प्रथम और अंतिम मुक्ति
रजनीश ध्यान योग
हसिबा, खेलिबा, धरिबा ध्यानम्
नेति-नेति
मैं कहता आंखन देखी
पतंजलि : योग-सूत्र (तीन भागों में)

साधना-शिविर
साधना-पथ
ध्यान-सूत्र
जीवन ही है प्रभु
माटी कहै कुम्हार सूं
मैं मृत्यु सिखाता हूं
जिन खोजा तिन पाइयां
समाधि के सप्त द्वार (ब्लावट्स्की)
साधना-सूत्र (मेबिल कॉलिन्स)

राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याएं
देख कबीरा रोया
स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है
भिखारी जगत का
शिक्षा में क्रांति
नये समाज की खोज

ओशो के संबंध में
भगवान श्री रजनीश : ईसा मसीह के
पश्चात सर्वाधिक विद्रोही व्यक्ति

संपर्क सूत्र : ओशो कम्यून इंटरनेशनल, 17 कोरेगांव पार्क, पूना 411001

ओशो टाइम्स इंटरनेशनल

विश्व का एकमात्र शुभ समाचार-पत्र

एक वर्ष में 12 अंक

	एक प्रति का मूल्य	वार्षिक शुल्क
हिंदी संस्करण	15 रुपये	150 रुपये
अंग्रेजी संस्करण	48 रुपये	480 रुपये

ओशो के संबंध में समस्त जानकारी हेतु संपर्क सूत्र :
ओशो कम्यून इंटरनेशनल, 17 कोरेगांव पार्क, पूना 411001
फोन : 0212-628562

डायमंड पाकेट बुक्स में ओशो का हिंदी साहित्य

संभोग से समाधि की ओर-1
संभोग से समाधि की ओर-2
संभोग से समाधि की ओर-3
संभोग से समाधि की ओर-4
रजनीश ध्यान योग
एक ओंकार सतनाम
मैं मृत्यु सिखाता हूँ
मिट्टी के दिये
आत्म पूजा उपनिषद
गीता : विज्ञान, कला, अध्यात्म
गीता : समस्त योगों का सार
गीता : मनोविज्ञान का परम शास्त्र
गीता : योग विज्ञान
साक्षी कृष्ण और रासलीला
कृष्ण : साधना रहित सिद्धि
कृष्ण और हंसता हुआ धर्म
कृष्ण गुरु भी सखा भी
कृष्ण : जिज्ञासा, खोज, उपलब्धि
शिव साधना
शिव दर्शन
सत्य की पहली किरण
सुमिरन मेरा हरि करैं
उडियो पंख पसार
पाथेय
दिया अमृत पाया जहर
संबोधि के क्षण
राम खुमारी
अभिनव धर्म
करुणा और क्रांति
कहा कहूं उस देस की
हंसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानम्
ध्यान की कला
ध्यान और प्रेम
मुक्ति बोध
साधना सूत्र : हेरत हेरत हे सखी
साधना सूत्र : आत्मा का कमल
साधना सूत्र : हृदय संगीत
अमृत की दिशा
संभावनाओं की आहट
योग की जाप
शून्य का दर्शन
शून्य समाधि
आकाश भर आनंद
प्रार्थना के बीज
एक एक कदम
नये समाज की खोज
मैं धार्मिकता सिखाता हूं, धर्म नहीं
बहुतेरे हैं घाट
योग सूत्र : एक वैज्ञानिक दृष्टि
योग सूत्र : आंतरिक अनुशासन
योग सूत्र : प्रज्ञा और समाधि
योग सूत्र : नींद, स्वप्न और बोध
योग सूत्र : अहंकार और समर्पण
योग सूत्र : बुद्धों का मनोविज्ञान
योग सूत्र : समाधि के दो रूप
जीवन संगीत
सतगुर मिलै त उबरै
सबद भया उजियारा
हंसै खेलै न करे मन भंग
सहजै रहिबा
अनहद बाजे बांसुरी
भीतर का दीया
सतगुरु एक दर्पण
उपनिषद- शून्य संवाद
एकमात्र उपाय : जागो
क्रांति सूत्र : साक्षी भाव

इक साधे सब सधै
भारत एक अनूठी संपदा
भक्ति : विराट का अनुभव
भक्ति : जीवन रूपांतरण की कला
भक्ति : शून्य की झील में प्रेम का कमल
प्रेम है द्वार सत्य का
दिया बलै अगम का
शून्य है महामुक्ति
मुक्त गगन के पंछी
परम प्रेम रूपा भक्ति
सहज योग : साक्षी और प्रेम
सहज योग : ध्यान और प्रेम
सहज योग : प्रार्थना और आनंद
सहज योग : महाक्रांति
सहज योग : अभी और यहीं
साधना के आयाम
कुंडलिनी यात्रा
कुंडलिनी जागरण और शक्तिपात
कुंडलिनी और सात शरीर
जात हमारी ब्रह्म है
सुखिया सब संसार दुखिया दास कबीर
जीवन-अमृत
जित देखूं तित तू
जोतहिं जोति समानी
बोलै शेख फरीद
क्या मेरा क्या तेरा
मन लागा यार फकीरी में
ऐसी भक्ति करै रैदासा
दरिया झूठ सो झूठ है
निरगुन का बिसराम
लिखा लिखी की है नहीं
गुरु गोविंद दोउ खड़े
हीरा पायो गांठ गठियायो
मेरे तो गिरधर गोपाल
राम नाम रस पीजै
राम नाम निज औषधि
नहीं जोग नहीं जाप
तेरा साईं तुज्झ में
दादू सहजै देखिए
प्रभु की पगडंडियां
साधना पथ
ध्यान सूत्र : एक अपूर्व अभियान
ध्यान सूत्र : अंतिम यात्रा
स्वर्णिम भारत
धर्म और राजनीति
भारत के जलते प्रश्न
शिक्षा : नये प्रयोग
शिक्षा-विद्रोह
शिक्षा और जागरण
शिक्षा में क्रांति
अस्वीकृति में उठा हाथ
नयी क्रांति की रूपरेखा
विचार क्रांति
गांधी पर पुनर्विचार
हरि ॐ तत्सत
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः
ॐ मणि पद्मे हुम्
एक महान चुनौती : मनुष्य का स्वर्णिम भविष्य
सहज जीवन के स्वर
सहज जीवन के सूत्र
जीवित मंदिर
जीवन क्रांति
चेति सकै तो चेति
दुख के पार
मौलिक क्रांति
मौन संगीत
पाथेय
गुरु-परताप साध की संगति
संभोग से समाधि की ओर
संतो मगन भया मन मेरा
समाधि की सुराही

OSHO BOOKS

Published By

Diamond Pocket Books

Rajneesh Upanishad
Bauls: The Dancing Mystics
Bauls: The Seekers of the path
Bauls: The Mystics of - Celebration
Bauls: The singing Mystics
Ecstasy: The Language of - Existence
Fly without wings
Be Oceanic
The Greatest Gamble
Here & Now
Towards The Unknown
Vedanta: The Ultimate Truth
Vedanta: The First Star in the -Evening
Vedanta: The Supreme - Knowledge
Vedanta : An Art of Dying
A Taste of the Divine
One Earth One Humanity
Freedom from the Mind
Life A song, Dance
Meeting the Ultimate
The Master is a Mirror
Rising in Love
The Forgotten Language of the Heart
The Alchemy of Enlightenment
From ignorance to innocence
Be Silent & Know
Turning in
Tantra Vision: An Invitation of Silence
Tantra Vision: Beyond The Barriers of Wisdom
Tantra Vision: The Door to Nirvana
Eternal Celebration
A Song Without Words
Inner Harmony
Sing, Dance, Rejoice
Secret of Disciplehood
Laughter is my message
The Mystery Beyond Mind
The Centre of the Cyclone
Meditation: The Ultimate Adventure
The Cessation of Mind
The Birth of Being

DIAMOND POCKET BOOKS (P) LTD.
X-30, OKHALA INDUSTRIAL AREA, PHASE-2,
NEW DELHI - 110020

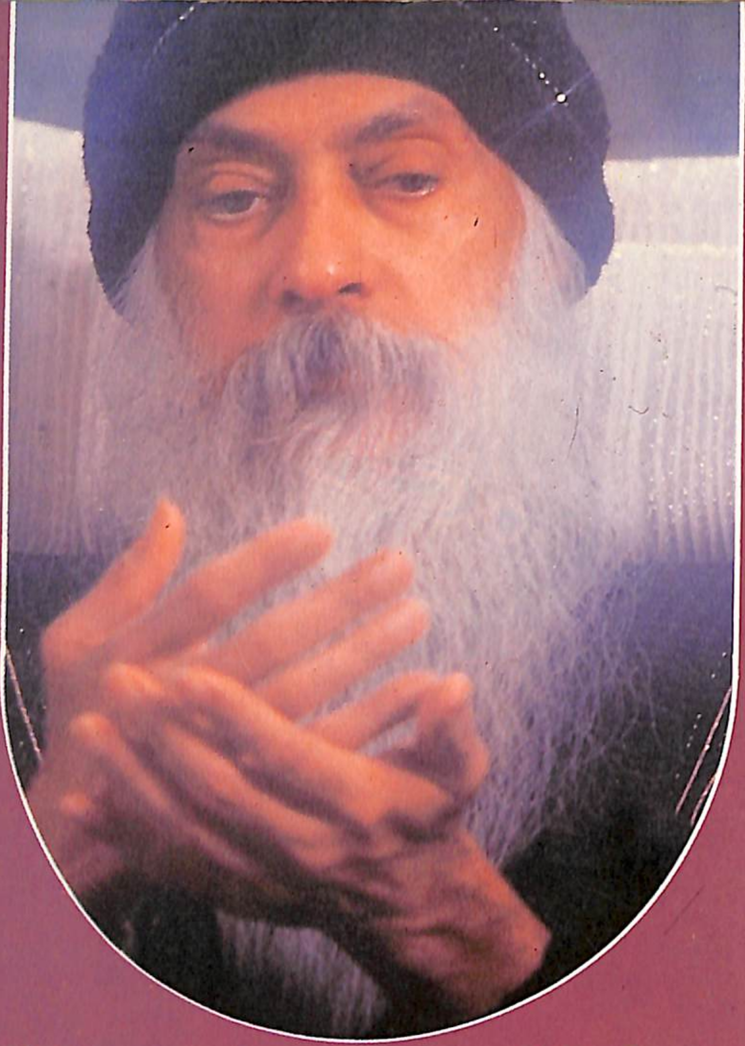

A.H.W. SAMEER SERIES

ओशो के प्रवचन पढ़ते हुए हमें यह महसूस नहीं होता कि हम कोई पांडित्यपूर्ण प्रवचन सुन रहे हैं। उनके वचनों से झरती हुई अनुभूति हमें छूती रहती है। कलकल बहता हुआ झरना कोई संगीत सिखाने का इरादा नहीं रखता, उसका होना ही गीत होता है। फूल खिलता है और खुशबू बिखेरता है। ओशो के प्रवचन कुछ ऐसे ही हैं।

— मंगेश पड़गांवकर
सुप्रसिद्ध मराठी कवि

डायमंड पाकेट बुक्स

Rs 100/-